Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

चतुर्थ सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 202

संस्कृत व्याकरण

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)- 202**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सह सम्पादन
डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड इकाई संख्या**
डॉ0 नीरज कुमार जोशी, असि0 प्रोफे0 ए.सी. संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 1 एवं 3) खण्ड 2 (इकाई 1 से 5) खण्ड 3 (इकाई 1 से 4) खण्ड 4 (इकाई 1)
श्री राहुल पन्त, असि0 प्रोफे0 ए.सी., संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 2) खण्ड 4 (2 एवं 4)
डॉ0 सुधीर प्रसाद नौटीयाल, असि0 प्रोफे0 ए.सी., संस्कृत विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	खण्ड 1 (इकाई 4) खण्ड 4 (इकाई 3)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत व्याकरण
प्रकाशन वर्ष : 2025
ISBN No. **मुद्रक:**

नोट:- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A)

संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास पृष्ठ संख्या 01-04

इकाई-1 व्याकरणशास्त्र का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय	05-16
इकाई-2 व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास	17-30
इकाई-3 व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का परिचय	31-43
इकाई-4 व्याकरणशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय	44-58

खण्ड- दो (Section-B)

लघुसिद्धान्तकौमुदी : संज्ञा प्रकरण एवं अच् सन्धि पृष्ठ संख्या 59

इकाई-1 संज्ञा प्रकरण	60-80
इकाई-2 यण् सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया	81-94
इकाई-3 अयादि एवं गुण सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया	95-108
इकाई-4 वृद्धि एवं दीर्घ सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया	109-127
इकाई-5 प्रकृति भाव सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया	128-143

खण्ड-तीन (Section-C)

लघुसिद्धान्तकौमुदी : हल् एवं विसर्ग सन्धि पृष्ठ संख्या 144

इकाई-1 हल सन्धि नियम एवं उदाहरण	145-156
इकाई-2 अनुस्वार सन्धि नियम एवं उदाहरण	157-168
इकाई-3 विसर्ग सन्धि नियम एवं उदाहरण	169-194
इकाई-4 धातु रूप परिचय	195-215

खण्ड-चार (Section-D)

कारक, समास एवं प्रत्यय पृष्ठ संख्या 216

इकाई-1 कारक : परिभाषा, नियम एवं उदाहरण	217-236
इकाई-2 समास : परिभाषा, नियम एवं उदाहरण	237-261
इकाई-3 कृत् एवं तद्धित प्रत्यय	262-282
इकाई-4 स्त्री प्रत्यय	283-301

खण्ड- एक (Section-A)
संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास

इकाई- 1 व्याकरणशास्त्र का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 व्याकरणशास्त्र का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

1.3.1 व्याकरण शास्त्र का परिचय

1.2.2 व्याकरणशास्त्र की प्राचीन परम्परा

1.3.3 अन्य व्याकरणशास्त्रों का परिचय

1.3.4 व्याकरणशास्त्र के मुनित्रय

1.3.5 व्याकरणशास्त्र का प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

स्नातक चतुर्थ सेमेस्टर, प्रथम प्रश्न पत्र, संस्कृत व्याकरण से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई है। प्रस्तुत इकाई 'व्याकरणशास्त्र का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय' से सम्बन्धित है । भारतीय ज्ञान-विज्ञान का प्राचीनतम स्रोत वेद हैं। ब्रह्मा के द्वारा वेदों का ज्ञान ऋषियों को दिया गया । ऋषियों के माध्यम से यह ज्ञान देव, मानवादि को प्राप्त हुआ। इसीलिए कहा जाता है कि- **'ऋषयो मन्त्रदृष्टारः न सृष्टारः'** । ऋषियों ने गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हुए इन वैदिक मंत्रों को अपने शिष्यों को दिया। वेदों में ज्ञान-विज्ञान को जानने के लिए छः वेदांगों को प्रवृत किया गया। यह वेदांग छः हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुत, छन्द और ज्योतिष । इन छः वेदांगों में व्याकरण को वेद पुरुष का मुख बताया गया है- **'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'**। व्याकरण ही वह वेदांग है जो वेद मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और साथ ही इन मंत्रों को सुरक्षित भी रखता है। व्याकरणशास्त्र के शैव, बार्हस्पत्य अथवा ऐन्द्र आदि सम्प्रदाय चले हैं। पाणिनी व्याकरण शैव सम्प्रदाय का माना जाता है। क्योंकि जिन चौदह सूत्रों से सम्पूर्ण व्याकरण की रचना की गई वह भगवान महेश्वर अर्थात शिव के डमरू से प्राप्त हुए थे। वर्तमान समय में नौ सम्प्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता है—

एन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम् ।।

इन सभी सम्प्रदायों में पाणिनीय व्याकरण सर्वाधिक सुसमृद्ध रूप में उपलब्ध है । पाणिनी व्याकरण के प्रमुख मुनित्रय पाणिनी, कात्यायन और पतंजली हैं । इन तीनों मुनियों का कार्य मिलकर पाणिनी व्याकरण को पूर्णता प्रदान करता है ।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- ➢ व्याकरणशास्त्र के बारे में जान सकेंगे ।
- ➢ व्याकरणशास्त्र की प्राचीन परम्परा के बारे में जान सकेंगे ।
- ➢ अन्य व्याकरणशास्त्रों को जानेंगे ।
- ➢ व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध मुनित्रय के बारे में जानेंगे ।
- ➢ व्याकरणशास्त्र का प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य के बारे में जानेंगे ।

1.3 व्याकरणशास्त्र का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

भारतीय वाङ्मय का मूल 'वेद' हैं। व्याकरण शास्त्र का मूलभी वेद है। इसी क्रम में तंत्रों एवं पुराणों में भी व्याकरण को सूत्र रूप में निर्दिष्ट किया गया है, जिनकी विशद व्याख्या सुव्यवस्थित रूप में परवर्ती व्याकरणाचार्यों द्वारा की गयी है । व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है, जिस शास्त्र के माध्यम से शब्दों की व्याकृति या व्युत्पत्ति की जाय (वि+आङ्+कृ-करणे+ल्युट्)। इस प्रकार प्रकृति, प्रत्यय आदि के माध्यम से जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति की जाय अथवा साधुत्व की निष्पत्ति (सिद्धि) की जाय, उसे व्याकरण कहते हैं।

व्याकरण शब्दों के प्रयोग, अनुप्रयोग एवं संश्लेषण के साथ-साथ विश्लेषण भी करता है। अतः शब्दों के संस्कार के लिए व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य बताया गया है—

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो माऽभूतसकलः शकलः सकृच्छकृत् ।।

व्याकरण का एक सबसे महत्वपूर्ण प्रयोजन यह है कि यह प्रयोग किए जाने वाले शब्दों के स्वरूप का निर्धारण करे, जिससे उसकी निरन्तरता और पहचान बनी रहे अन्यथा कालक्रम के प्रभाव से लंबे समय के अन्तराल के बाद प्रयुक्त शब्दों का अर्थ निकालना भी सम्भव नहीं होगा, इससे भाषा के मुख्य प्रयोजन का ही व्याघात हो जायेगा और संवादहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इसलिए भाषा के संवादशीलता जैसे पुनीत उद्देश्य के संरक्षण के लिए व्याकरणशास्त्रअनिवार्य है।

1.3.1 व्याकरणशास्त्र का परिचय

भारतीय ज्ञान-विज्ञान का प्राचीनतम स्रोत वेद हैं । ब्रह्मा के द्वारा वेदों का ज्ञान ऋषियों को दिया गया । ऋषियों के माध्यम से यह ज्ञान देव, मानवादि को प्राप्त हुआ। इसी लिए कहा जाता है कि- **'ऋषयो मन्त्रदृष्टारः न सृष्टारः'।** ऋषियों ने गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हुए इन वैदिक मंत्रों को अपने शिष्यों को दिया ।वेदों में ज्ञान-विज्ञान को जानने के लिए छः वेदांगों को प्रवृत किया गया। यह वेदांग छः हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुत, छन्द और ज्योतिष। इन छः वेदांगों में व्याकरण को वेद पुरुष का मुख बताया गया है- **'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'।** व्याकरण ही वह वेदांग है जो वेद मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और साथ ही इन मंत्रों को सुरक्षित भी रखता है । किसी भी भाषा के संरक्षण तथा उसके मौलिक ज्ञान के निमित्त व्याकरण की परम आवश्यकता होती है । व्याकरण के बगैर भाषा प्राय: विश्रंखल और अधूरी है। सबसे पहले इसका अनुभव देवताओं ने किया और अपनी भाषा को व्यकृत करने हेतु इंद्र से प्रार्थना की, तब इंद्र ने वाणी को व्यकृत किया। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार- **" वाग् वै पराच्यव्याकृताऽव्दत्"** और यहीं से व्याकरण की परंपरा का आरंभ माना जाता है । संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र का अत्यधिक महत्व है। व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि- **"व्याक्रियंते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन व्यकरणमिति"** अर्थात् जिस शास्त्र में शब्दों के प्रकृति- प्रत्यय का विवेचन किया जाता है , उसे व्याकरण कहते हैं। इसमें यह विवेचन किया जाता है कि शब्द कैसे बनता है । इसमे क्या प्रकृति तथा क्या प्रत्यय लगा है । तदनुसार शब्द का अर्थ निश्चित किया जाता है। वर्तमान में प्रचलित व्याकरण पाणिनी द्वारा विरचित अष्टाध्यायी है । इस ग्रंथ में आठ अध्याय हैं । इसमे व्याकरण से संबन्धित तत्वों का विवेचन किया गया है। अष्टाध्यायी पर कात्यायन ने वार्तिक लिखे । पतंजलि व्याकरण के मुख्यत: 5 प्रयोजन बताए गए हैं– **रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असंदेह** (**रक्षोहगमलघ्वसंदेहा: प्रयोजनम**) । रक्षा का अर्थ है वेदों के मूल पदों को समझना,ऊह का अर्थ है यज्ञ में आवश्यकतानुसारप्रकृति रूप में पठित पदों का विकृत पाठ करना, आगम का अर्थ है प्राचीन उद्धरणों से व्याकरण के महत्व को समझना, लघुका अर्थ है भाषा शीक्षा के लिए लघुतम साधन होनाऔर असन्देह पद का अर्थ है किसी विशेष स्थल पर भाषागतसंदेहका निराकरण करना ।

1.2.2 व्याकरणशास्त्र की प्राचीन परम्परा

शब्द ब्रह्म है, तो अर्थ उसकी शक्ति है। नाद के माध्यम से सृष्टि की व्याकृति के क्रम में वाणी के विभिन्न रूपों में अर्थान्वयता से ही सृष्टि के नियति स्वरूप की सार्थकता है अतः श्रुति (वेदों) के अर्थानुसंधान के लिए प्रातिशाख्यों का अपना ही महत्व है। इस प्रकार वेदों के साथ ही व्याकरण का महत्व जुड़ा हुआ है । सृष्टि रचना के साथ शब्दानुवर्ती व्याकरण का प्रणयन स्वयं ब्रह्मा से माना गया है। ब्रह्मा ने व्याकरण का ज्ञान बृहस्पति को दिया। बृहस्पति ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने भरद्वाज को व्याकरण शास्त्र का उपदेश दिया। भरद्वाज ने अन्य ऋषियों को और ऋषियों ने अन्य ब्राह्मणों को व्याकरण का ज्ञान दिया। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी उल्लेख किया है कि बृहस्पति ने इन्द्र को एक-एक पद का उपदेश करके शब्दपारायण नामक ग्रन्थ को पढ़ाया था। व्याकरण शास्त्र से जुड़े अन्य शब्द शास्त्री (शब्दिक) इन्द्र, चंद्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनी, जैनेन्द्र, का मुख्य रूप से उल्लेख प्रवर्तक आचार्यों के रूप में किया गया है। महर्षि पाणिनी ने भी अपने अष्टाध्यायी में अनेक ऐसे कतिपय विद्वानों का सन्दर्भ दिया है। 1. आपिशालि, 2. काश्यप, 3. गार्ग्य, 4. गालव, 5. चाक्रवर्मण, 6. भारद्वाज, 7. शाकटायन, 8. शाकल्य, 9. सेनक, 10. स्फोटायन, 11. पौष्करसादि । पाणिनी का व्याकरण लौकिक एवं वैदिक शब्दशास्त्रों का समीकरण है । यह केवल शब्दानुशासन नहीं अपितु निसर्ग एवं जीवन का अर्थानुशासन भी है जिसने 'संस्कृत' को संस्कृत भाषा का रूप दिया ।

1.3.3 अन्य व्याकरणशास्त्रों का परिचय

महर्षि पाणिनी से भिन्न दस व्याकरण-प्रस्थान न्यूनाधिक रूप से इस समय उपलब्ध तथा प्रचलित हैं।

कातन्त्र— कातन्त्र या कालाप व्याकरण प्रक्रिया-क्रम से 1412 सूत्रों के मूल ग्रंथ पर आश्रित है। यह चार अध्यायों में विभक्त है। प्रथम तीन अध्याय शर्ववर्मा ने तथा अंतिम अध्याय किसी कात्यायन के द्वारा रचित हैं। सूत्र पाणिनीय सूत्रों के आधार पर रचे गये हैं। बिहार, बंगाल, गुजरात में इसका प्रचार रहा है।

चान्द्रव्याकरण— चन्द्रगोमी ने प्रायः 400 ई० में लिखा था। ये बौद्ध विद्वान थे। इसका प्रचार बौद्ध क्षेत्र में ही है (कश्मीर, नेपाल, तिब्बत, श्रीलंका)। इसमें त्रिमुनी व्याकरण का पूरा उपयोग है । किन्तु संज्ञा शब्दों का प्रयोग नहीं है। इसमें छः अध्याय और 3100 सूत्र मिलते हैं । इस प्रस्थान का 'काशिका' में अनेकत्र खण्डन है।

जैनेन्द्रव्याकरण— इस व्याकरण के लेखक देवनन्दी माने जाते हैं तथा इन्हें पूज्यपाद भी कहा जाता है। इनका समय छठी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। इस व्याकरण में छः प्राचीन आचार्यों का भी उल्लेख मिलता है । इनके नाम हैं – श्रीदत्त , यशोभद्र , भूतिबली , प्रभाचन्द्र , सिंहसेन और समंतभद्र। जैन व्याकरण के दो भाग हैं– औदीच्य इसमे 3000 सूत्र हैं तथा दूसरा दाक्षिणात्य, इसमें 3700 सूत्र हैं । जैनेन्द्र ने अपनी व्याकरण पर शब्दावतार न्यास नामक टीका ही लिखी है । अभयनंदी ने जैनेन्द्र मतवृत्ति, पंडित महाचन्द्र ने लघु जैनेन्द्र तथा आचर्य प्रभाचन्द्र ने शब्दाम्भोजभास्करन्यास नमक टीका लिखी है।

जैनशाकटायन— आचार्य पाल्यकीर्ति (814-67 ई०) ने प्रवर्तन किया था। शाकटायन शब्दानुशासन में 4-4 पादों वाले 4 अध्याय हैं जिन्हें 'सिद्धि' नाम से अधिकरणों में विभक्त किया गया है।

सरस्वतीकण्ठाभरण— इस व्याकरण ग्रन्थ के प्रवर्तक महाराज भोज हैं। यह ग्रन्थ 8 अध्यायों में 6411 सूत्र दिए हैं। सात अध्याय संस्कृत व्याकरण के और अष्टम अध्याय वैदिक व्याकरण का है।

सिद्धहैमशब्दानुशासन— इस व्याकरण के रचयिता हेमचन्द्र सूरी हैं। इसमें 8 अध्याय हैं। यह ग्रंथ संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं का व्याकरण है। प्रारम्भिक सात अध्याय में संस्कृत का व्याकरण है। इसमें 3566 सूत्र हैं। आठवें में प्राकृत , शौरसेनी , मागधी , पैशाची और अपभ्रंश आदि का व्याकरण है। आठवें में 1129 सूत्र हैं। इस ग्रंथ की टीका इन्होने स्वयं हि लिखी। अपने व्याकरण पर इन्होने 3 व्याख्या लिखी है– लघ्वी वृत्ति, मध्य वृत्ति, बृहती वृत्ति इन्होंने अपने व्याकरण पर 90 हजार श्लोक का शब्दार्थ वर्णविन्यास अथवा बृहन्यास नमक विवरण लिखा है।

जौमर प्रस्थान— इस के प्रवर्तक परिष्कार जुमरनंदी है। इसका प्रचार केवल बंगाल में है।

सारस्वत-प्रस्थान—यह ग्रंथ अनुभूतिस्वरूपाचार्य द्वारा लिखा गया है। इनका काल संवत 1150 है। इसमें कुल मूल सूत्र 700 हैं। इन्हों शब्दानुशासन कि रचना सिद्धराज के आदेश पर की। गुजरात के महाराज सिद्धराज (जयसिंह) के पुत्र आचर्य हेम चन्द्र के परम भक्त थे, कुमरपाल को आश्रित कर इन्होने कुमारपाल चरित या द्वयाश्रय काव्य लिखा।

मुग्धबोध— मुग्धबोधनामक अत्यन्त संक्षिप्त व्याकरण ग्रन्थ के द्वारा बोपदेव (1300 ई०) ने एक नूतन प्रस्थान का प्रवर्तक किया। नवद्वीप (पश्चिम बंगाल) तक ही इसका अध्ययन सीमित है। 15 वीं शताब्दी ई० में पद्मनाभदत्त ने 'सुपद्यम्' नामक व्याकरण लिखकर **सौपद्यम्-प्रस्थान** संस्कृत व्याकरण को दिया। इसका प्रचार मिथिला में था, अब समाप्त हो गया है।

1.3.4 व्याकरणशास्त्र के मुनित्रय

आचार्य पाणिनि— संस्कृत व्याकरण में महर्षि पाणिनि का अभूतपूर्व योगदान रहा है। त्रिमुनियोंमें पाणिनि अग्रणी माने जाते हैं। त्रिकांडशेष में पुरुषोत्तामदेव ने पाणिनि के दाक्षिपुत्र, शालांकि, शालातुरीय, आहिक, पाणिपुत्र, पाणिनेय इत्यादि नाम कहे हैं। इनके समय निर्धारण में विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। अधिकाँश विद्वान् इनका समय 500 ई० पूर्व मानते है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इनका समय 500-400 ई० पूर्व है। मैक्समूलर इनका समय 350 ई० पूर्व मानते हैं। गोल्डस्कूटर के अनुसार इनका काल 700– 600 ई0 पूर्व है तथा अधिकाँश विदेशी विद्वान इनका समय 700–400 ई० पूर्व मानते हैं। पाणिनि के जन्म स्थान के विषय में भी अधिक जानकारी प्राप्त नही हो पाती है। भामहकी काव्यालंकार काशिका पंचिका के अनुसार तथा गणरत्न महोदधि के अनुसार इनका जन्म स्थान शलातुर ग्राम माना जाता है जो कि उद्घांड नामक प्रसिद्ध स्थान के भीतर लहुर ग्राम के पास है। इनके माता पिता के विषय में पंडित युधिष्ठिर मीमांसक कहते है किपाणिनि के पिता का नाम पणि या पणिन् था। पतंजलि महाभाष्य के अनुसार इनकी माता का नाम दाक्षी है, **(सर्वे सर्वपदादेशा: दाक्षीपुत्रस्य पणिने:)**। कथासरित्सागर के अनुसार इनके गुरु का नाम वर्षाचार्य है। इनके गुरु वर्ष अथवा उपवर्ष नाम से भी जाने जाते हैं। नवीन वैयाकरण महेश्वर शिव को इनका गुरु मानते है। काव्यमीमांसा के अनुसार इनकी शिक्षा पाटलीपुत्र अथवा तक्षशिला से हुई थी। विभिन्न इतिहासकार इनके आराध्य

भगवान शंकर को मानते हैं। पंचतंत्र के अनुसार पाणिनि कीमृत्यु व्याघ्र के आघात से हुई थी, **(सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहन्यत्प्राणान् प्रियान् पणिने:)।**

पाणिनि की प्रमुख रचना अष्टाध्यायी मानी जाती है । इसके अपर नाम वृत्ति सूत्र, अष्टक, शब्दानुशासनतथा पाणिनीयाष्टक हैं। पाणिनीय शिक्षा को भी इनकी ही रचना माना जाता है, इसमें कुल 60 शलोक हैं । इनकी अन्य रचनाओं में – जाम्बवती विजय तथा द्विरूपकोश है। जाम्बतीजय का अपर नाम पातालविजय भी है इसमें 18 सर्ग हैं ।

कात्यायन— व्याकरण के त्रिमुनियों में दूसरे कात्यायन हैं । इन्हें याज्ञवल्क्य का पुत्र माना जाता है । इन्होंने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखे हैं । इनका समय350 ई० पूर्व तक माना जाता है। पुरुषोत्तामदेव ने त्रिकांड शेष में कात्यायन के अन्य नाम बताये हैं– कात्य, पुनर्वसु, वररुचि, मेधाजित तथा कात्यायन। समुद्रगुप्त के कृष्ण चरित में इनका नाम वररुचि और कात्यायन प्राप्त होता है । काथासरित्सागर तथा बृहत्काथामंजरी में इनका नाम श्रुतधर प्राप्त होता है । सायण के ऋग्वेद भाष्य में इनका नाम वररुचि प्राप्त होता है । कथासरित्सागर के अनुसार इनका जन्म कौशाम्बी (इलाहबाद) है। पतंजलि ने कात्यायन को दाक्षिनात्य माना है (प्रियतद्धिता: दाक्षिणात्या:) । वार्तिक गद्य तथा पद्य दोनों में लिखे गए हैं। इन्होंने लगभग 1250 सूत्रों पर 4000 वर्तिकोंकी रचना की है । 700 से अधिक सूत्रों की बिना कोई दोष दिखाए सुन्दर व्याख्या की है। लगभग 10 सूत्रों को व्यर्थ बताया है तथा 540 सूत्रों का परिवर्तन तथा परिष्करणकिया है। इसके अतिरिक्त कात्यायन वाजसनेयी प्रतिशाख्य के भी प्रणेता हैं । जल्हण कृत सूक्ति मुक्तावली में इनकी एक रचना स्वर्गारोहण का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।

पतंजलि— पाणिनि व्याकरण के अध्ययन के प्रथम युग का अंत पतंजलि के महाभाष्य में ही होता है तथा पाणिनि के स्थान को दृढ़ बनाने में कात्यायन और पतंजलि ने अपूर्व परिश्रम किया है इसलिए परवर्ती वैयाकरणों ने इन तीनों को मुनित्रय के नाम से पुकारा है । पतंजलि सर्वाधिक प्रमाणिक भाष्यकार माने जाते है । पातन्जल महाभाष्य इनकी रचना है। इनके अन्य नाम निम्नलिखित हैं – गोनर्दीय , गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, शेषराज, शेषाहि, चूर्णिकार, पदकार, वासुकि, फणि तथा फणिभृत । कामसूत्र में इनके अपर नाम गोनार्दीय तथा गोनिकापुत्रप्राप्त होता है तथा रामभद्र दीक्षित की पतंजलचरितम् में इनका नाम शेषावतार प्राप्त होता है । इनका समय 200 ई पूर्व माना जाता है । इनकी माता कानाम गोणिका था तथा इनका जन्म स्थान गोनर्द (गोंडा) उत्तर प्रदेश माना जाता है। इनकी रचना महाभाष्य है, इसमें 84 आह्निक अथवा 85 आह्निक हैं , प्रथम आह्निक को भूमिका भी माना जाता है। समुद्रगुप्त के कृष्ण चरित में इनकी एक रचना महानंद काव्य का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इनकी एक रचना योगसूत्र भी है। पंडित गुरुदहालदार के अनुसार इनकी एक रचना सिद्धांत सारावली भी है। भर्तृहरी ने अपने वाक्यपदीयम् में पतंजलि के बारे में लिखा है कि—

कृतेथपतंजलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना ।
सर्वेषाम् न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने ।।

1.3.5 व्याकरणशास्त्र का प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य

किसी भी शास्त्र की प्रवृत्ति का कोई न कोई प्रयोजन होता ही है । इसी प्रकार व्याकरण शास्त्र के भी प्रयोजन हैं। मूलतः व्याकरण का प्रमुख कार्य शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व का

निर्णय है परंतु महाभाष्यकार पतंजलि ने इसके अन्य कुछ मुख्य प्रयोजन तथा कुछ गौड़ प्रयोजन बताए हैं। महाभाष्य के अनुसार कुछ प्रयोजन इस प्रकार से हैं। महाभाष्य के प्रथम आह्निक में पतंजलि ने लिखा है कि- **"कानि पुनः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि"** अर्थात् व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के क्या प्रयोजन हैं ? अगली पंक्ति में मुख्य प्रयोजनों को बताते हुए पतंजलि कहते हैं कि— **"रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनं"** अर्थात् रक्षा, ऊह, आगम, लघु और असंदेह ये व्याकरण के प्रयोजन हैं।

रक्षा— " रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणं " लोपागम वर्ण विकारज्ञो हिसम्यक्वेदान्परिपालयिष्यति अर्थात् वेदों की रक्षा हेतु व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि लोप, आगम, आदेश को जानने वाला ही वेदों की ठीक तरह से रक्षा कर सकेगा। यहाँ पर लोप,आगम इत्यादि से तात्पर्य है कि वेदों के अर्थज्ञान के लिए हमें यह पता होना चाहिएकि किस स्थान पर किस वर्ण का लोप होता है। कहाँ पर वर्णों का आगम होता है इत्यादि अन्यथा व्याकरण के अध्ययन के अभाव मेंकोई भी व्यक्ति वेद के अर्थ का अनर्थ कर सकता है। इसलिए वेदों कि रक्षाके लिए व्याकरण का अध्ययन अत्यंत ही आवश्यक है।

ऊह— व्याकरण का दूसरा प्रयोजन है। ऊहः खल्वपि। मूलतः प्रकृति याग में प्रयुक्त मन्त्रों के देवतावाचक पदों को विकृति याग के देवता आदि का बोध कराने हेतु परिवर्तित करना ऊह कहलाता है। **न सर्वैर्लिङ्गैर्न च सर्वाभिर्विभक्तिभि: वेदे मंत्रा निगदिता:। ते चावश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विपरिणमयितव्या:। तान्नावैयाकरण: शक्नोति यथायथमिति विपरिणमयीतुं ॥ तस्माध्येयं व्याकरण् ॥** ऊह भी प्रयोजन है। वेद में मंत्र सभी लिंगों और सभी विभक्तियों सहित नहीं पढे गए हैं। उन्हें यज्ञ में प्रवृत्त हुए पुरुष को अवश्य ही ठीक ढंग से बदलना होता है और व्याकरण नहीं जानने वाला उन्हें उचित रूप से नहीं बदल सकता, इसलिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

आगम— "आगम: खल्वपि" । ब्राह्मणेन निष्कारणों धर्म: षड़ंगों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च । प्रधानञ्च षट्ष्वंगेषु व्याकरण । प्रधाने च कृतो यत्न: फलवान्भवति । शास्त्र कहता है कि ब्राह्मण को बिना कारण धर्मस्वरूप छःअंगों वाला वेद पढ़ना चाहिए और उसे जानना चाहिए।वेदांगों में व्याकरण प्रधान है और प्रधान में किया गया यत्न बहुत अधिक फलदायी होता है।

लघु- **"लघ्वर्थमिति चाध्येयं व्याकरणमिति"** लाघव के कारण व्याकरण पढ़ना चाहिए। ब्राहमण को शब्द अवश्य जानने चाहिए। व्याकरण को छोड़ अन्य किसी लघु उपाय से शब्द नहीं जाने जा सकते।

असंदेह— यह व्याकरण का पांचवाँ प्रयोजन है। **"असंदेहार्थं चाध्येयं व्याकरणमिति "** संदेह को दूर करने के लिए भी व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए। व्याकरण अध्ययन के इन पाँच मुख्य प्रयोजनों के अतरिक्त तेरह आनुषंगिक भी हैं।

1. तेऽसुराः— साधु शब्दों के उच्चारण हेतु व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। **तेSसुरा: हेलयोहेलय इति कुर्वन्त: पराबभुवु: । तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै । म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्द: ।** अर्थात् वे असुर हेलय: हेलय: ऐसा कहते हुए पराजित हो गए , यहां पर प्रकरण इस प्रकार है कि एक बार देवासुर संग्राम अथवा किसी युद्ध में असुर अपने शत्रुओं को संबोधित करते हुए हेलय: हेलय: कहने लगे जबकि वे हे अरय: ऐसा कहना चाह रहे थे,लेकिन उन्हें शुद्ध शब्द का ज्ञान नहीं था जिस कारण से वे र के स्थान पर ल

का उच्चारण कर रहे थे। इसअशुद्ध उच्चारण के फलस्वरूप वे युद्ध को हर गए। इसलिएब्राह्मण को गलत उच्चारण नहीं करना चाहिए , गलत उच्चारण निश्चय ही म्लेच्छ (अपशब्द) है, अत: म्लेच्छना हो जाएँ इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

2. दुष्टः शब्दः— दुष्टां शब्दान्मा प्रयुक्ष्महीत्यध्येयं व्याकरणम्अर्थात् यदि उच्चारण के समय शब्द हमारे द्वारा दूषित हो जाता है यानि कि हम बोलते समय गलत उच्चारण कर दें या उसका गलत प्रयोग कर दें तो तब वह शब्द अपने वास्तविक अर्थ को नहीं कह पाता है और वाग्वज्र बनकर अपने यजमान का नाश कर देता है। जैसे एक कथा आती है कि- त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप एक बार देवताओं के गुरु बन गए थे किन्तु वे गुप्त रूप सेराक्षसों का सहयोग कर रहे थे और जब इंद्र को यः ज्ञात हुआ कि वे राक्षसों का सहयोग कर रहे है तो इंद्र ने विश्वरूप को मार दिया, त्वष्टा को जब पता चला कि इंद्र ने उनके पुत्र को मार दिया तो त्वष्टा ने एक अभिचार यज्ञ प्रारंभ किया जिसका उद्देश्य ऐसा पुत्र उत्पन्न करना था जो इंद्र को मार दे। उन्होंनेस्वहेंद्रशत्रुर्वर्धस्व ऐसा मन्त्र पढ़ा। यहाँ पर उन्होंने बहुव्रीहि समास को प्रयोग करने के स्थान पर तत्पुरुष समास का अर्थ देने वाले शत्रु के उकार को उदात्त कर दिया जिससे अर्थ हो गया इंद्र रुपी शत्रु शक्तिशाली हो जबकि बहुव्रीहि में अर्थ होता इंद्र का शत्रु बढ़े। इसयज्ञ से इंद्र और अधिक शक्तिशाली हो गया और यज्ञ से उत्पन्न पुत्र वृत्तासुर इंद्र के द्वारा मारा गया। इसलिए हम दुष्ट शब्दों का प्रयोग ना करे इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

3. यदधीतम्— यदधीतमविज्ञातंनिगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्। तस्मादनर्थकम् माधिगीष्महीत्याध्येयं व्याकरणम्। जो मंत्रादि पढ़े तो हैं किन्तु उनका अर्थ ज्ञात नहीं है केवल रटा हुआ है। वह उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे अग्नि प्राप्तकरने के लिएराख में इंधन (सूखी लकड़ी) डालना व्यर्थ है। इसलिए अनर्थक व्यवहार न करे इसलिए व्याकरण पढना चाहिए क्योंकि सही अर्थ का ज्ञान तो व्याकरण के द्वारा ही हो सकता है।

4. यस्तु प्रयुंक्ते— यस्तु प्रयुंक्ते कुशलोविशेषे शब्दान् यथावद् व्यव्हारकाले। सोनंतमाप्नोति जायं परत्र वाग्योग्विद् दुष्यति चाप्शाब्दै:। जो शब्दों का कुशलतापूर्वक व्यवहारकालमें शब्दों का प्रयोग करता है वह अनंत जय को प्राप्त करने वाला होता है और जो कुशलता से प्रयोग नहीं कर पता वह हास्य का पात्र होता है। इसलिएशब्दों का सही-सही प्रयोग करने के लिए व्याकरण पढ़ना आवश्यक है।

5. अविद्वान्सः— स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, लोगों के शिष्टाचार के नियम भिन्न-भिन्न हैं। विद्वान इन नियमों का ध्यान रखते हैं। जबकि अविद्वान व्याकरण का ज्ञान न होने के कारण इन नियमों का उल्लंघन करते रहते हैं। इस लिए व्याकरण का अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है।

6. विभक्तिं कुर्वन्ति— प्रयाज एवं अनुयाज आदि यज्ञों में मंत्रों को संविभक्तिक करने का विधान है। लेकिन व्याकरण ज्ञान से रहित मंत्रों को संविभक्तिक करना असम्भव है।

7. यो वा इमाम्— वेद मंत्रों का पदपूर्वक, स्वरपूर्वक, अक्षरपूर्वक जानना बताया गया है। संहिता का पादपाठ, पद का स्वरज्ञान तथा अक्षर का दूसरे अक्षर या पद पर प्रभाव का ज्ञान व्याकरण के द्वारा ही हो सकता है। ऋत्विक की पात्रता प्राप्त करने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

8. चत्वारि— व्याकरण के आधार पर मंत्रों की आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक व्याख्याओं के अतरिक्त शास्त्रीय व्याख्या भी हो सकती है। इसलिए मंत्रों की व्याख्या करते हुए स्वयं का शब्दब्रह्म के साथ सायुज्य स्थापित करना भी व्याकरण का प्रयोजन है।

9. उत त्वः— व्याकरण का ज्ञान अर्जन करने वाले के सम्मुख जटिल शब्द भी सरल प्रतीत होते हैं। अर्थात वह किसी शब्दार्थ से अनभिज्ञ नहीं रहते।

10. सुक्तिमिव— साधु शब्दों का प्रयोग करने के कारण वैयाकरणों की वाणी में लक्ष्मी निहित मानी गई है।

11. सारस्वतीम्— यज्ञ में अपशब्द अथवा अशुद्ध उच्चारण करने पर प्रायश्चित करने का विधान है। इस लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

12. दशम्यां पुत्रस्य— संतान का नामकरण संस्कार के लिए शास्त्र में नियम हैं कि लड़की का नाम विषमाक्षर तथा लड़के समाक्षर होना चाहिए। कृदन्त नाम हो। तद्धित न हो इत्यादि। व्याकरण के अभाव में नियमानुसार सही व सार्थक नाम रखना सम्भव नहीं है।

13. सुदेवो असि वरुण— जिसकी जिह्वा पर संस्कृत के शब्द स्थान पा जाते हैं वह व्यक्ति सत्यभाषण करने का स्वभाव प्राप्त कर लेता है। सदैव सत्यवादी बने इस लिए भी व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

वैसे तो व्याकरणशास्त्र बहुत बृहद् है। परन्तु सामान्य रूप से प्रयोग में होने वाली संस्कृत भाषा के ज्ञान के लिए व्याकरण में मुख्य रूप से संधि, समास, प्रकृति, प्रत्यय इत्यादि का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है।

प्रत्यय— प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं। कृदन्त और तद्धित। जो प्रत्यय धातुओं के पश्चात लगते हैं, वे कृदन्त प्रत्यय होते हैं, कत्वा प्रत्यय आदि। जो प्रत्यय शब्दों के पश्चात लगते हैं, वे तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं।

स्त्रीप्रत्यय— कुछ संज्ञाएँ ऐसी होती हैं जिनके जोड़े के शब्द होते हैं। एक पुरुष और एक स्त्री। इस प्रकार की पुल्लिङ्ग संज्ञाओं से स्त्रीलिंग की जोड़ीदार संज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें स्त्रीप्रत्यय कहते हैं।

संधि— व्याकरण में दो वर्णों या पदों के मेल को संधि कहते हैं। संधिका सामान्य अर्थ होता है जोड़। ये तीन प्रकार की होती है- स्वर संधि, व्यंजन संधि और विसर्ग संधि।

स्वर संधि— जब दो या दो से अधिक स्वरों के मध्य सम्मेलन से विकार उत्पन्न होता है तो उसे स्वर संधि कहते हैं। इसकेअंतर्गत यण संधि , अयादि संधि , गुण संधि , वृद्धि संधि तथा दीर्घ संधि आते हैं।

यण संधि— इसका प्रमुख सूत्र है इको यणचि , अर्थात् जब इक (इउ ऋऌ) के सामने को स्वर हो तो क्रमशः य् व् र् ल् आदेश होता है। इसी प्रकार अयादि संधि तथा अन्य संधियाँ हैं।

व्यंजनसंधि— जब व्यंजनों के मेल से उनमे विकार उत्पन्न होता है, उसे व्यंजन संधि कहते हैं। इसमें श्चुत्व संधि, अनुस्वार संधि इत्यादि आते हैं।

विसर्ग संधि— जब विसर्ग में विकार उत्पन्न होता है तो उसे विसर्ग संधि कहते हैं।

समास— समास और सन्धि के ज्ञान के बिना संस्कृत का ज्ञान नही हो सकता। अतः संस्कृत को जानने के लिए समास और सन्धि का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। समास एक संज्ञा है। **अनेकपदानामेकपदीभवनं समासः** ।अनेक पद मिलकर एकपद होना समास है। **समसनं**

समासः अर्थात संक्षिप्त होने को समास कहते हैं। दो या दो से अधिक शब्द जब एकपद, एक अर्थ वाले बन जाते हैं, उसे समास कहते हैं। जैसे— **राज्ञ पुरुषः = 'राजपुरुषः'** – राजा कापुरुष। इस प्रकार दो या दो से अधिक पादों को एक पद के रूप रखना समास कहलाता है। **एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थानेक पद समूहः समासः।**

कारक— यह व्याकरण का एक महत्वपूर्ण प्रकरण है। कारक कि परिभाषा है जो क्रिया के साथ अन्वित हो जाए उसे कारक कहते हैं। कारक का अर्थ ऐसी वस्तु जिसका क्रिया के सम्पन्न में उपयोग हो। उदाहरणके लिए अयोध्या में राम ने अपने हाथों से अनेक मुद्राएँ ब्राहमणों को दान दी, इस वाक्य में क्रिया के संपादन हेतु जिन वस्तुओं का प्रयोग हुआ है वे करक कहलाती हैं। दान कि क्रिया किसी स्थान विशेष पर हो सकती हैं, यह पर अयोध्या में हुई है, इस क्रिया को करने वाले राम हैं अत: राम भी कारक हुए , क्रिया हाथ के द्वारा की गयी है इसलिए हाथ भी कारक कि श्रेणी में आया। मुद्राएँ दी गयी इसलिए यह भी कारक हुई, चूंकि ब्राह्मणों को दी गयी हैं इसलिए ब्राह्मण भी कारक हुए। क्रिया के संपादन हेतु छः कारक बताये गए हैं- कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण।

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणेइत्याहु: कारकाणिषट्।।

क्रिया से जिसका साक्षात् सम्बन्ध होता है वही कारक कहलाता है। राम के पुत्र श्याम को मोहन ने पीटा। इस प्रकार के वाक्यों में पीटने कि क्रिया से सीधा सम्बन्ध श्याम और मोहन काहै। राम का सम्बन्ध श्याम से है कि पीटने की क्रिया से राम का कोई सम्बन्ध नहीं है इसलिए सम्बन्ध में की गयी षष्ठी विभक्ति कारक नहीं मानी जाती।

1.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने व्याकरणशास्त्र का परिचय, प्रयोजन आदि का भली-भाँति अध्ययन किया। वेदों में ज्ञान-विज्ञान को जानने के लिए छः वेदांगों को प्रवृत किया गया। यह वेदांग छः हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुत, छन्द और ज्योतिष। इन छः वेदांगों में व्याकरण को वेद पुरुष का मुख बताया गया है- **'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'।** व्याकरण ही वह वेदांग है जो वेद मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और साथ ही इन मंत्रों को सुरक्षित भी रखता है। अतः जो लोग वेदादि शस्त्रों का अध्ययन करने के इच्छुक हैं, उनके लिए व्याकरणशास्त्र की अनिवार्यता है। व्याकरण शब्दों के प्रयोग, अनुप्रयोग एवं संश्लेषण के साथ-साथ विश्लेषण भी करता है। अतः शब्दों के संस्कार के लिए व्याकरण का अध्ययन अनिवार्य बताया गया है। व्याकरणशास्त्र द्वारा केवल वैदिक शब्दों का ही अनुशासन नहीं किया जाता अपितु लौकिक शब्दों का भी अनुशासन किया जाता है, और धर्मप्राप्ति उसका लाभ होता है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

वैदिक	–	वेद में होने वाला
शब्दानुशासन	-	व्याकरण शास्त्र का नाम
अवतरण	-	नीचे उतरना
अनादि	-	जिसका आरम्भ न हो
समास	-	संक्षिप्त

प्रयोजन - अभिप्राय, उपयोग

अनुशासन - नियंत्रण

लौकिक - सांसारिक, लोक सम्बन्धी

अभ्यास प्रश्न- 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिए।

1. भारतीय वाङ्मय का मूल माना जाता हैं।
 (क) वेद
 (ख) पुराण
 (ग) स्मृति
 (घ) इनमें से कोई नहीं

2. वेदांगों की संख्या है।
 (क) दो
 (ख) चार
 (ग) छः
 (घ) सात

3. व्याकरणशास्त्र को 'वेद पुरुष' का कौन सा अंग कहा जाता है।
 (क) पाद
 (ख) कर्ण
 (ग) नययन
 (घ) मुख

4. व्याकरणशास्त्र के मुख्य प्रयोजन हैं।
 (क) चार
 (ख) पाँच
 (ग) छः
 (घ) सात

5. व्याकरणशास्त्र के मुनित्रय हैं।
 (क) पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि
 (ख) पाणिनि, कात्यायन, भोज
 (ग) पाणिनि, नागेश भट्ट, भरत
 (घ) इनमें से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. किसी भी शास्त्र की प्रवृत्ति का कोई न कोई--------------होता ही है।
2. ब्रह्मा ने व्याकरण का ज्ञान---------को दिया था।
3. पतंजलि ने ---------शास्त्र की रचना की थी।
4. महाराज भोज द्वारा रचित ग्रंथ ------------ है।
5. व्याकरणशास्त्र के आनुषंगिक प्रयोजन ---------- हैं।

(3) सही विकल्प का चयन कीजिए।

1. त्रिमुनियोंमें पाणिनि अग्रणी माने जाते हैं। ( )
2. व्याकरण को छोड़ अन्य किसी लघु उपाय से शब्द नहीं जाने जा सकते। ( )
3. साधु शब्दों का प्रयोग करने के कारण वैयाकरणों की वाणी में लक्ष्मी निहित मानी गई है। ()
4. ऋषियों को मन्त्रसृष्टार: कहा गया है। ( )
5. सर्वप्रथम ब्रह्मा ने व्याकरण का ज्ञान इन्द्र को दिया। ( )

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, ग, घ, ख, क
2. प्रयोजन, बृहस्पति, महाभाष्य, सरस्वतीकण्ठाभरण, तेरह
3. सही, सही, सही, गलत, गलत

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, लेखक युधिष्ठिर मीमांसक।
2. संस्कृत वाङ्गमय का बृहद इतिहास पंचादश खण्ड (व्याकरण), लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक डॉ उमाशंकर शर्मा (ऋषि)।
4. संस्कृत व्याकरणशास्त्रेतिहासविमर्शः। लेखक डॉ अशोक चंद्र गौड़ शास्त्री।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्याकरणशास्त्र का परिचय विस्तार से दीजिए।
2. व्याकरणशास्त्र के मुनित्रय का परिचय दीजिए।
3. व्याकरणशास्त्र का मुख्य प्रयोजन पर प्रकाश डालिए।

इकाई 2 व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास
2.3.1 व्याकरण का अर्थ एवं महत्व
2.3.2 व्याकरणशास्त्रकी उपयोगिता
2.3.3 वेदाङ्गों में व्याकरण का स्थान
2.3.4 व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति
2.3.5 व्याकरणशास्त्र का विकास
2.3.6 पाणिनीयाष्टक में अनुल्लिखित प्राचीन आचार्य
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास से सम्बन्धित है। मानव जीवन में व्याकरणशास्त्र का बहुत महत्व है। व्याकरण ही शब्दों का शुद्ध उच्चारण सिखाता है, प्रकृति और प्रत्यय का बोध कराता है। विभिन्न प्रत्ययों द्वारा शब्द रचना सिखाता है, शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व का सम्यक बोध कराता है। व्याकरण शब्द संस्कार के माध्यम से मन को संस्कृत और परिशुद्ध करता है तथा शब्द ब्रह्म (परमात्मा) का ज्ञान कराता है। व्याकरण ज्ञान के बिना वेद-वेदान्त, स्मृति-पुराण, इतिहास, काव्य आदि किसी भी शास्त्रान्तर में प्रवेश नहीं किया जा सकता, अतः अन्य शस्त्रों में प्रवेश हेतु भी व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। आप इस इकाई में व्याकरणशास्त्र का अर्थ, महत्व, उत्पत्ति एवं विकास आदि का भली-भाँति अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- व्याकरणशास्त्र के अर्थ एवं महत्व को जानेंगे।
- व्याकरणशास्त्र की उपयोगिता का जानेंगे।
- व्याकरणशास्त्र का वेदांगों में क्या स्थान है ? जानेंगे।
- व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में जानेंगे।

2.3 व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

संसार की उपलब्ध भाषाओं में संस्कृत भाषा प्राचीनतम है। संस्कृत भाषा को देववाणी या सुरभारती कहा जाता है। इस भाषा में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बहुत बड़ा भण्डार है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक इस भाषा में रचनाएँ होती रही हैं। साहित्य लिखा जाता रहा है। समस्त प्राचीन भारतीय वैदिक ऋषि-मुनि तथा आचार्य इस विषय में सहमत हैं कि वेद अपौरुषेय तथा नित्य हैं। परम कृपालु श्रीभगवान प्रति कल्प के आरम्भ में ऋषियों को, जिस का आदि और अन्त नहीं है, ऐसी नित्य वाग् **'वेद'** का ज्ञान देते हैं, और उसी वैदिक ज्ञान से लोक का समस्त व्यवहार प्रचलित होता है। कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने लिखा है-

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।।

ज्ञानर्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न **'वेद'** शब्द का अर्थ **'ज्ञान'** ही है। यह ज्ञान समस्त आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के स्रोत या आधार के रूप में है। इसे ईश्वरीय ज्ञान भी कहा जाता है। वेद परम-प्रमाण अर्थात आगम या शब्द-प्रमाण में उत्कृष्ट है। मीमांसकों ने कहा है कि प्रत्यक्ष और अनुमान से हम जिस उपाय या ज्ञान को नहीं पा सकते उसे वेद बता सकता है अर्थात वेद ज्ञान के समस्त उपायों में श्रेष्ठ है। ब्रह्मा के द्वारा वेदों का ज्ञान ऋषियों को दिया गया। ऋषियों के माध्यम से यह ज्ञान देव, मानवादि को प्राप्त हुआ। इसीलिए कहा जाता है कि- **'ऋषयो मन्त्रदृष्टारः न सृष्टारः'।** ऋषियों ने गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हुए इन वैदिक

मंत्रों को अपने शिष्यों को दिया। वेदों में ज्ञान-विज्ञान को जानने के लिए छः वेदांगों को प्रवृत किया गया। यह वेदांग छः हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुत, छन्द और ज्योतिष।

2.3.1 व्याकरण का अर्थ एवं महत्व

जिस शास्त्र के माध्यम से शब्दों की व्याकृति या व्युत्पत्ति की जाय **(वि+आङ्+कृ-करणे+ ल्युट्)।** इस प्रकार प्रकृति, प्रत्यय आदि के माध्यम से जिस शास्त्र के द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति की जाय अथवा साधुत्व की निष्पत्ति (सिद्धि) की जाय, उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरण शब्दों के प्रयोग, अनुप्रयोग एवं संश्लेषण के साथ-साथ विश्लेषण भी करता है ॥ व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि- **"व्याक्रियंते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन व्यकरणमिति"** अर्थात् जिस शास्त्र में शब्दों के प्रकृति- प्रत्यय का विवेचन किया जाता है , उसे व्याकरण कहते हैं। इसमें यह विवेचन किया जाता है कि शब्द कैसे बनता है। इसमे क्या प्रकृति तथा क्या प्रत्यय लगा है। मानव जीवन में व्याकरणशास्त्र का बहुत महत्व है। व्याकरण ही शब्दों का शुद्ध उच्चारण सिखाता है, प्रकृति और प्रत्यय का बोध कराता है। विभिन्न प्रत्ययों द्वारा शब्द रचना सिखाता है, शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व का सम्यक बोध कराता है। व्याकरण शब्द संस्कार के माध्यम से मन को संस्कृत और परिशुद्ध करता है तथा शब्द ब्रह्म (परमात्मा) का ज्ञान कराता है। इसीलिए कहा जाता है-

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माऽभूतसकलः शकलः सकृच्छकृत् ॥

व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए जिससे 'स्' और 'श्' का अन्तर स्पष्ट हो सके। स्वजन (सम्बन्धी) 'श्वजन' (कुत्ता), सकल (सम्पूर्ण), 'शकल' (खण्ड)। व्याकरण ज्ञान के बिना शब्दों का उचित प्रयोग नहीं हो सकता और शब्दों का उचित प्रयोग न होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसलिए भाषा के संवादशीलता जैसे पुनीत उद्देश्य के संरक्षण के लिए व्याकरणशास्त्र अनिवार्यहै।व्याकरणशास्त्र को वेदपुरुष का मुख कहा गया है-**'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'** वेदपुरुष के पैर छन्द शास्त्र, हाथ कल्प, नयन ज्योतिष, कान निरुक्त, नाक शिक्षा और व्याकरण मुख है ऐसा प्रतिपादित है। मनुष्य के शरीर में मुख प्रमुख होता है, ठीक उसी प्रकार व्याकरण का स्थान है। यह विशेष महत्व व्याकरण शास्त्र का है। वेदों की रक्षा के लिए व्याकरणशास्त्र की अनिवार्यता है। व्याकरणशास्त्र के ज्ञान के बिना वेदों का ज्ञान होना सम्भव नहीं।वेद के छःअंगों में व्याकरण प्रमुख है।वाल्मीकि, व्यास आदि ऋषि मुनियों ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे साधु शब्द हैं। जो व्यक्ति शुद्ध शब्दों को जानकर उनका प्रयोग करता है वह अभ्युदय को प्राप्त करता है। अर्थात उस व्यक्ति को धर्म लाभ की प्राप्ति होती है।

2.3.2 व्याकरणशास्त्रकी उपयोगिता

व्याकरणशास्त्र का ज्ञान वेदादि अन्य शास्त्रोंको जानने के लिए जीवन में अत्यंत आवश्यक है। व्याकरणशास्त्र जीवन की उपयोगिता के लिए अत्यंत आवश्यक है। आचार्यों ने ज्ञान को मोक्ष का साधन माना है और बिना व्याकरण के ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः व्याकरण जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। विभक्तियों के ज्ञान के लिए व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया जाता है। नामकरण संस्कार में व्याकरणशास्त्र के कतिपय नियम माने गये हैं। स्मृति में कहा गया है कि नाम कृत्प्रत्ययान्त होना चाहिए। यदि व्याकरणशास्त्र का ज्ञान नहीं होगा तो

उचित नाम रखने में कठिनाई होगी। व्याकरण ज्ञान के बिना वेद-वेदान्त, स्मृति-पुराण, इतिहास, काव्य आदि किसी भी शास्त्रान्तर में प्रवेश नहीं किया जा सकता। भास्कराचार्य जी ने कहा है—

यो वेदवेदवदनं सदनं हि सम्यग्
ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥

अतः कहा जाता है कि चाहे किसी अन्य शास्त्र का अध्ययन किया जाये या न किया जाये, परन्तु व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए, क्योंकि व्याकरण ज्ञान के बिना शब्दों का उचित प्रयोग नहीं हो सकता और शब्दों का उचित प्रयोग न होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। महाभाष्य में व्याकरणशास्त्र के पाँच मुख्य प्रयोजन और तेरह गौण प्रयोजन बताये गये हैं। जिनमें से कुछप्रयोजनों का उदाहरण कुछ इस प्रकार से है- **तेऽसुराः-** साधु शब्दों के उच्चारण हेतु व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। **तेऽसुराः हेलयोहेलय इति कुर्वन्तः पराबभुवुः। तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः।** अर्थात् वे असुर हेलयः हेलयः ऐसा कहते हुए पराजित हो गए, यहां पर प्रकरण इस प्रकार है कि एक बार देवासुर संग्राम अथवा किसी युद्ध में असुर अपने शत्रुओं को संबोधित करते हुए हेलयः हेलयः कहने लगे जबकि वे हे अरयः ऐसा कहना चाह रहे थे,लेकिन उन्हें शुद्ध शब्द का ज्ञान नहीं था जिस कारण से वे र के स्थान पर ल का उच्चारण कर रहे थे। इसअशुद्ध उच्चारण के फलस्वरूप वे युद्ध को हर गए। इसलिए व्यक्ति को गलत उच्चारण नहीं करना चाहिए, गलत उच्चारण निश्चय ही म्लेच्छ (अपशब्द) है, अतः म्लेच्छना हो जाएँ इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

दुष्टः शब्दः- दुष्टां शब्दान्मा प्रयुक्ष्महीत्यध्येयं व्याकरणम्अर्थात् यदि उच्चारण के समय शब्द हमारे द्वारा दूषित हो जाता है यानि कि हम बोलते समय गलत उच्चारण कर दें या उसका गलत प्रयोग कर दें तो तब वह शब्द अपने वास्तविक अर्थ को नहीं कह पाता है और वाग्वज्र बनकर अपने यजमान का नाश कर देता है। जैसे एक कथा आती है कि- त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप एक बार देवताओं के गुरु बन गए थे किन्तु वे गुप्त रूप सेराक्षसों का सहयोग कर रहे थे और जब इंद्र को यः ज्ञात हुआ कि वे राक्षसों का सहयोग कर रहे है तो इंद्र ने विश्वरूप को मार दिया, त्वष्टा को जब पता चला कि इंद्र ने उनके पुत्र को मार दिया तो त्वष्टा ने एक अभिचार यज्ञ प्रारंभ किया जिसका उद्देश्य ऐसा पुत्र उत्पन्न करना था जो इंद्र को मार दे। उन्होंने स्वहेंद्रशत्रुर्वर्धस्व ऐसा मन्त्र पढ़ा। यहाँ पर उन्होंने बहुव्रीहि समास को प्रयोग करने के स्थान पर तत्पुरुष समास का अर्थ देने वाले शत्रु के उकार को उदात्त कर दिया जिससे अर्थ हो गया इंद्र रुपी शत्रु शक्तिशाली हो जबकि बहुव्रीहि में अर्थ होता इंद्र का शत्रु बढ़े। इसयज्ञ से इंद्र और अधिक शक्तिशाली हो गया और यज्ञ से उत्पन्न पुत्र वृत्तासुर इंद्र के द्वारा मारा गया। हम जीवन में दुष्ट शब्दों का प्रयोग ना करें, इसलिए व्याकरणशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। व्याकरणशास्त्र का ज्ञान जीवन की उपयोगिता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

2.3.3 वेदाङ्गों में व्याकरण का स्थान

वैदिक साहित्य के विकास के अन्तिम काल में ऐसे साहित्य का विकास हुआ जो वेदों की रक्षा करते हुए उन्हें यथार्थ रूप से समझने एवं तदनुकूल क्रियाओं का अनुष्ठान में सहायक हों। इसे 'वेदाङ्ग' कहा गया है। 'अङ्ग' यहाँ लक्षणा से 'उपकार' के अर्थ में है। मुण्कोपनिषद में चारों वेदों के साथ उनके छः वेदाङ्गों की गणना कराकर उन्हें 'अपरा विद्या' कहा गया है- **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।** इन छः वेदाङ्गों के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं- वेदों का अर्थ बोध व्याकरण तथा निरुक्त, उनका सही उच्चारण शिक्षा तथा छन्द एवं वेदों का याज्ञिक प्रयोग कल्प तथा ज्योतिष के द्वारा होता है। पाणिनीय शिक्षा में इन वेदाङ्गों को वेद-पुरुष के अवयवों का रुपक दिया गया है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

वेदाङ्गों में व्याकरण को वेद पुरुष का मुख बताया गया है- **'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'।** व्याकरण ही वह वेदांग है जो वेद मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और साथ ही इन मंत्रों को सुरक्षित भी रखता है। किसी भी भाषा के संरक्षण तथा उसके मौलिक ज्ञान के निमित्त व्याकरण की परम आवश्यकता होती है।वैदिक भाषा के पदों की रचना को स्पष्ट करने के लिए व्याकरण का विकास हुआ था। जो क्रमश: लौकिक संस्कृत की परिधि में आकर एक महत्त्वपूर्ण शास्त्र बन गया। तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र द्वारा वाक् को व्याकृत (व्युत्पन्न, विभाजित) किए जाने का आख्यान है। इसीलिए परम्परा से इन्द्र को प्रथम वैयाकरण कहा जाता है। यद्यपि अभी वैदिक भाषा का अनन्य रूप से विवेचन करने वाला कोई स्वतन्त्र व्याकरण ग्रन्थ नहीं मिलता, तथापि संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्द विश्लेषण के अनेक संकेत मिलते हैं। यास्क ने भी अपने निरुक्त में 'पदप्रकृति: संहिता' कहकर पदों के अध्ययन का महत्व और प्राचीनत्व निर्दिष्ट किया है। संहिताओं का पद-पाठ करने वाले लोग ही प्रथम वैयाकरण थे जिन्होंने पदों के रूप में मंत्रों को रूपान्तरित करके पद- विज्ञान (व्याकरण) का मार्ग प्रशस्त किया। व्याकरणशास्त्र के पाँच उद्देश्य कहे गये हैं- **रक्षा, ऊह, आगम, लघु, असंदेह** (रक्षोहगमलघ्वसंदेहा:)। **रक्षा** का अर्थ है- वेदों के मूल पदों को समझना।**ऊह** का अर्थ है यज्ञ में आवश्यकतानुसारप्रकृति रूप में पठित पदों का विकृत पाठ करना।**आगम** का अर्थ है प्राचीन उद्धरणों से व्याकरण के महत्व को समझना।**लघु**का अर्थ है भाषा शिक्षाके लिए लघुतम साधन होनाऔर **असन्देह** पद का अर्थ है किसी विशेष स्थल पर भाषागतसंदेहका निराकरण करना।

निरुक्त- शब्द प्रक्रिया की निष्पत्ति करने में 'निरुक्त अधिक उपयोगी है। अन्य वेदाङ्गों में निरुक्त के अतरिक्त यद्यपि 'शिक्षा' व्याकरण के साथ साम्य रखती है तथापि उसका उपयोग केवल उच्चारण सम्बन्धी नियमों तक ही सीमित है। यास्क ने भी शब्दों के चार भेद- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात-प्रातिशाख्य के अनुसार ही स्वीकार किए हैं। यह चार भेद शाब्दिक प्रक्रिया के एक प्रकार से मेरुदण्ड हैं। आगे के वैयाकरणों ने भी इन भेदों को स्वीकार कर व्याकरण का स्वरूप सुदृढ़ किया है। 'निरुक्त' वैदिक शब्दों के एक पंचाध्यायात्मक संग्रह **'निघण्टु'** की व्याख्या है।अनुमान होता है कि **'निघण्टु'** के नाम से कई संग्रह हुए थे। तभी

यास्क ने **'निघण्टवः'** यह बहुवचन प्रयोग किया है। यास्क ने एक विशेष निघण्टु का चुनाव करके उसी पर व्याख्या लिखी। यास्क का समय ८०० ई० पू० से ७०० ई० पू० के बीच माना जाता है।

2.3.4 व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति

व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति कब हुई इसका उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उपलब्ध वैदिक पदपाठों की रचना से पूर्व व्याकरणशास्त्र अपनी पूर्णता को प्राप्त हो चुका था। प्रकृति प्रत्यय, धातु उपसर्ग और समासघटित पूर्वोत्तरपदों का विभाग पूर्णतया निर्धारित हो चुका था। वाल्मीकीय रामायण से विदित होता है कि महाराज श्रीराम के काल में व्याकरणशास्त्र का सुव्यवस्थित पठन-पठान होता था। इसका एक सुन्दर वर्णन किष्किन्धाकाण्ड में प्राप्त होता है, जब प्रभु श्रीराम जी की भेंट हनुमान जी से होती है। ब्राह्मण वेशधारी हनुमान जी संस्कृत में सम्भाषण करते हैं। तब प्रभु श्री राम उनकी प्रशन्सा में कहते है-

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपभाषितम्॥

वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड में ९ व्याकरणों का उल्लेख मिलता है, महाराज श्रीराम के समय मे अनेक प्रकार के व्याकरण उपलब्ध थे। गीतसार नामक ग्रंथ में भी ९ प्रकार के व्याकरण का उल्लेख है। श्रीतत्त्वधी नामक वैष्णव ग्रंथ में ९ प्रकार के व्याकरणों का उल्लेख मिलता है। मुख्यत: वैदिक भाषा के पदों की रचना को स्पष्ट करने के लिए इस वेदांग का विकास हुआ था।भारत-युद्ध के समकालिक यास्कीय निरुक्त में व्याकरण प्रवक्ता अनेक व्याकरणों का उल्लेख मिलता है। महाभाष्यकार पतंजलि मुनि के लेखानुसार अत्यन्त पुरा-काल में व्याकरणशास्त्र का पठन-पाठन प्रचलित था। इन प्रमाणों से इतना सुव्यक्त है कि व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन काल में हो गई थी। त्रेता युग के आरम्भ में व्याकरणशास्त्र ग्रन्थ रूप में सुव्यवस्थित हो चुका था।

व्याकरण शब्द की प्राचीनता—

शब्दशास्त्र के लिए व्याकरण शब्द का प्रयोग रामायण, गोपथ ब्राह्मण, मुण्डकोपनिषद् और महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों में मिलता है। व्याकरणशास्त्र की प्राचीनता के विषय में इतना कहा जा सकता है कि मूलवेदात्तिरिक्त जितना भारतीय वैदिक वांगमय सम्प्रति उपलब्ध है। उसमें व्याकरणशास्त्र का उल्लेख मिलता है। अतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में उपलब्ध समस्त आर्ष वैदिक वांगमयकी रचना से पूर्व व्याकरणशास्त्र पूर्णतया सुव्यवस्थित बन चुका था, और पठन-पाठन में था। वेदों के साथ ही व्याकरण का महत्व जुड़ा हुआ है। सृष्टि रचना के साथ शब्दानुवर्ती व्याकरण का प्रणयन स्वयं ब्रह्मा से माना गया है। ब्रह्मा ने व्याकरण का ज्ञान बृहस्पति को दिया। बृहस्पति ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने भरद्वाज को व्याकरण शास्त्र का उपदेश दिया। भरद्वाज ने अन्य ऋषियों को और ऋषियों ने अन्य ब्राह्मणों को व्याकरण का ज्ञान दिया।

संस्कृत व्याकरणशास्त्र के प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा— भारतीय ऐतिहास में सब विद्याओं का आदि प्रवक्ताब्रह्मा जी को कहा गया है। यह एक निश्चित सत्य तथ्य है। अतः व्याकरणशास्त्र का

आदि प्रवक्ता भी ब्रह्मा हैं। ऋकतंत्र में लिखा है- **ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भारद्वाजाय, भारद्वाज ऋषिभ्य:, ऋषयो ब्राह्मणेभ्य:।** इस वचनानुसार व्याकरणशास्त्र के एकदेश अक्षरसाम्राज्य का सर्व प्रथम प्रवक्ता ब्रह्मा हैं। समस्त भारतीय प्राचीन ऐतिहासिकों का सुनिश्चित मत है कि लोक में जितनी भी विद्याओं का प्रकाश हुआ उन विद्याओं का प्रवचन ब्रह्मा जी ने ही किया था। यह प्रवचन अति विस्तृत था। यह आदि प्रवचन ही शास्त्र अथवा शासन नाम से प्रसिद्ध हुआ। उत्तरवर्ती समस्त प्रवचन ब्रह्माजी के आदि प्रवचन के अनुसार हुआ। इसलिए उत्तरवर्ती प्रवचन मुख्यतया अनुशास्त्र, अनुतन्त्र अथवा अनुशासन कहलाते हैं। इन के लिए शास्त्र अथवा तन्त्र शब्द का प्रयोग गौणी वृत्ति से किया जाता है।

द्वितीय प्रवक्ता बृहस्पति—

ऋकतन्त्र के वचनानुसार व्याकरणशास्त्र का द्वितीय प्रवक्ता बृहस्पति हैं। अङ्गिरा का पुत्र होने से यह अङ्गिरस नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें देवों का पुरोहित लिखा गया है। कोश ग्रन्थों में इन्हें सुराचार्य भी कहा गया है। मत्स्यपुराण में ये वाक्यपति पद से स्मृत हैं।बृहस्पति ने अनेक शास्त्रों का प्रवचन किया था। जैसे-

सामगान— छान्दोग्य उपनिषद् 2।22।1 में बृहस्पति के सामगान का उल्लेख मिलता है।

अर्थशास्त्र— बृहस्पति ने एक अर्थशास्त्र रचा था। इस अर्थशास्त्र के मत और वचन कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिसार और याज्ञवल्क्य स्मृति की बालक्रीडा टीका प्रभृति ग्रन्थों में बहुधा उद्धृत है।

इतिहास पुराण वायुपुराण के अनुसार बृहस्पति ने इतिहास पुराण का प्रवचन किया है। **वेदांग-** महाभारत में बृहस्पति को समस्त वेदांगों का प्रवक्ता कहा गया है। **व्याकरण**— महाभाष्य के अनुसार बृहस्पति ने इन्द्र को दिव्य सहस्त्र वर्ष तक प्रतिपद व्याकरण का उपदेश किया था। व्याकरण का नाम **शब्दपारायणं प्रोवाच** लिखा है। भर्तृहरि ने महाभाष्य की व्याख्या में लिखा है- **शब्दपारायण- रूढ़िशब्दोयं कस्यचिद् ग्रन्थस्य।** इस से प्रतीत होता है कि बृहस्पति के व्याकरण शास्त्र का नाम शब्दपारायण था। न्यायमंजरी में जयन्त ने बृहस्पति का एक वचन उद्धृत किया है। **वास्तुशास्त्र**— मत्स्य पुराण में बृहस्पति को वास्तुशास्त्र का प्रवर्तक लिखा गया है। **अगदतन्त्र**— बृहस्पति ने किसी अगदतन्त्र का भी प्रवचन किया था।

व्याकरणशास्त्र का आदि संस्कर्त्ता इन्द्र— पातञ्जल महाभाष्य से यह ज्ञात होता है कि बृहस्पति ने इन्द्र के लिए प्रतिपद पाठ द्वारा शब्दोपदेश किया था। उस समय तक लक्षणों का निर्माण नहीं हुआ था। सर्व प्रथम इन्द्र ने शब्दोपदेश की प्रतिपदपाठ रूपी प्रक्रिया को समझाया, और उसने पदों के प्रकृति प्रत्यय आदि विभाग द्वारा शब्दोपदेश प्रक्रिया की कल्पना की। इसका साक्ष्य तैत्तिरीय संहिता में मिलता है।

माहेश्वर सम्प्रदाय— व्याकरणशास्त्र में दो सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। एक ऐन्द्र और दूसरा माहेश्वर अथवा शैव। वर्तमान प्रसिद्धि के अनुसार कातन्त्र व्याकरण ऐन्द्र सम्प्रदाय का है और पाणिनीय व्याकरण शैव सम्प्रदाय का है।

2.3.5 व्याकरणशास्त्र का विकास

संस्कृत भाषा के महत्वपूर्ण व्याकरणशास्त्र की पृथक विधाएँ हैं, पृथक चिन्तन है तथा पृथक ध्येय भी है, जो अन्य भाषाओं के व्याकरण से इसे अधिक महत्व प्रदान करते हैं।

वैदिककाल से लेकर अद्यावधि इस शास्त्र में यथासमय अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे हैं जो संस्कृत भाषा को निरन्तर विकासोन्मुख बनाने के साथ-साथ वैज्ञानिकता प्रदान करते हैं। इसका सर्वप्रधान कारण है संस्कृत व्याकरणों की लम्बी एवं अविच्छिन्न परम्परा तथा नित्य नए प्रयोगों की प्रवृति। सृष्टि रचना के साथ शब्दानुवर्ती व्याकरण का प्रणयन स्वयं ब्रह्मा से माना गया है। ब्रह्मा ने व्याकरण का ज्ञान बृहस्पति को दिया। बृहस्पति ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने भरद्वाज को व्याकरण शास्त्र का उपदेश दिया। भरद्वाज ने अन्य ऋषियों को और ऋषियों ने अन्य ब्राह्मणों को व्याकरण का ज्ञान दिया। महाभाष्यकार पतंजलि ने भी उल्लेख किया है कि बृहस्पति ने इन्द्र को एक-एक पद का उपदेश करके शब्दपारायण नामक ग्रन्थ को पढ़ाया था। व्याकरण शास्त्र से जुड़े अन्य शब्द शास्त्री (शब्दिक) इन्द्र, चंद्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनी, जैनेन्द्र, का मुख्य रूप से उल्लेख प्रवर्तक आचार्यों के रूप में किया गया है। महर्षि पाणिनी ने भी अपने अष्टाध्यायी में अनेक ऐसे कतिपय विद्वानों का सन्दर्भ दिया है। 1 आपिशालि, 2 काश्यप, 3 गार्ग्य, 4 गालव, 5 चाक्रवर्मण, 6 भारद्वाज, 7 शाकटायन, 8 शाकल्य, 9 सेनक, 10 स्फोटायन, 11 पौष्करसादि। पाणिनी का व्याकरण लौकिक एवं वैदिक शब्दशास्त्रों का समीकरण है। यह केवल शब्दानुशासन नहीं अपितु निसर्ग एवं जीवन का अर्थानुशासन भी है जिसने 'संस्कृत' को संस्कृत भाषा का रूप दिया। अनेक वैयाकरणों के द्वारा प्रवर्तित यह व्याकरणशास्त्र पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि के द्वारा पूर्णतः सुव्यवस्थित किया गया। इन तीनों मुनियों ने सूत्र, वार्तिक तथा भाष्य के रूप में अपने विचारों को सुगठित करते हुए इसे महान कृतियों का स्वरूप प्रदान किया। इसके पश्चात भी अनेक वैयाकरणों ने अपनी बौद्धिक तपस्या के द्वारा व्याकरणशास्त्र की इस महान परम्परा को आगे बढ़ाया। व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में काल का निर्धारण निश्चित रूप से किया जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता है किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भाषा के उदय तथा वैदिकसाहित्य की सर्जना के समय से ही इसका सूत्रपात किसी न किसी रूप में हो गया था। वैदिक संहिताओं में व्याकरण की दृष्टि से अनेक शब्दों की व्युत्पत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। वाल्मीकि रामायण के समय व्याकरण का सुव्यवस्थितरूप पूर्णतः स्थित हो चुका था। भगवान श्रीरामचन्द्र जी की लक्ष्मण से हनुमान के सम्बन्ध में कही गई उक्ति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है-

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥

व्याकरणशास्त्र की इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए यास्क एवं शाकटायन जैसे लब्ध प्रतिष्ठित निरुक्तकरों ने व्याकरण विषयक अनेक नूतन तथ्यों का उद्घाटन किया। अंततः अष्टाध्यायी के रूप में महर्षि पाणिनि ने व्याकरणशास्त्र को पूर्णतः व्यवस्थित एवं समवेत रूप से लिपिबद्ध किया जिसे कात्यायन ने अपने वार्तिक एवं पतंजलि ने अपने महाभाष्य के द्वारा लोकोपयोगी बनाया।

आचार्य पाणिनि— संस्कृत भाषा को अद्भुत व्याकरण का उपहार देने वाले पाणिनि का जन्म शालातुर ग्राम (वर्तमान लाहुर, वर्तमान पाकिस्तान में अटक के समीप) में हुआ था, इसीलिए पतंजलि ने इन्हें प्रायः 'शालातुरीय' कहा है। इनकी माता का नाम दाक्षी था, अतः ये दाक्षी पुत्र भी कहे गये हैं। कथासरित्सागर के अनुसार ये वर्ष नामक आचार्य के शिष्य थे। इनका व्याकरण प्रस्थान संस्कृत व्याकरण के सभी दस उपलब्ध प्रस्थानों में व्यापकता, गम्भीरता एवं स्वीकार्यता के कारण अग्रणी है। लौकिक संस्कृत के साथ वैदिक भाषा की तुलना एवं उनके शब्दों की

सूक्ष्म विवेचना इनके व्याकरण की विशिष्टता है। अपनी प्रख्यात कृति **'अष्टाध्यायी'** में इन्होंने 4000 सूत्रों (तथा 14 प्रत्याहार सूत्रों) के द्वारा तात्कालिक भाषा का जैसा सर्वेक्षण इन्होंने किया है, वैसा किसी ग्रन्थ में नहीं है। अष्टाध्यायी आठ अध्यायों में विभाजित सूत्र ग्रन्थ है, प्रत्येक अध्याय को 4-4 पादों में विभक्त किया गया है। विषयों का क्रम प्रकरणों के अनुसार, अनुवृत्ति को ध्यान में रखकर, वैज्ञानिक ढंग से रखा गया है। यह अपचरित भाषा को सिखाने वाली रचना नहीं है, अपितु परिचित-प्रचलित भाषा के पदों का विवरण देने वाली कृति है। लोक तथा वेद में व्यवहृत प्रत्येक पद के प्रत्येक अक्षर की व्याख्या करना इसका लक्ष्य है। अष्टाध्यायी को समझने के लिए उन्होंने कुछ सहायक ग्रन्थ भी परिशिष्ट के रूप में लिखें हैं- गणपाठ, धातुपाठ, लिंगानुशासन तथा उणादिसूत्र। इन पांचों का संयुक्त नाम है- पञ्चपाठी। इस प्रकार पाणिनि ने अपने व्याकरण- प्रस्थान का प्रवर्तन इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के महान उद्देश्य से किया था। यह कहा जाता है कि संस्कृत की समस्त शब्द-सम्पदा नष्ट हो जाए तो भी अष्टाध्यायी के द्वारा उसका पुनरुद्धार हो सकता है।

आचार्य कात्यायन— पाणिनीय सूत्रों की समीक्षा लघुकाय वार्तिकों में करने वाले कात्यायन का काल ३५० ई० पू० माना जाता है। इनका नाम वररुचि भी था। पाणिनि के व्याकरण में काल-गत व्यवधान से कुछ परिवर्तन की आवश्यकता हो गयी थी जिसे वार्तिक में (उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकम्-काव्यमीमांसा) निरूपित किया गया है। पाणिनि के समय दीधी और वेवी धातुएँ प्रयुक्त थी, कात्यायन के काल में अप्रचलित हो गयी। 'इन्धिभवतिभ्यां च' इस सूत्र की आवश्यकता नहीं है, इसी प्रकार भाषा के विकास का निरीक्षण वार्तिक में है।

आचार्य पतञ्जलि— व्याकरण महाभाष्य के लेखक पतञ्जलि गोनर्द (गोंडा उत्तरप्रदेश) के निवासी थे तथा इनकी माता का नाम गोणिका था। पतञ्जलि ने पाणिनि के महत्वपूर्ण सूत्रों तथा उनपर कात्यायन के वर्तिकों की समीक्षा महाभाष्य में की है। महाभाष्य के प्रथम आह्निक के द्वारा पतञ्जलि ने भूमिका-लेखन की यास्कीय विधि को विकसित किया। महाभाष्य के प्रथम आह्निक को 'पस्पशा' (विमर्श) कहते हैं। इसमें शब्द और अर्थ का स्वरूप, व्याकरण के प्रयोजन, शब्दानुशासन की प्रक्रिया, शब्दार्थ-सम्बन्ध, व्याकरण का स्वरूप तथा अइउण् आदि सूत्रों में वर्णोपदेश का महत्व, इस प्रकार आवश्यक विषयों का गम्भीर विवेचन सरल शैली में किया गया है। व्याकरणशास्त्र में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को **'मुनित्रय'** कहा जाता है। इस पाणिनीय तन्त्र को **'त्रिमुनि व्याकरणम्'** के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन मुनियों में भी सिद्धान्त की दृष्टि से क्रमशः प्रमाणिकता बढ़ती गयी है- यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्। इस दृष्टि से पतञ्जलि का महत्व दोनों आचार्यों से बढ़कर है। जीवित भाषा की दृष्टि से इन तीन वैयाकरणों में ही व्याकरण की समाप्ति हो गयी क्योंकि भाषा के तथ्यों का निरीक्षण आगे नहीं हुआ।

आचार्य भर्तृहरि— पहले लोग इनका काल ६५० ई० पू० के कुछ पूर्व मानते थे। किन्तु देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने पुष्ट प्रमाणों के आधार ४५०-५०० ई० के बीच इनका काल अब स्वीकार कर लिया है। पाणिनीय व्याकरण तन्त्र में वैयाकरण दार्शनिक भर्तृहरि का अनुपम स्थान है। इन्होंने 'वाक्यपदीय'के रूप में व्याकरण दर्शन की एक अद्भुत कृति के द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। महाभाष्य में निरूपित दार्शनिक सिद्धान्तों तथा अर्थविज्ञान के नियमों का पद्यात्मक कारिकाओं के रूप में विवेचन वाक्यपदीय में है।

भट्टोजिदीक्षित- व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि कि अष्टाध्यायी पर शब्द्कौस्तुभ नामक टीका लिखी। भट्टोजिदीक्षित एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर भट्ट था। भाई का नाम रंगोजिभट्ट और पुत्र भानुदीक्षित तथा वीरेश्वरादीक्षित थे। इनके गुरु शेषकृष्ण थे। वैयाकरण भूषणसार के रचयिता कौण्डभट्ट भट्टोजिदीक्षित के भतीजे थे। तथा इनकेपौत्र का नाम हरिदीक्षित था। भट्टोजिदीक्षित नेअप्पयदीक्षित से मीमांसा का ज्ञान प्राप्त किया था।भट्टोजिदीक्षित का समय १५६०-१६१० ई० है। तथावेल्वाकरइनका समय १६००-१६५० ई मानते हैं।भट्टोजिदीक्षित की सर्वश्रेष्ठ कृति शब्दकौस्तुभ है। यहपूर्ण रूप से तो उपलब्ध नहीं है। किन्तु जितना अंश इसका प्राप्त होता है उससे भट्टोजिदीक्षित की व्याकरण के प्रति सूक्ष्म दृष्टि की अथाहता का ज्ञान प्राप्त होता है।

वरदराज— भट्टोजिदीक्षित के पश्चात दूसरा महत्वपूर्ण नाम वरदराज का है। ‘मध्यसिद्धान्तकौमुदी’ से पता चलता है है कि यह भट्टोजिदीक्षित के शिष्य थे। इस प्रकार इनका समय १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध रहा होगा। इनके चार ग्रन्थ मिलते हैं लघुसिद्धान्तकौमुदी, मध्यसिद्धान्तकौमुदी, गीर्वाणपदमञ्जरी और सारसिद्धान्तकौमुदी। इनमे लघुसिद्धान्तकौमुदी, मध्यसिद्धान्तकौमुदीऔर सारसिद्धान्तकौमुदी भट्टोजिदीक्षितरचित ‘सिद्धान्तकौमुदी’ संक्षित संस्करण हैं। लघुसिद्धान्तकौमुदी का निर्माण संस्कृत व्याकरण के प्रारम्भिक अध्येताओं के लिए हुआ है।

नागेश भट्ट - इन्हें नागेश्वर या नागोजि भी कहा जाता है। नागेश भट्ट नव्य व्याकरण केआचार्यों में अग्रणी आचार्य माने जाते हैं। पाणिनीय परम्परा में वरदराजाचार्य के पश्चात् इन्हीं का नाम मुख्य रूप से आता है। ये एक महाराष्ट्रीय ब्राहमण थे। इनकी माता का नाम सती देवी तथा पिता का नाम शिवभट्टथा। इनके गुरु हरिदीक्षित थे, इनसे नागेश ने व्याकरण का अध्ययन किया था। नागेश के शिष्य का नाम वैद्यनाथपायगुण्य था। प्रयाग के समीप श्रृंगवेरपुर के राजा रामसिंह इनके आश्रयदाता थे। इनका समय १७३० से १८१०तक माना जाता है। नागेश भट्ट एक दार्शनिक व्याकरणाचार्य हैं। इन्होंने मौलिक रचनाओं के साथ टीका ग्रंथों की भी रचना की थी। इन्होंने कैय्यट की महाभाष्य की प्रदीप टीका पर उद्योत (विवरण) नामक टीका भी लिखी है। नागेश के सात मुख्य ग्रन्थ हैं। जिनके नाम इस प्रकार- लघुशब्देंदुशेखर, परमलघुमञ्जूषा, बृहच्छब्देंदुशेखर, स्फोटवाद, परिभाषेंदुशेखर, महाभाष्यप्रत्याखानसंग्रह और लघुमंजूषा।

2.3.6 पाणिनीयाष्टक में अनुल्लिखित प्राचीन आचार्य

जिन आचार्यों का वर्णन पाणिनीय अष्टक में नहीं मिलता, परन्तु वे पाणिनि से पूर्व के आचार्य हैं। तथा जिनका व्याकरण निर्विवाद है।

1.शिव या महेश्वर— महेश्वर प्रोक्त व्याकरण का उल्लेख अनेक ग्रन्थों में मिलता है जैसे- महाभारत शान्तिपर्व के शिवसहस्रनाम में शिव को पदंग का प्रवर्तक कहा है- **वेदात् पडङ्गान्युद्धृत्य**। पडङ्ग के अन्तर्गत व्याकरण प्रधान अंग है। अतः शिव ने व्याकरणशास्त्र का प्रवचन किया था। यह महाभारत के वचन से सिद्ध होता है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार शिव की माता का नाम सुरभि और पिता का नाम प्रजापति कश्यप था। शिव के दस सहोदर भाई थे। ये भारतीय इतिहास में एकादश रुद्र कहलाते हैं। सम्भवत शिव इनमे ज्येष्ठ थे।

2. बृहस्पति— ऋकतन्त्र के वचनानुसार व्याकरणशास्त्र का द्वितीय प्रवक्ता बृहस्पति हैं। अङ्गिरा का पुत्र होने से यह अङ्गिरस नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें देवों का पुरोहित लिखा गया है। कोश ग्रन्थों में इन्हें सुराचार्य भी कहा गया है। मत्स्यपुराण में ये वाक्यपति पद से स्मृत हैं।बृहस्पति ने अनेक शास्त्रों का प्रवचन किया था।

3. इन्द्र— पातञ्जल महाभाष्य से यह ज्ञात होता है कि बृहस्पति ने इन्द्र के लिए प्रतिपद पाठ द्वारा शब्दोपदेश किया था। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार देवों की प्रार्थना पर देवराज इन्द्र ने सर्व प्रथम व्याकरणशास्त्र की रचना की। इन्द्र से सर्वप्रथम प्रतिपद, प्रकृति प्रत्यय विभाग का विचार कर शब्दोपदेश की प्रक्रिया प्रचलित की। इन्द्र के पिता का नाम कश्यप प्रजापति था और माता का नाम अदिति था। ऐन्द्र व्याकरण इस समय उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

4. वायु— तैत्तिरीय संहिता में वर्णित है कि इन्द्र ने वाणी को व्याकृत करने में वायु से सहायता ली थी। इन्द्र को व्याकरण की रचना में सहयोग देने वाला वायु भी नि:सन्देह ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। इन्द्र और वायु के सहयोग से संस्कृत के व्याकरण की सर्वप्रथम रचना हुई।

5. भरद्वाज— यद्यपि भरद्वाजतन्त्र इस समय उपलब्ध नहीं है तथापि ऋकतन्त्र के पूर्वोक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि भरद्वाज व्याकरणशास्त्र के प्रवक्ता थे। भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में बृहस्पति को देवों का पुरोहित कहा गया है।

6. भागुरि— आचार्य भागुरि का उल्लेख पाणिनीय अष्टक में उपलब्ध नहीं होता। भागुरि के व्याकरण सम्बन्धि जितने वचन या मत उद्धृत मिलते हैं उन से प्रतीत होता है कि भागुरि का व्यकारण भले प्रकार से परिष्कृत था और वह पाणिनीय व्याकरण से कुछ विस्तृत था।

7. पौष्करसादि— आचार्य पौष्करसादि का नाम पाणिनीय सूत्रपाठ में उपलब्ध नहीं होता। परन्तु महाभाष्य के एक वार्तिक में इसका उल्लेख है। तैत्तिरीय और मैत्रायणीय प्रातिशाख्य में पौष्करसादि के अनेक मत उद्धृत हैं। पौष्करसादि में श्रुयमाणा तद्धित प्रत्यय के अनुसार इनके पिता का नाम पुष्करसत् था। जयादित्य प्रभृति वैयाकरणों का भी यही मत है।

8. चारायण— आचार्य चारायण ने किसी व्याकरणशास्त्र का प्रवचन किया था, इस का स्पष्ट निर्देशक कोई वचन उपलब्ध नहीं हुआ। लौगाक्षिगृह के व्याख्याता देवपाल ने 5।1। की टीका में चारायण अपरनाम' चारायणि का एक सूत्र और उसकी व्याख्या उद्धृत की है।

9. काशकृत्स्न-पाणिनीय शब्दानुशासन में आचार्य काशकृत्स्नका वैयाकरण का उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी काशकृत्स्न का व्याकरण अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाभाष्य के प्रथम आह्निक के अन्त में आपिशल और पाणिनीय शब्दानुशासन के साथ काशकृत्स्न शब्दानुशासन का उल्लेख मिलता है।

10. शन्तनु— आचार्य शन्तनु ने किसी सर्वांगपूर्ण व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया था।

11. वैयाघ्रपद्य— आचार्य वैयाघ्रपद्य का नाम पाणिनीय व्याकरण में उपलब्ध नहीं होता। काशिका ग्रन्थ में इनके बारे में कुछ लिखा गया है। उससे यह ज्ञात होता होता है कि आचार्य वैयाघ्रपद्य का व्याकरण था।

12. माध्यन्दिनि— आचार्य माध्यन्दिनि का उल्लेख पाणिनीय तन्त्र में नहीं है। परन्तु काशिका ग्रन्थ में एक कारिका उद्धृत है। माध्यन्दिनि पद अपत्यप्रत्ययान्त है। तदनुसार इनके पिता का नाम मध्यन्दिन था। मध्यन्दिन वाजसनेय याज्ञवल्क्य का साक्षात् शिष्य थे। उन्होंने याज्ञवल्क्य

प्रोक्त शुक्लयजुर्वेदीय संहिता के पदपाठ का प्रवचन किया था। मध्यन्दिन के पुत्र माध्यन्दिनि आचार्य पाणिनि से प्राचीन हैं।

13. रौढि— आचार्य रौढि का निर्देश पाणिनीय तन्त्र में नहीं है। आचार्य वामन ने काशिका ग्रन्थ में उदाहरण दिया है- **"आपिशलपाणिनीया, पाणिनीय रौढीया रौढीयकाशकृत्स्ना"।** इन में श्रुत आपिशलि पाणिनि और काशकृत्स्न निस्सन्देह वैयाकरण हैं। अतः इनके साथ आचार्य रौढि भी वैयाकरण हैं।

14. शौनकि— चरक संहिता के टीकाकार जज्झट ने चिकित्सास्थान 2।27 की व्याख्या में आचार्य शौनकि का एक मत उद्धृत किया है।

15. गोतम— गोतम का नाम पाणिनीय तन्त्र में नहीं मिलता। परन्तु महाभाष्य में मिलता है- **"आपिशलपाणिनीयव्याडीयगौतमीया"** प्रयोग मिलता है। इसमें स्मृत आपिशलि, पाणिनि, और व्याडि ये तीन वैयाकरण हैं। अतः इन के साथ स्मृत आचार्य गोतम भी वैयाकरण हैं।

16. व्याडि- आचार्य व्याडि का निर्देश पाणिनीय सूत्रपाठ में नहीं मिलता। आचार्य शौनाक ने ऋक्प्रातिशाख्य में व्याडि के अनेक मत उद्धृत किये हैं। महाभाष्य में आचार्य व्याडि का निर्देश किया गया है-**"आपिशलपाणिनीयव्याडीयगौतमीया"।** इसमें प्रसिद्ध वैयाकरण आपिशलि और पाणिनि के अन्तेवासियों के साथ व्याडि का भी नाम है।व्याडि का अन्य नाम दाक्षायण भी है। इन्हें वामन ने काशिका में दाक्षि के नाम से स्मरण किया है। यह दाक्षि पुत्र पाणिनि के मामा हैं।

मूलत: साहित्यकार इन्द्र को प्रथम वैयाकरण मानते हैं। यस्क ने अपने निरुक्त में लिखा है कि **"पदप्रकृति: संहिता"** इस कथन से पदों के अध्ययन कि महत्ता तथा प्राचीनता सिद्धहोती है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो व्याकरण का प्रथम पूर्ण ग्रंथ महर्षि पाणिनि किअष्टाध्यायी ही प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में लगभग 4000 सूत्र प्राप्त होते हैं। इनमें से 700 सूत्र वैदिक भाषा के विवेचन से संबन्धित हैं।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में पाणिनी से पूर्व के दस वैयाकरणों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। जिनके नाम कुछ इस प्रकार हैं- आपिशिल, काश्यप , गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, शेनक तथा स्फोटायन।

2.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास का अध्ययन किया। **"व्याक्रियंते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन व्यकरणमिति"** अर्थात् जिस शास्त्र में शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरणशास्त्र कहते हैं। इसमें यह विवेचन किया जाता है कि शब्द कैसे बनता है। इसमे क्या प्रकृति तथा क्या प्रत्यय लगा है। व्याकरणशास्त्र को वेदपुरुष का मुख कहा गया है-**'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'** वेदपुरुष का मुख व्याकरण को कहा गया है। मानव शरीर में जो महत्व मुख का है, वही वेदरूपी शरीर में व्याकरणशास्त्र का है। मुख का भूषण सुंदर वाणी को माना गया है एवं सुंदर वाणी परिनिष्ठित भाषा से ही सम्भव है, जो विचारों की अभिव्यक्ति का सर्वप्रधान साधन है। भाषा एवं विचारों में तारतम्य स्थापित करने वाली विद्या ही व्याकरणशास्त्र के रूप में जानी जाती है, जिसका प्राचीनकाल से ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

तारतम्य - जोड़मेल,

परिनिष्ठत - पूर्णतया कुशल

अस्तित्व - विद्यमान होने की स्थिति

सर्वांगपूर्ण - सब तरह से पूर्ण

अनुपम - सर्वोत्तम, उपमा रहित

परिशिष्ट - छूटा हुआ, बचा हुआ

शब्दानुशासन - व्याकरणशास्त्र का नाम

वैदिक - वेदों में होने वाला

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिए।

1. देववाणी कहा जाता है।

(क) संस्कृत को (ख) हिन्दी को

(ग) तमिल को (घ) इनमे से कोई नहीं

2. इन्द्र ने वाणी को व्याकृत करने में सहायता ली थी।

(क) ब्रह्मा से (ख) अग्नि से

(ग) शिव से (घ) वायु से

3. महाभाष्य के लेखक हैं।

(क) नागेश भट्ट (ख) माघ

(ग) पतंजलि (घ) पाणिनि

4. वेदांगों की संख्या है।

(क) छः (ख) सात

(ग) आठ (घ) नौ

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. व्याकरणशास्त्र में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को----------कहा जाता है।

2. व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि कि अष्टाध्यायी पर--------नामक टीका लिखी।

3. व्याकरणशास्त्र का आदि प्रवक्ता ------- को माना जाता है।

4. क्यपदीय ------- की कृति है।

(3) सही विकल्प का चयन कीजिए।

1. व्याकरणशास्त्र को वेदपुरुष का नयन कहा गया है।

2. वाल्मीकि, व्यास आदि ऋषि मुनियों ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे साधु शब्द हैं।

3. आचार्य व्याडि का निर्देश पाणिनीय सूत्रपाठ में मिलता है।

4. आचार्य माध्यन्दिनि का उल्लेख पाणिनीय तन्त्र में नहीं है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, घ, ग, क,

2. मुनित्रय, शब्द्कौस्तुभ,ब्रह्मा, भर्तृहरि

3. गलत, सही, गलत, सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, लेखक युधिष्ठिर मीमांसक।

2. संस्कृत वाङ्गमय का बृहद इतिहास पंचादश खण्ड (व्याकरण), लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय।

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक डॉ० उमाशंकर शर्मा (ऋषि)।

4. संस्कृत व्याकरणशास्त्रेतिहासविमर्शः,लेखक डॉ अशोक चंद्र गौड़ शास्त्री।

5. आदित्य संस्कृत व्याकरण, लेखक डॉ० गजानन पाण्डेय।

6. लघुसिद्धान्तकौमुदी, लेखक वरदराज, व्याख्याकार महेशसिंह कुशवाहा।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्याकरणशास्त्र के महत्व का वर्णन कीजिए।

2. व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

3. व्याकरणशास्त्र की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-3 व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावन

3.2 उद्देश्य

3.3 व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का परिचय

3.3.1 पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों का परिचय

3.3.2 पाणिनि का परिचय

3.3.3 पाणिनि से उत्तरवर्ती आचार्यों का परिचय

3.4 सारांश

3.5पारिभाषिक शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावन

प्रिय शिक्षार्थियों !

प्रस्तुत इकाई 'व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का परिचय' से सम्बन्धित है। भारतीय ज्ञान-परम्परा में व्याकरणशास्त्र का सर्वाधिक महत्व है। भाषा का उद्गम स्थान शब्द ही है। यदि शब्द ज्योति से यह संसार आलोकित न होता तो त्रैलोक्य में अन्धकार व्याप्त हो जाता। शब्द संहिता के रूप में सर्वप्रथम वैदिक-वाङ्मय के प्रकट होने से व्याकरण वेद का अंग माना गया है। कारण यह है कि वेद में अनेकों पदों की व्युत्पत्तियाँ उपलब्ध होती हैं जो व्याकरण की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त मानी जा सकती है। इस सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि ही प्रमाणभूत आचार्य हैं। उन्होंने महाभाष्य के प्रथम आह्निक में पाँच ऋचाओं को उद्धृत कर व्याकरणशास्त्र के प्रयोजनों को संकेतित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो व्याकरण का प्रथम पूर्ण ग्रंथ महर्षि पाणिनि कीअष्टाध्यायी ही प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में लगभग 4000 सूत्र प्राप्त होते हैं। इनमें से 700 सूत्र वैदिक भाषा के विवेचन से संबन्धित हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में पाणिनी से पूर्व के 10 वैयाकरणों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।आपिशिल, काश्यप , गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, शेनक तथा स्फोटायन। प्रस्तुत इकाई में आप पाणिनि से पूर्ववर्ती एवं पाणिनि से उत्तरवर्ती आचार्यों का भली-भाँति अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- ➢ व्याकरणशास्त्र के बारे में जान सकेंगे।
- ➢ व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों के बारे में जान सकेंगे।
- ➢ पाणिनि से पूर्ववर्ती एवं पाणिनि से उत्तरवर्ती आचार्यों के बारे में जान सकेंगे।
- ➢ व्याकरणशास्त्र की उपयोगिता को समझेंगे।
- ➢ व्याकरणशास्त्र के प्रति रुचि उत्पन्न होगी।

3.3 व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का परिचय

संस्कृत भाषा की प्राचीनता सर्वमान्य है। संस्कृत भाषा का मूल उद्गम वैदिक संहितायें हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत व्याकरण के आदि स्रोत का स्वरूप जानने के लिए वैदिक भाषा और वैदिक व्याकरण की मूल प्रकृति का अवलोकन परमावश्यक है। लौकिक संस्कृत के प्रचार-प्रसार के साथ संस्कृत भाषा को अभिलक्षित कर लोक में व्याकरणशास्त्र का उद्गम तथा विकास अनेक शताब्दियों पूर्व से होता आ रहा है। व्याकरण की रचना में भाषा मूल कारण है क्योंकि भाषा ही मानव के भावों और विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। मनुष्य में भाषण शक्ति ईश्वरीय देन है। संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण का स्थान बहुत ऊँचा है। इसकी गणना वेद के षड्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) में होती है। जिस शास्त्र से साधु शब्द का ज्ञान होता है उसे **'व्याकरणशास्त्र'** कहते हैं। **'व्याक्रियन्ते व्युतपाद्यन्ते शब्दा अनेनेति शब्दज्ञानकं व्याकरणम्'**। इसी का दूसरा नाम

'शब्दानुशासन' भी है। छः वेदांगों में व्याकरण को वेद पुरुष का मुख बताया गया है— **'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' ।** व्याकरण ही वह वेदांग है जो वेद मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करता है और साथ ही इन मंत्रों को सुरक्षित भी रखता है। किसी भी भाषा के संरक्षण तथा उसके मौलिक ज्ञान के निमित्त व्याकरण की परम आवश्यकता होती है। व्याकरण के बगैर भाषा प्राय: विश्रंखल और अधूरी है। सबसे पहले इसका अनुभव देवताओं ने किया और अपनी भाषा को व्यकृत करने हेतु इंद्र से प्रार्थना की, तब इंद्र ने वाणी को व्यकृत किया। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार- **" वाग् वै पराच्यव्याकृताऽव्दत्"** और यहीं से व्याकरण की परंपरा का आरंभ माना जाता है। संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र का अत्यधिक महत्व है।किसी भी शास्त्र की प्रवृत्ति का कोई न कोई प्रयोजन होता ही है। इसी प्रकार व्याकरण शास्त्र के भी प्रयोजन हैं। मूलतः व्याकरण का प्रमुख कार्य शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व का निर्णय है परंतु महाभाष्यकार पतंजलि ने इसके अन्य कुछ मुख्य प्रयोजन तथा कुछ गौड़ प्रयोजन बताए हैं। महाभाष्य के अनुसार कुछ प्रयोजन इस प्रकार से हैं। महाभाष्य के प्रथम आह्निक में पतंजलि ने लिखा है कि**- "कानि पुनः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि"** अर्थात व्याकरण शास्त्र के अध्ययन के क्या प्रयोजन हैं ? अगली पंक्ति में मुख्य प्रयोजनों को बताते हुए पतंजलि कहते हैं कि - **"रक्षोहागमलघ्वसंदेहा: प्रयोजनम्"** अर्थात् रक्षा, ऊह, आगम, लघु और असंदेह ये व्याकरण के प्रयोजन हैं। रक्षा का अर्थ है वेदों के मूल पदों को समझना,ऊह का अर्थ है यज्ञ में आवश्यकतानुसारप्रकृति रूप में पठित पदों का विकृत पाठ करना, आगम का अर्थ है प्राचीन उद्धरणों से व्याकरण के महत्व को समझना, लघुका अर्थ है भाषा शिक्षा के लिए लघुतम साधन होनाऔर असन्देह पद का अर्थ है किसी विशेष स्थल पर भाषागतसंदेहका निराकरण करना। व्याकरण अध्ययन के इन पाँच मुख्य प्रयोजनों के अतरिक्त तेरह आनुषंगिक भी हैं।

3.3.1 पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों का परिचय

इस संसार में प्रवृत्त सभी विद्याओं का मूल वेद ही है। ऐसा प्रायः सभी भारतीय विद्वानों ने माना है। मनु भी मनुस्मृति में वेदों को सर्वज्ञानमय मानतेहुए कहते हैं कि –

यः कश्चित् कस्यचित् धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
सः सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ।।

इसलिए व्याकरणशास्त्र का भी मूल वेद ही है। जैसा कि हमें ऋग्वेद में भी देखने को मिलता है **चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासौ अस्य,त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश।** व्याकरण महाभाष्य में इस मन्त्र कि व्याख्या करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि– चत्वारि श्रृंगा अर्थात् नाम , आख्यात, उपसर्ग और निपात। त्रयो अस्य पादा अर्थात् तीन काल भूत, भविष्यऔर वर्तमान। द्वे शीर्षे अर्थात् दो शब्द नित्य और कार्य। सप्त हस्ता अर्थात् सात विभक्तियाँ। त्रिधा बद्धः अर्थात् तीन स्थानों से बद्ध उर, कंठ और शिर से। वृषभो वर्षणात्। रोरवीति अर्थात् शब्द करताहै। शब्दशास्त्र के लिए व्याकरण शब्द का प्रयोग रामायण, गोपथ ब्राह्मण, मुण्डकोपनिषद और महाभारत आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। वेदांगों मे व्याकरण एक स्वच्छंद अङ्ग के रूप में वैदिक युग में ही स्थापित हो चुका था। वेदों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वेदों के रचनाकाल के समय से ही व्याकरणअध्ययन की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी व्याकरण संबंधी शब्दों का उल्लेख स्पष्टतया

प्राप्त होता है। इसी के अनुसार ब्रह्मा को व्याकरण शास्त्र का भी आदि प्रवक्ता कहा जाता है। ऋकतंत्र में लिखा है- **ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भारद्वाजाय, भारद्वाज ऋषिभ्य:, ऋषयो ब्राह्मणेभ्य:।** वर्तमान में मुख्यत: आठ वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है- ब्रह्मा, ऐशान, ऐन्द्र, प्रजापत्य, बार्हस्पत्य,त्वाष्ट्र, आपीशल और पाणिनीय। भारतीय इतिहास में समस्त विद्या का प्रथम वक्ता ब्रह्मा को माना जाता है। काशिका वृत्ती में पाँच व्याकरणों का उल्लेख मिलता है- व्याख्याकारों द्वारा इनके नामहैं- ऐन्द्र, चान्द्र, पाणिनीय, कशाकृत्स्न और आपिशल। रामायण के उत्तरकांड में 9 व्याकरणों का उल्लेख मिलता है, महाराज राम के समय मे अनेक प्रकार के व्याकरण उपलब्ध थे। इसकी जाकारी रामायण के किष्किंधा काण्ड से मिलती है। गीतसार नामक ग्रंथ में भी 9 प्रकार के व्याकरण का उल्लेख है। श्रीतत्त्वधी नामक वैष्णव ग्रंथ में 9 प्रकार के व्याकरणों का उल्लेख मिलता है। मुख्यत: वैदिक भाषा के पदों की रचना को स्पष्ट करने के लिए इस वेदांग का विकास हुआ था। तथा आगे चलकर यह लौकिक संस्कृत का एक महत्वपूर्ण शास्त्र बन गया। मूलत: साहित्यकार इंद्र को प्रथम वैयाकरण मानते हैं। यस्क ने अपने निरुक्त में लिखा है कि **" पदप्रकृति: संहिता "** इस कथन से पदों के अध्ययन कि महत्ता तथा प्राचीनता सिद्धहोती है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो व्याकरण का प्रथम पूर्ण ग्रंथ महर्षि पाणिनि कि अष्टाध्यायी ही प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में लगभग 4000 सूत्र प्राप्त होते हैं। इनमें से 700 सूत्र वैदिक भाषा के विवेचन से संबन्धित हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में पाणिनी से पूर्व के 10 वैयाकरणों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। जिनके नाम इस प्रकार हैं— आपिशिल, काश्यप , गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, शेनक तथा स्फोटायन।

पाणिनि द्वारा उल्लिखित आचार्यों का परिचय-

1. आपशलि— इनके सम्बन्ध में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। पाणिनीय व्याकरण से प्राचीन व्याकरणों में केवल आपिशल व्याकरण ही ऐसा है जिसके सब से अधिक सूत्र उपलब्ध होते हैं। इसके उपलब्ध सूत्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह व्याकरण पाणिनीय व्याकरण के सदृश्य सर्वांगपूर्ण सुव्यवस्थित तथा उससे कुछ विस्तृत था, और इस में लौकिक वैदिक उभयविध शब्दों का अन्वाख्यान था। आपिशलि के व्याकरण के जो सूत्र हैं, उन से यहा स्पष्ट होता है कि आपिशल और पाणिनीय व्याकरण दोनों परस्पर में बहुत समान हैं। यह समानता न केवल सूत्ररचना में है, अपितु अनेक संज्ञा, प्रत्यय और प्रत्याहार भी परस्पर सदृश्य हैं। पाणिनिने केवल एक सूत्र में **"वा सुप्यापिशले:"** (6/1/92) आपिशलि का नामोल्लेख किया है। प्रकृत सूत्र वृद्धि-सन्धि के प्रकरण में आया है। भाष्यकार पतंजलि ने इस सूत्र पर कोई विचार नहीं किया। आगे चलकर वृत्तिकारों में सर्वप्रमुख वामन ने काशिका में इनके नाम को तद्धितप्रत्ययान्त अपत्यवाचक शब्द के रूप में व्युत्पादित किया है। अधिकतर प्राचीन वैयाकरणों के अपत्यवाचक नामकरण की यही प्रक्रिया रही है। वामन, पाल्यकीर्ति और वर्वमान तीनों के मत में आपिशलि के पिता का नाम **"अपिशल"** था। अपिशल शब्द का अर्थ महान होगा। वर्वमान ने अपिशल का अर्थ 'कुल-प्रधान' किया है। पाणिनीय अष्टक में आपिशलि का साक्षात उल्लेख होने से इतना निश्चित है कि यह पाणिनी से प्राचीन हैं। जैन आचार्य पाल्यकीर्ति अपने शाकटायन व्याकरण की अमोघा वृत्ति 3।2।161 में उदाहरण देते हैं— **"अष्टका**

आपिशलपाणिनीयाः"। यह उदाहरण शाकटायन व्याकरण की यक्षवर्मकृत चिन्तामणिवृत्ति 2।4।182 में उपलब्ध होता है । इससे विदित होता है कि आपिशल व्याकरण में आठ अध्याय थे। आपिशलि विरचित शिक्षा गग्रन्थ में भी आठ प्रकरण हैं। महाभाष्य 4।1।14 से विदित होता है कि कात्यायन और पतंजलि के काल में आपिशल व्याकरण का महान प्रचार था । उस काल में कन्याएं भी आपिशल व्याकरण का अध्ययन करती थी ।

2. काश्यप— पाणिनि द्वारा उल्लिखित प्राचीन वैयाकरणों में काश्यप की भी गणना की जाती है। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में काश्यप का मत दो स्थानों पर उद्धृत किया है । केवल यजुर्वेद प्रातिशाख्य 4।5 में शाकटायन के साथ काश्यप का उल्लेख मिलता है। अतः अष्टाध्यायी और प्रातिशाख्य में उल्लिखित काश्यप एक ही व्यक्ति है, इस में कोई सन्देह नहीं। काश्यप शब्द गोत्रप्रत्यायान्त है। तदनुसार इस के मूल पुरुष का नाम काश्यप है। पाणिनीय शब्दानुशासन में काश्यप का उल्लेख होने से इतना स्पष्ट है कि यह उससे पूर्ववर्ती हैं । वार्तिककार कात्यायन के मतानुसार अष्टाध्यायी 4।3।103 में काश्यप कल्प का निर्देश है। पाणिनि ने व्याकरण और कल्पप्रवक्ता का निर्देश करते हुए किसी विशेषण का प्रयोग नहीं किया, इससे प्रतीत होता है कि वैयाकरण और कल्पकार दोनों एक हैं। काश्यप व्याकरण का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं हुआ। इसके मत का उल्लेख भी केवल तीन स्थानों पर उपलब्ध है। शुक्ल यजुर्वेद की प्रातिशाख्या के अन्त में निपातों को काश्यप कहा है।

3. गार्ग्य— पाणिनिपूर्व वैयाकरणों में गार्ग्य का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। व्युत्पत्ति के अनुसार गार्ग्य को गर्ग ऋषि का वंशज होना चाहिए। **(गार्गादिभ्यो यञ् 4.1.105)** अनेक ऋषि गार्ग्य अथवा गर्ग के नाम से विख्यात हो चुके हैं, फिर भी वैयाकरण गार्ग्य तथा नैरुक्त गार्ग्य एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। गार्ग्य का उल्लेख पाणिनिसूत्रों के अतरिक्त "ऋक्प्रातिशाख्य" तथा "वाजसनेयि प्रातिशाख्य" में भी प्राप्त है । अष्टाध्यायी में गार्ग्य का उल्लेख होने से यह निश्चित होता है कि यह पाणिनि से प्राचीन हैं। गार्ग्य का मत यास्कीय निरुक्त में उद्धृत है। यदि नैरुक्त और व्याकरण दोनों गार्ग्य एक ही हो तो यह यास्क से भी प्राचीन होंगे। गार्ग्य के व्याकरण का कोई सूत्र प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता अष्टाध्यायी प्रातिशाख्य में गार्ग्य के जो मत उद्धृत हैं उनसे विदित होता है कि गार्ग्य का व्याकरण सर्वांगपूर्ण था।

4. गालव— पाणिनि ने अष्टाध्यायी में गालव का उल्लेख चार स्थानों में किया है । पुरषोत्तमदेव ने भाषावृत्ति 6।1।77 में गालव का व्याकरण सम्बन्धी एक मत उद्धृत किया। इसमें भी स्पष्ट है कि गालव ने कोई व्याकरणशास्त्र रचा था । अष्टाध्यायी में गालव का उल्लेख होने से यह निश्चित है कि वह पाणिनि से प्राचीन हैं । यदि महाभारत में उल्लिखित पांचाल बाभ्रव्य गालव ही शब्दानुशासन के प्रवक्ता हैं तो उनका काल शौनक और महाभारत से प्राचीन होगा। गालव की गुरु-शिष्य परम्परा एवं देश-काल के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है । सभी बातें अनुमेय ही हैं। शब्दशास्त्र की दृष्टि से " महर्षि यास्क" द्वारा स्मरण किए जाने से इन्हे यास्क से पूर्व अथवा समानान्तर माना जा सकता है । तैत्तिरीय शिक्षा के अनुसार इनके गुरु का नाम शौनक रहा होगा ।

5. चाक्रवर्मण— चाक्रवर्मणका मत पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में केवल एक सूत्र में अभिव्यक्त किया है । इस बात का संकेत **"ई३चाक्रवर्मणस्य"** 6।1।30 से मिलता है। इनके व्याकरण के सम्बन्ध में किसी प्रकार का निर्देश भी अन्यत्र नहीं मिलता । फिर भी पाणिनि के

द्वारा एक सूत्र में उल्लेख होने के कारण वैयाकरणों ने कुछ अनुमान लगाया है। सभी वैयाकरणों के अनुसार इनका नाम भी अपत्यप्रत्ययान्त स्वीकार किया गया है। तदनुसार इनके पिता का नाम 'चक्रवर्मन्' रहा होगा । गुरूपद हलदार द्वारा सम्पादित वायुपुराण में किसी चाक्रवर्मण को काश्यप का पौत्र बतलाया गया है। पंडित युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार पञ्चपादी उणादि सूत्रों के रचयिता एक आचार्य चाक्रवर्मण भी हैं। आपिशलि द्वारा भी इनका नाम उद्धृत होने के कारण इन्हें आपशलि के कुछ पूर्व अथवा उनके समानान्तर माना जा सकता है। अतः इन्हे भी 850 वि.पू. के आस-पास ही समझना चाहिए।

6. भारद्वाज— पाणिनि से पूर्वर्ती वैयाकरणों में भारद्वाज का नाम भी उल्लेखनीय है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में इनके मत का उल्लेख करते हुए एक सूत्र में संकेत दिया है । पाणिनि ने **"ऋतो भारद्वाजस्य"** (पा.7।2।63) सूत्र में स्पष्ट भारद्वाज नाम का उल्लेख किया है । अतः वैयाकरण के रूप में प्रसिद्ध भारद्वाज के नाम से रही। तत्पश्चात् भारद्वाज की विद्यापरम्परा तथा वंश परम्परा को भारद्वाजीय नाम से सम्बोधित किया गया है । इससे विदित होता है कि इस परम्परा के आचार्यो का प्रभाव महाभाष्यकार के समय तक विद्यमान था।

7.शाकटायन— पाणिनि तथा यास्क आदि विद्वानों द्वारा विशेषतया सम्मानित **"शाकटायन"** का उल्लेख बाद के वैयाकरणों ने भी किया है। पाणिनि अष्टाध्यायी में शाकटायन का उल्लेख तीन बार किया है। वाजसनेय प्रातिशाख्य तथा ऋक्प्रातिशाख्य में भी इस का अनेक स्थानों में निर्देश मिलता है। यास्क ने अपने निरुक्त में वैयाकरण शाकटायन का मत उद्धृत किया है। पतंजलि ने स्पष्ट शब्दों में शाकटायन को व्याकरणशास्त्र का प्रवक्ता कहा है। पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट यकार-वकार-लोप के प्रकरण में "शाकटायन" तथा "शाकल्य" के मत उद्धृत होने से इन दोनों आचार्यो का समकालिक अथवा कुछ पूर्वापर होना अनुमेय है। अतः "शाकटायन" भी "यास्क" युग में विद्यमान रहे हों।

8. शाकल्य— पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में शाकल्य का नामोल्लेख करते हुए चार सूत्रों की रचना की है। इसके साथ ही वैदिक सम्प्रदाय में सर्वप्रथम ऋग्वेद के पदपाठ के उद्धावक शाकल्य ही प्रसिद्ध हैं। इन प्रमुख उल्लेखों से शाकल्य पाणिनि से पूर्व ही ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। शौनक और कात्यायन ने भी अपने प्रातिशाख्यों में शाकल्य के मतों का उल्लेख किया है। ऋक्प्रातिशाख्य में शाकल के नाम से उद्धृत समस्त नियम शाकल्य के ही हैं। महाभाष्यकार ने 6।1।127 में शाकल्य के नियम का शाकल नाम उल्लेख किया है। लक्ष्मीधर ने गार्हस्थ काण्ड पृष्ट 169 में शाकल्य के किसी व्याकरण नियम की ओर संकेत किया है। पाणिनि और प्रातिशाख्यों में उद्धृत मतों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि शाकल्य के व्याकरण में लौकिक वैदिक उभयविध शब्दों का अन्वाख्यान था।

9. सेनक— पाणिनि ने अष्टाध्यायी में जिन पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है, उनमें से एक "सेनक" भी हैं। पाणिनि ने सेनक का उल्लेख केवल एक सूत्र में किया है। वह सूत्र है –**"गिरेश्च सेनकस्य"**(5।4।112)अब तक इनके सम्बन्ध में कहीं भी किसी प्रकार का विवरण अप्राप्य है।

10. स्फोटायन— पाणिनि ने केवल एक बार स्फोटायन का स्मरण किया है- वह भी "गवाग्र" आदि शब्द की सिद्धि के सम्बन्ध में पाणिनीय अष्टाध्यायी में स्फोटायन का निर्देश होने से यह आचार्य विक्रम से 2950 वर्ष प्राचीन हैं, यह स्पष्ट है, यदि हेमचन्द्र और केशव का लेख ठीक हो और कक्षीवान् अभिप्रेत हो तो इसका काल कुछ अधिक प्राचीन होगा । भरद्वाजीय

विमानशास्त्र में स्फोटायन का उल्लेख होने से भी स्फोटायन का काल अधिक प्राचीन सिद्ध होता है।

3.3.2 पाणिनिका परिचय

संस्कृत व्याकरणशास्त्र में पाणिनि का योगदान सदैव के लिए अमर है। संस्कृत भाषा को अद्भुत व्याकरण का उपहार देने वाले पाणिनि का जन्म शालातुर ग्राम (वर्तमान लाहुर, वर्तमान पाकिस्तान में अटक के समीप) में हुआ था, इसीलिए पतंजलि ने इन्हें प्रायः 'शालातुरीय' कहा है। इनकी माता का नाम दाक्षी था, अतः ये दाक्षी पुत्र भी कहे गये हैं। कथासरित्सागर के अनुसार ये वर्ष नामक आचार्य के शिष्य थे। इनका व्याकरण प्रस्थान संस्कृत व्याकरण के सभी दस उपलब्ध प्रस्थानों में व्यापकता, गम्भीरता एवं स्वीकार्यता के कारण अग्रणी है। लौकिक संस्कृत के साथ वैदिक भाषा की तुलना एवं उनके शब्दों की सूक्ष्म विवेचना इनके व्याकरण की विशिष्टता है। अपनी प्रख्यात कृति **'अष्टाध्यायी'** में इन्होंने 4000 सूत्रों (तथा 14 प्रत्याहार सूत्रों) के द्वारा तात्कालिक भाषा का जैसा सर्वेक्षण इन्होंने किया है, वैसा किसी ग्रन्थ में नहीं है। अष्टाध्यायी आठ अध्यायों में विभाजित सूत्र ग्रन्थ है, प्रत्येक अध्याय को 4-4 पादों में विभक्त किया गया है। विषयों का क्रम प्रकरणों के अनुसार, अनुवृत्ति को ध्यान में रखकर, वैज्ञानिक ढंग से रखा गया है। यह अपचरित भाषा को सिखाने वाली रचना नहीं है, अपितु परिचित-प्रचलित भाषा के पदों का विवरण देने वाली कृति है। लोक तथा वेद में व्यवहृत प्रत्येक पद के प्रत्येक अक्षर की व्याख्या करना इसका लक्ष्य है। अष्टाध्यायी को समझने के लिए उन्होंने कुछ सहायक ग्रन्थ भी परिशिष्ट के रूप में लिखें हैं- गणपाठ, धातुपाठ, लिंगानुशासन तथा उणादिसूत्र। इन पांचों का संयुक्त नाम है- पञ्चपाठी। इस प्रकार पाणिनि ने अपने व्याकरण-प्रस्थान का प्रवर्तन इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के महान उद्देश्य से किया था। यह कहा जाता है कि संस्कृत की समस्त शब्द-सम्पदा नष्ट हो जाए तो भी अष्टाध्यायी के द्वारा उसका पुनरुद्धार हो सकता है।

3.3.3 पाणिनि से उत्तरवर्ती आचार्यों का परिचय

कात्यायन— व्याकरण के त्रिमुनियों में दूसरे कात्यायन हैं। इन्हें याज्ञवल्क्य का पुत्र माना जाता है। इन्होंने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखे हैं। इनका समय 400 ई पूर्व से 300 ई पूर्व तक माना जाता है। पुरुषोत्तामदेव ने त्रिकांड शेष में कात्यायन के कुछ अन्य नाम बताये हैं। कात्य, पुनर्वसु, वररुचि, मेधाजित तथा कात्यायन। समुद्रगुप्त के कृष्ण चरित में इनका नाम वररुचि और कात्यायन प्राप्त होता है। काथासरित्सागर तथबृहत्काथामंजरी में इनका नामश्रुतधर प्राप्त होता है। सायण के ऋग्वेद भाष्य में इनका नाम वररुचि प्राप्त होता है। कथासरित्सागर के अनुसार इनका जन्म कौशाम्बी (इलाहबाद) है। पतंजलि ने कात्यायन को दाक्षिनात्य माना है (प्रियतद्धिता: दाक्षिणात्या:)। वार्तिक गद्य तथा पद्य दोनों में लिखे गए हैं। इन्होने लगभग 1250 सूत्रों पर 4000 वर्तिकोंकी रचना की है। 700 से अधिक सूत्रों की बिना कोई दोष दिखाए सुन्दर व्याख्या की है। लगभग 10 सूत्रों को व्यर्थ बताया है तथा 540 सूत्रों का परिवर्तन तथा परिष्करणकिया है। इसके अतिरिक्त कात्यायन वाजसनेयी प्रतिशाख्य के भी प्रणेता हैं। जल्हण कृत सूक्ति मुक्तावली में इनकी एक रचना स्वर्गारोहण का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

पतंजलि— पाणिनि व्याकरण के अध्ययन के प्रथम युग का अंत पतंजलि के महाभाष्य में ही होता है तथा पाणिनि के स्थान को दृढ़ बनाने में कात्यायन और पतंजलि ने अपूर्व परिश्रम किया है। इसलिए परवर्ती वैयाकरणों ने इन तीनों को मुनित्रय के नाम से पुकारा है। पतंजलि सर्वाधिक प्रमाणिक भाष्यकार माने जाते है। महाभाष्य इनकी रचना है। इनके अन्य नाम कुछ इस प्रकार से हैं- गोनर्दीय , गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, शेषराज, शेषाहि , चूर्णिकार, पदकार, वासुकि, फणि तथा फणिभृत। कामसूत्र में इनके अपर नाम गोनार्दीय तथा गोनिकापुत्रप्राप्त होता है। तथा रामभद्र दीक्षित की पतंजलचरितम् में इनका नाम शेषावतार प्राप्त होता है। इनका समय 200 ई पूर्व माना जाता है। इनकी माता कानाम गोणिका था तथा इनका जन्म स्थान गोनर्द (गोंडा) उत्तर प्रदेश माना जाता है। इनकी रचना महाभाष्य है, इसमें 84 आह्निक अथवा 85 आह्निक हैं, प्रथम आह्निक को भूमिका भी माना जाता है। समुद्रगुप्त के कृष्ण चरित में इनकी एक रचना महानन्द काव्य का भी उल्लेख प्राप्त होता है । इनकी एक रचना योगसूत्र भी है। पंडित गुरुदहालदार के अनुसार इनकी एक रचना सिद्धांत सारावली भी है।

भर्तृहरि— भर्तृहरि संस्कृत व्याकरण के एक महान दार्शनिक माने जाते हैं। पाणिनि व्याकारण में इनका एक महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी रचना वाक्यपदीय से इनकी अद्भुत प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है । महाभाष्य में वर्णित दार्शनिक और अर्थविज्ञान के नियमों का भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में विवेचन किया है। भर्तृहरिको पतंजलि के समकक्ष माना जाता है। विभिन्नविद्वानों के अनुसार इनके पिता का नाम गंधर्वसेन था, इनकी पत्नी पिंगला थीऔर इनके गुरु गोरखनाथ (बौद्ध मत में वसुरात)माने जाते हैं। इनके अनुज विक्रमादित्य(मालवदेश के राजा) वेदान्तोक्त ब्रह्म के उपासक थे। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार 650 ई है। इनकाकालनिर्धारण विद्वानों द्वारा पहले इत्सिंग के अनुसार 650 ई मानते थे किन्तु वर्तमान में देश विदेश के अनेक विद्वानों द्वारा पुष्ट प्रमाणों के आधार पर इनका काल 450– 600 ई के बीच स्वीकार कर लिया है। मुक्तक काव्य के प्रथम कवि भर्तृहरि माने जाते हैं। इनके द्वार विरचित वाक्यपदीयम् में 3 कांड हैं। इसमें पहला ब्रह्म्कांड है, इसमें 156 कारिकाए हैं। दूसरावाक्यकांड है, इसमें 486 कारिका हैं, और तीसरा पदकाण्ड इसे प्रकीर्ण काण्ड भी कहते हैं,इसमें 14 समुद्देश्य हैं। वाक्यपदीयम् के प्रथम कांड पर हरिवृषभ ने, द्वितीय पर पुन्यराज और तृतीय काण्ड परहेमराज ने व्याख्या लिखी है। ब्रह्म काण्ड पर भर्तृहरि ने स्वोपज्ञ नामक व्याख्या लिखी है। पंडित रघुनाथ शर्मा ने वाक्यपदीयम् पर अभिनव अम्बाकर्त्री नामक व्याख्या लिखी है। भर्तृहरिकी3 और प्रमुख रचना नीतिशतक, श्रृंगार शतक औरवैराग्य शतक है।

वामन जयादित्य का परिचय— सातवीं शताब्दी में जयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर काशिका टीका लिखी गयी। इनका काल 650-700 वि० माना जाता है। चीनी यात्री इत्सिंग जयादित्य को काशिका के रचयिता मानते हैं। सृष्टिधराचार्य ने भाषावृत्यर्थविवृति के अंतिम श्लोक की व्याख्या में जयादित्य को काशिका का रचयिता माना है। काशिका पर प्राचीनतम टीका काशिकाविवरण पंचिका न्यास जिनेन्द्र ने लिखी। इत्सिंग के अनुसार ज्यादित्य का काल 661ई माना जाता है। जयादित्य और वामन की वृत्तियों का खंडन भागवृत्ति में है। भागवृत्ति का काल 702-705 वि. स. है अतः वामन का काल 700 वि० से पूर्व का है।

काशिका का नामकरण— पदमंजरीकार हरदत्त और वृत्तिप्रदीपकार रामदेव के अनुसार काशी में काशिका कि रचना हुई (काशिका देशतोभिधानम् काशीषु भवा) । उणादिवृत्तिकार

उज्ज्वलदत्त और सृष्टिधर का भी यही मत है । सृष्टिधर कहते है- काशयति प्रकाशयति सूत्रार्थमिति काशिका जयदित्यवृत्तिविरचिता वृत्ति:। काश्यां भवा वा ।

काशिका पर टीकाएँ-

1. काशिका विवरण पंचिका न्यास - जिनेन्द्र बुद्धि
2. अनुन्यास - इन्दुमित्र
3. प्रक्रियामंजरी- विद्यासागर मुनि
4. पदमंजजरी - हरदत्त मिश्र
5. वृत्तिप्रदीप- रामदेव मिश्र

भट्टोजिदीक्षित का परिचय— व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि कि अष्टाध्यायी पर शब्द्कौस्तुभ नामक टीका लिखी । भट्टोजिदीक्षित एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर भट्ट था । भाई का नाम रंगोजिभट्ट और पुत्र भानुदीक्षित तथा वीरेश्वरादीक्षित थे । इनके गुरु शेषकृष्ण थे। वैयाकरण भूषणसार के रचयिता कौण्डभट्ट भट्टोजिदीक्षित के भतीजे थे । तथा इनकेपौत्र का नाम हरिदीक्षित था। भट्टोजिदीक्षित नेअप्पयदीक्षित से मीमांसा का ज्ञान प्राप्त किया था ।भट्टोजिदीक्षित का समय 1560-1610 ई० है। तथा वेल्वाकर इनका समय 1600-1650 ई मानते हैं । भट्टोजिदीक्षित के ग्रन्थ हैं-

1. शब्दकौस्तुभ ,	2. तत्वकौस्तुभ	3. तन्त्रसिद्धांतदीपिका
4. वैयाकरणसिद्धांतकारिका	5. सिद्धांतकौमुदी	6. प्रौढमनोरमा
7. वेदभाष्यसार	8. तैत्तिरीयसंध्याभाष्य	9. तिथिनिर्णय

आचार्य भट्टोजिदीक्षित की सर्वश्रेष्ठ कृति शब्दकौस्तुभ है । यहपूर्ण रूप से तो उपलब्ध नहीं है । किन्तु जितना अंश इसका प्राप्त होता है उससे भट्टोजिदीक्षित की व्याकरण के प्रति सूक्ष्म दृष्टि की अथाहता का ज्ञान प्राप्त होता है। सिद्धांतकौमुदी एक प्रक्रिया ग्रन्थ है। प्रौढ़मनोरमा सिद्धांतकौमुदीकी व्याख्या है । प्रौढ़मनोरमा के खंडन में जगन्नाथ ने मनोरमाकुचमर्दन नामक टीका लिखी। भानुदीक्षित ने मनोरमामंडन में भट्ट के मतों का मंडन किया है । प्रौढ़मनोरमा में हरिदीक्षित ने शब्दरत्न नामक टीका लिखी है। इन सब के अतिरिक्त भट्टोजिदीक्षित के कुछ अन्य ग्रन्थ प्राप्त होते हैं- अशौचप्रकरण, कालनिर्णय, हेमाद्रिसारभूत, चतुर्विंशतिमतव्याख्या, आचारकांड, संस्कारकाण्ड, प्रायश्चित्तकाण्ड, श्राद्धकाण्ड, तिथि निर्णय , प्रवरनिर्णय , तन्त्रसिद्धांतदीपिका , त्रिस्थलीसेतु: इत्यादि।

नागेश भट्ट— इन्हें नागेश्वर या नागोजि भी कहा जाता है । नागेश भट्ट नव्य व्याकरण के आचार्यों में अग्रणी आचार्य माने जाते हैं । पाणिनीय परम्परा में वरदराजाचार्य के पश्चात् इन्हीं का नाम मुख्य रूप से आता है । ये एक महाराष्ट्रीय ब्राहमण थे । इनकी माता का नाम सती देवी तथा पिता का नाम शिवभट्टथा। इनके गुरु हरिदीक्षित थे, इनसे नागेश ने व्याकरण का अध्ययन किया था। नागेश के शिष्य का नाम वैद्यनाथपायगुण्य था। प्रयाग के समीप श्रृंगवेरपुर के राजा रामसिंह इनके आश्रयदाता थे। इनका समय 1730 से 1810तक माना जाता है। नागेश भट्ट एक दार्शनिक व्याकरणाचार्य हैं। इन्होंने मौलिक रचनाओं के साथ टीका ग्रंथों की भी रचना की थी । इन्होंने कैय्यट की महाभाष्य की प्रदीप टीका पर उद्योत (विवरण) नामक टीका भी लिखी है । नागेश के सात मुख्य ग्रन्थ हैं । जिनके नाम इस प्रकार- लघुशब्देंदुशेखर, परमलघुमञ्जूषा, बृहच्छब्देंदुशेखर, स्फोटवाद, परिभाषेंदुशेखर, महाभाष्यप्रत्याखानसंग्रह और लघुमंजूषा ।

जैनेन्द्र— इनका अपर नाम देवनंदी है। जैन व्याकरण में सबसे प्राचीन व्याकरण जैनेन्द्र व्याकरण है, इसकेलेखक देवनंदी हैं, इन्हें पूज्यपाद कहा जाता है इसमें छः प्राचीन आचार्यों का उल्लेख है— श्रीदत्त, यशोभद्र, भूतिबलि , प्रभाचंद्र, सिद्धसेन और समन्तभद्र। इनका जन्म कर्नाटक (कोले) में माना जाता है। इनकेपिता का नाम माधव भट्ट तथा माता का नाम श्रीदेवी था। इन्हें पूज्यपाद और जैनेन्द्र बुद्धि भी कहते थे। ये जैन मत के प्रसिद्ध आचार्य थे। इन्होंने अपने व्याकरण ग्रन्थ पर शब्दावतार न्यास टीका लिखी। अभायनंदी ने इस पर जैनेन्द्रमात्रीवृत्ति और पंडित महाचंद्र ने लघु जैनेन्द्र। आचार्य प्रभाचंद्र ने शब्दाम्भोज भाकरन्यास टीका लिखी। इनका समय 6वींशताब्दीका पूर्वार्ध है।

महाराज भोज— भोज का राज्यकाल 1028 ई० से 1063 ई० तक माना जाता है। भोज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक व्याकरण ग्रन्थ में आठ अध्यायों में 6411 सूत्र दिए हैं। सात अध्याय संस्कृत व्याकरण के और अष्टम अध्याय वैदिक व्याकरण का है। व्याकरण के सहायक गणपाठ, परिभाषा, उणादि, लिंगानुशासन ये सब इसी में समाविष्ट हैं, पृथक नहीं हैं। आकार-वैपुल्य से यह लोकप्रिय नहीं हो सका यद्यपि तीन टीकाएँ भी लिखी गयीं हैं।

आचार्य कैय्यट— काव्यप्रकाशकी सुधासागर नामक टीका में भीमसेन ने कैय्यट तथाउव्वट को मम्मट का अनुज बताया है। इनके पिता का नाम जैयट उपाध्याय था। इनके गुरु महेश्वर माने जाते हैं। ये कश्मीर के निवासी थे। इनके शिष्य का नाम उद्योतकर था। इनका समय विक्रम की 11वीं सदी का उत्तरार्ध माना जाता है। कश्मीरीपंडितोंकी किंवदंतियों के अनुसार कैयट पामपुर गाँव के निवासी थे। महाभाष्य पर इनकी प्रदीप टीका है। इस टीका के अन्य नाम प्रदीभाष्य या भाष्यप्रदीप भी कहा जाता है। इस टीका पर अनेक आचार्यों ने व्याख्याएँलिखी हैं। जो इस प्रकार से हैं-

नागेश— उद्योत(विवरण) नारायण — महाभाष्यविवरण

चिंतामणि — महाभाष्यकैयटप्रकाश नारायणशास्त्री — महाभाष्यप्रदीप व्याख्या

शेषनागनाथ — हाभाष्यप्रदीपोद्योतन प्रवर्तकोपाध्याय — महाभाष्यप्रकाशिका

रामचंद्रसरस्वती — विवरण टीका अन्नमभट्ट — प्रदीपोद्योतन

ईश्वरानंद सरस्वती — महाभाष्यप्रदीपविवरण

हेमचन्द्रसूरी— इन्होंने सिद्धहैमशब्दानुशासन नामक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की। इनके पिता का नाम चाचिंग (चाच) था, तथा इन्हें वेदानुयायी भी माना जाता है। इनकी माता पहिणी जैन मतानुयायी थी। इनकाजन्म कार्तिक पूर्णिमा संवत् 1145 में अहमदाबाद के धुंधक स्थान में मोढवंशीय वैश्यकुल में हुआ था। इनके जन्म का नाम चांगदेव था, तथा इनके गुरु चन्द्रदेव सूरी (देवचन्द्र सूरी) थे। हेमचन्द्र श्वेताम्बर जैन के अनुयायी थे। हेमचन्द्र को जैन ग्रंथों में कलिकाल सर्वज्ञ कहा जाता है।गुजरात के महाराज सिद्धराज (जयसिंह) के पुत्र कुमारपाल आचार्य हेमचन्द्र के परम भक्त थे। कुमारपाल को आश्रित करके हेमचन्द्र ने कुमारपालचरित या द्वयाश्रय काव्य लिखा। इनका निर्वाण 1229 ई में 84 वर्ष की आयु में हुआ था। इन्होंने शब्दानुशासन कि रचना सिद्धराज के आदेश पर की। सिद्धहैमशब्दानुशासन संस्कृत प्राकृत दोनों का ही व्याकरण है। इसके प्रारम्भिक 7 अध्याय में संस्कृत का व्याकरण है और इसमें 3556 सूत्र हैं। आठवें में प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाचीऔर अपभ्रंश आदि का व्याकरण है। आठवें में 1129सूत्र हैं। इन्होंने अपने ग्रंथों की टीका स्वयं लिखी। अपने व्याकरण पर इनकी 3 व्याख्याएँ हैं- लघ्वी वृत्ति

, मध्यवृत्तिऔर बृहती वृत्ति। इन्होंने अपने व्याकरण पर 10 हजार श्लोक का शब्दार्णवन्यास या बृहन्यास नामक विवरण लिखा है।

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का अध्ययन किया। वैदिक काल में ही संस्कृत व्याकरण एक स्वतंत्र वेदांग के रूप में स्थापित हो चुका था। भारतीय इतिहास में समस्त विद्या का प्रथम वक्ता ब्रह्मा को माना जाता है। व्याकरणशास्त्र का भी प्रथम वक्ता ब्रह्मा को ही माना जाता है। व्याकरणशास्त्र की रचना में भाषा मूल कारण है। क्योंकि भाषा ही मानव के भावों और विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। मनुष्य में भाषण शक्ति ईश्वरीय देन है। आरम्भिक वैयाकरण निश्चित रूप से वैदिक भाषा का अन्वाख्यान करते थे, क्रमशः लौकिक संस्कृत और वैदिक दोनों भाषाओं के अन्वाख्यान में वे सन्नद्ध हुए और अंततः उनका लक्ष्य केवल संस्कृत भाषा की व्याख्या में ही परिमित हो गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी व्याकरण संबंधी शब्दों का उल्लेख स्पष्टतया प्राप्त होता है। इसी के अनुसार ब्रह्मा को व्याकरण शास्त्र का भी आदि प्रवक्ता कहा जाता है। ऋकतंत्र में लिखा है— ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रों भारद्वाजाय, भारद्वाज ऋषिभ्य:, ऋषयो ब्राह्मणेभ्य:। वर्तमान में मुख्यत: आठ वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है- ब्रह्मा, ऐशान, ऐन्द्र, प्रजापत्य, बार्हस्पत्य,त्वाष्ट्र, आपीशल और पाणिनीय। इनमें अधिक प्रसिद्धि पाणिनीय व्याकरण को प्राप्त हुई है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

पृथक	—	अलग, भिन्न।
सम्प्रदाय	—	परम्परा से चला आया हुआ सिद्धान्त या मत ।
पारस्परिक	—	आपस का
सूक्ष्म	—	बहुत बारीक, बहुत छोटा
दार्शनिक	—	दर्शनशास्त्र का ज्ञाता
उभय	—	दोनों
पुष्ट	—	पक्का
पूर्वार्ध	—	पहला आधा हिस्सा
कृति	—	रचना
अग्रणी	—	आगे चलने वाला

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिए।

1. अष्टाध्यायी के प्रणेता हैं।

(क) पाणिनि

(ख) पतंजलि

(ग) भरत

(घ) कात्यायन

2. काशिका टीका के प्रणेता हैं।
(क) पाणिनि
(ख) पतंजलि
(ग) जयादित्य वामन
(घ) कात्यायन
3. पाणिनि अष्टाध्यायी में पाणिनि से पूर्व कितने आचार्यों का उल्लेख है।
(क) पाँच
(ख) दस
(ग) छः
(घ) सात
4. रामायण के उत्तरकांड में कितने व्याकरणों का उल्लेख मिलता ?
(क) पाँच
(ख) दस
(ग) छः
(घ) नौ
5. सिद्धहैमशब्दानुशासन के प्रणेता हैं।
(क) नागेश भट्ट
(ख) भर्तृहरि
(ग) हेमचन्द्रसूरी
(घ) इनमें से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिए।

1.संस्कृत भाषा का मूल उद्गम --------- संहितायें हैं।
2. जैन व्याकरण में सबसे प्राचीन---------व्याकरण है।
3. आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनि कि अष्टाध्यायी पर----------नामक टीका लिखी।
4.भोज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण'नामक व्याकरण ग्रन्थ में आठ अध्यायों में-------सूत्र दिए हैं।
5. सातवीं शताब्दी में जयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर--------टीका लिखी गयी।

(3) सही गलत का चयन कीजिए।

1. सातवीं शताब्दी में जयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर काशिका टीका लिखी गयी।()
2. पाणिनि अष्टाध्यायी में शाकटायन का उल्लेख दो बार किया है। ( )
3. मनु भी मनुस्मृति में वेदों को सर्वज्ञानमय मानतेहैं। ( )
4. पाणिनीय व्याकरण से प्राचीन व्याकरणों में केवल आपिशल व्याकरण ही ऐसा है जिसके सब से अधिक सूत्र उपलब्ध होते हैं। ( )
5. व्याकरण को वेदपुरुष का नयन कहा जाता है। ( )

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, ग, ख, घ, ग
2. वैदिक, जैनेन्द्र, शब्दकौस्तुभ, 6411,काशिका

3. सही, गलत, सही, सही, गलत

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, लेखक युधिष्ठिर मीमांसक।

2. संस्कृत वाङ्गमय का बृहद इतिहास पंचादश खण्ड (व्याकरण), लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय।

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक डॉ उमाशंकर शर्मा (ऋषि)।

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्यों का परिचय दीजिए।

2. पाणिनि से उत्तरवर्ती आचार्यों का परिचय दीजिए।

3. व्याकरणशास्त्र का उद्गम किसे माना जाता है ? विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई. 4 व्याकरणशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पाणिनि एवं पाणिनि से पूर्व ग्रन्थों का परिचय

4.4 व्याकरणशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का परिचय

4.5 व्याकरणशास्त्र के नवीन ग्रन्थों का परिचय

4.6 व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक ग्रन्थों का परिचय

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 बोध प्रश्न एवं उत्तर

4.10 सन्दर्भग्रन्थ सूची

4.11 उपयोगी पुस्तकें

4.12 निबन्धात्मकप्रश्न

4.1 प्रस्तावना

शब्द ब्रह्म परक व्याकरण शास्त्र सभी विद्याओं में मुख्य रूप प्रधान अङ्ग है— **"प्रधानंचषट्स्वङ्गेषुव्याकरणम्"**। इस शास्त्र को अपौरुषेय वेदों का आसन्न रूपीउपकारकमानते है, यह सभी तपश्चर्याओमें उत्तमतपहै– **आसन्नंब्रह्मणस्तस्यतपसामुत्तमंतपः।** लौकिक तथा वैदिक अनन्त शब्दराशि के प्रकृति-प्रत्यय आदि विभागों को प्रकल्पित करके यह शब्द-शास्त्र वस्तुतः भाषा-व्यवहार का प्रमुख स्रोत है। संसार की प्रत्येक परिवर्तनशील वस्तु की भान्ति भाषा भी निरन्तर परिवर्तनशील रही है, एवं हो रही है। महाभाष्य आदि ग्रन्थ के प्रमाण से हमें ज्ञात होता है कि अतिप्राचीन काल में शब्दों का प्रतिपाद्य पाठ किया जाता था। शब्दों में प्रकृति प्रत्यय विभागों के कल्पना नहीं होती थी। अभी तो कालक्रम से प्रकृति एवं प्रत्यय की सत्ता स्वीकार की गयी है, एवं सभी शब्दों का मूल धातु से किया जाने लगा था, ऐसे संकेत हमें पाणिनि पूर्व ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, ऋक्प्रातिशाख्य इत्यादि से मिलते है। **ब्रह्माबृहस्पतयेप्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, भरद्वाजऋषिभ्यऋषयो ब्राह्मणेभ्यः।**यद्यपि इस उक्ति से पता चलता है कि शब्द शास्त्र के आदि प्रवक्ता ब्रह्म है, तत्पश्चात बृहस्पति तथा बृहस्पति से इन्द्र आदि को शब्द- शास्त्र का ज्ञान लिपिबद्ध करवाया गया है। इतिहासविदों ने प्रायः नौव्याकरणों का नाम लिये है –

ऐन्द्रं चान्द्रंकाशकृत्स्नंकौमारंशाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलंशाकलंपाणिनीयम्।।

पाणिनि पूर्वग्रन्थों तथा पाणिनि रचित ग्रन्थमें समग्र वैज्ञानिकता को अपनाते हुये व्याकरण-श्रृंखला में पूर्वीय एवं पाश्चात्य चिंतकों एवं भाषा विज्ञानिकों ने मणि के रूप में पाणिनि व्याकरण को ही ग्रहण किया है। पाणिनीय व्याकरण को स्पष्ट, भाषा साक्षेप एवं सरल बनाने का अविस्मरणीय योगदान कात्यान और पतञ्जलि कोदिया गया है। भारतवर्ष के विभिन्न विद्वानों एवं वैयाकरणज्ञों की गूढ़ ज्ञान एवं तपसे आगे जाकर पाणिनीय व्याकरण क्रमशः प्राचीन व्याकरण और नव्यव्याकरण के रूप में दो धाराओं में विभक्त हो गया। प्राचीन व्याकरण धाराओं में सूत्र क्रमानुसारी व्याख्यात्मक ग्रन्थ -वार्तिक, महाभाष्य, काशिका एवं सरस्वती कण्ठाभरणादि ग्रन्थ है। दूसरी तरफ नव्यव्याकरण में प्रक्रिया ग्रन्थ–वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्यात्मक ग्रन्थ लघुशब्देन्दुशेखर आदि प्रमुख हैं। तो वहीं दार्शनिक ग्रन्थों के सहयोग से शब्द-शास्त्र व्याकरण की गूढ़ता एवं सटीकता का बोध कराने हेतु – वाक्यपदीय, व्याडि कासंग्रह, तथा वैयाकरण सिद्धान्तमन्जूषा आदि प्रसिद्ध है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थों के पठन-पाठन से हम संस्कृत व्याकरणशास्त्र को अच्छी तरह से सीख सकतें है, क्योंकि व्याकरण शास्त्र ही भाषा को सीखने वाला सरल मार्ग है।

4.2 उद्देश्य

- संस्कृत व्याकरण में विषय-प्रवेश होगा।
- संस्कृत व्याकरण की सुदीर्घग्रन्थ-परम्परा से परिचित होंगे।
- संस्कृत व्याकरण में 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ की महत्ता को जानेंगे।
- पाणिनि एवं पाणिनीयेतर व्याकरण ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करेंगे।

➢ संस्कृत व्याकरण की दार्शनिक परम्परा के विषय में ज्ञान होगा।

4.3 पाणिनिएवंपाणिनि-पूर्वग्रन्थोंकापरिचय

अष्टाध्यायी- अष्टाध्यायी महर्षिपाणिनि-विरचित व्याकरण संस्कृत भाषा का सर्वांगीण व्याकरण है, जो अपने सर्वातिशयी गुणों के कारण अन्य सभी व्याकरण सम्प्रदायों का शिरोमणि कहा जाता है। पाणिनी सूत्रपाठ अष्टाध्यायी के नाम से जाना जाता है। अष्टाध्ययी की महता इतनी व्याख्यात है, कि इसे सभी व्याकरण शास्त्र में संस्कृत व्याकरण का मुख्य केन्द्र बिन्दु माना गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में ३९९५ सूत्रों की रचना कर भाषा के नियमों को व्यवस्थित किया है। इसमें उन्होंने १४ प्रत्याहार सूत्रों के द्वारा तात्कालिक भाषा का भी सर्वेक्षण किया है। प्राचीन काल में भारतवर्ष में संस्कृत वाङ्मय को सुरक्षित रखने की दृष्टि से सूत्रशैली का प्रादुर्भावहुआ था। अष्टाध्यायी भी इसी सूत्रशैली से लिखा गया एक ग्रन्थ है। भारतीय सूत्र शैली को वैज्ञानिकता का रूप देने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। महर्षि पाणिनि सर्वप्रथम समग्र वर्णमाला को १४ शिवसूत्र या प्रत्याहार सूत्रों में निबन्धन करके उनके आधार पर ४२ प्रत्याहारों की व्यूह रचना की है। इन्हीं माहेश्वर सूत्र को अष्टाध्यायी का आधारभूत भी कहा जाता है। इन्हें वर्ण उपदेश के रूप में भी अभिहित किया गया है, इसमें वर्ण संक्षेप के लिये प्रत्याहार बनते हैं- अण् , अच्, अक्, जश्, हल् इत्यादि। उसके पश्चात इन प्रत्याहारों का आश्रय करके शब्द शास्त्र को सूत्र पाठ में गुम्फित किया है।

अष्टाध्यायी में सूत्र रचना का उद्देश्य शास्त्र में लाघवत्व लाने से है। सूत्र शैली में संक्षिप्तता होने के कारण यह लघुत्व त्रिविध होता है। (१) आकारगतलाघव (२) सूत्रसंख्यागतलागव (३) अर्थगतलागव। इसमें कम से कम अक्षरों के द्वारा सूत्र में अधिक से अधिक बात कही जाये, इसके लिए प्रति का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। सूत्र के अल्प अक्षरता गुण के कारण ही व्याकरण में निम्नलिखित युक्ति सुप्रसिद्ध लोकप्रिय है– **"अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणा:"** सूत्र का एक विशेष गुण है असन्दिग्धता। अर्थात् सूत्र में कही गयी बात स्पष्ट अर्थ वाली होनी चाहिए। पाणिनी द्वारा विरचित अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। इन्हीं आठ अध्यायों में चार पाद हैं, तथा प्रत्येक अध्याय एवं पाद में सूत्रों की संख्या प्रायः समान है। प्रथम व दूसरे अध्याय में संख्या एवं परिभाषा से संबंधित सूत्र हैं। तीसरे से पांचवें अध्यायों में कृदन्त, तद्धित का निरूपण किया गया है, और छठे में द्वितीय सम्प्रसारण सन्धि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ इत्यादि पर सूत्र दिये गये हैं। सातवें अध्याय में अङ्ग अधिकार प्रकरण है, अन्तिम आठवें अध्याय में द्वितीय लुप्त महत्व के नियम इत्यादि का व्यवधान प्राप्त होता है। पूर्व उपलब्ध व्याकरण शास्त्र का यत्र तत्र आधार लेकर पाणिनि ने संक्षेप रूप में अपनी अष्टाध्यायी की रचना की है, जो वैदिक संस्कृति तथा तत्कालीन शिष्ट भाषा संस्कृत का सम्पूर्ण रूप से अङ्गीकार करता है। अष्टाध्यायी की पूर्ति के लिए पाणिनि ने धातू पाठ, गणपाठ, उणादिपाठ, सूत्र तथा लिंगानुशासन की रचना की है। जिन्हें उनके शब्द अनुशासन में परिशिष्ट के रूप में जाना जाता है। प्राचीन ग्रन्थकारों ने इन्हें सूत्र भी कहा है। पाणिनीय व्याकरण की विशेषता धातु से शब्द के निर्वाचन की पद्धति के कारण सुप्रसिद्ध है। उन्होंने लोक प्रचलित धातुओं का इतना बड़ा संग्रह धातुपाठ में किया हैऔर अष्टाध्यायी को पूर्ण सर्वमान्य एवं सर्वमत बनाने के लिये अपने साहित्य का अनुशीलन करते हुये उसे वैज्ञानिक भाषा

का रूप भी प्रदान किया है। तत्कालीन भाषा या प्रचलित वैदिक शाखाओं तथा सामग्रियों की जानकारी के लिये अष्टाध्यायी एक सांस्कृतिक कोष की तरह कार्य करती है । यह व्याकरण इतना वैज्ञानिक सुव्यवस्थित परिपूर्ण एवं सर्वांगीण है कि अन्य सभी व्याकरण इसके समक्ष निस्तेज हो जाते है, अतः व्याकरण की दृष्टि से यह अष्टाध्यायी सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जा सकता है।

ऐन्द्रव्याकरण-

ऐन्दव्याकरण को शब्दानुशासन के विषय का अत्यंत महत्वपूर्ण तथा विस्तृत ग्रन्थ माना गया है। जो वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं है, इसके विषय में अधिक विस्तार से जानकारी प्राप्त नहीं होती है। परन्तु जैन शाकटायन व्याकरण, लङ्कावतार सूत्र, यशस्तिलकचम्पू तथा हैमबृहद्वृत्यवचूर्णि आदि में ऐन्द्र व्याकरण का सङ्केत मिलता है। ऐन्द्र व्याकरण का प्रथम सूत्र "अथ वर्णसमूहः" था। इससे स्पष्ट है कि उसमें पाणिनीय अष्टक के समान प्रारम्भ में अक्षर समाम्नाय का उपदेश था। **"नैक पदजातम्, यथा अर्थः पदम्' इत्यैन्द्राणाम्"** ऐन्दव्याकरण मैं सब अर्थवान वर्ण समुदायों की पदसंज्ञा का वर्णन है। उनके यहां नैरुक्तों तथा अन्य व्याकरणों के सदृश नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के रूप में विभाग नहीं होते थे, वे अर्थ पदम् इत्यादि में अभिहित होते है। ऐसा माना जाता है कि अक्षरसमाम्नाय की इस प्रक्रिया का ज्ञान सर्वप्रथम सृष्टि कर्ता ब्रह्मा ने देव गुरु बृहस्पति को प्रदान किया था, तथा यही शब्द शास्त्र की प्रक्रिया बृहस्पति से इन्द्र को, इन्द्र से भरद्वाज ,भरद्वाज से अन्य ऋषियों तथा ऋषियों से ब्राह्मण तक प्रचलित हुयी है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार इन्द्र ने देवताओं के परिज्ञान के लिये पदों को पृथक्- पृथक् व्याकृत किया था। सर्वप्रथम इन्द्र ने ही शब्दों में प्रकृति - प्रत्यय के विभागों की परिकल्पना की थी –

वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन्-इमां नो वाचं व्याकुर्विति। सोऽब्रवीत् – वरं वृणै मह्यं चौवैष वायवे च सह गृह्यातां इति तस्मादैन्द्रवायवः सह गृह्याते। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागुच्यते।(तै.सं.६/४/७/३) । महाभारत के विश्रुत् टीकाकार देवबोध ने ऐन्दव्याकरण को समुद्र रूप तथा पाणिनीय व्याकरण को गाय के खुर के समान सुक्ष्म बताया है।

वायु-

तैत्तिरीय संहिता के अनुसार इन्द्र ने वायु की सहायता से व्याकरण की रचना की है। इन्द्र तथा वायु के सहयोग देव वाणी के व्याकरण की सर्वप्रथम रचना हुयी है। इसीलिए कई स्थानों में वाणी के लिए वाक्य इन्द्र वायु वह इत्यादि शब्दों का प्रयोग मिलता है। वायु पुराण में वायु शास्त्र को "शब्दशास्त्र-विशारद" कहा गया है। परन्तु मूल रूप से यह ग्रन्थ अप्राप्य है, जिस कारण से इसमें वर्णित विषयों की सटीक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। यामलाष्टक तंत्र में आठ व्याकरण में से वायव्य व्याकरण का उल्लेख प्राप्त है। तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में वायु व्याकरण की विद्यामानता का साक्ष्य मिलता है।

भरद्वाज-

व्याकरण शास्त्र के तृतीय आचार्य बृहस्पति भरद्वाज हैं, यद्यपि भरद्वाजतन्त्र इस समय उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु ऋक्तन्त्र के पूर्वोक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि भरद्वाज व्याकरण शास्त्र के प्रमुख प्रवक्ता थे। ऋक्तन्त्र के अनुसार उन्होंने व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था इंद्र ने

भारद्वाज के लिये घोषवत और उष्मा वर्णों का उपदेश दिया था। **तस्य यानि व्यञ्जनानि तच्छरीरम्, यो घोषः स आत्मा, यः ऊष्माणः स प्राण.... एतदु हैवेन्द्रो भरद्वाजाय प्रोवाच। (ऐतरेय आरण्यक २/२/४)।** चरक संहिता में भी यह वर्णन प्राप्त होता है कि भारद्वाज ने इन्द्र से आयुर्वेद पढ़ा था। आचार्य भारद्वाज ने प्रमुख रूप से व्याकरण शब्दानुशासन में आख्यात के विषय पर लिखा गया था।

आपिशलि-

आचार्य अपी शैली प्रसिद्ध व्याकरण थे उपलब्ध सभी शाब्दिकों ने उनका व्याख्यान किया है स्वयं आचार्य पाणिनि के सूत्रों में भी आपिशलि का उल्लेख बहुत जगह प्राप्त होता है। यथा – **वा सुप्यापिशले:।**विभिन्न प्रमुख शाब्दिकों आचार्यों ने आपिशलि अष्टाध्यायी के सूत्रों का उल्लेख किया है, तथा आपिशलि व्याकरण के धातूपाठ, गणपाठ, उणादि सूत्र तथा शिक्षा ग्रन्थों का भी वर्णन किया गया है। आपिशलि धातूपाठ में कई धातुओं का स्वरूप पाणिनीय धातूपाठ से भिन्न था, फलत: तत्सम्बन्धी सूत्रों एवं प्रक्रियाओं में भी विभिन्नता पायी गयी थी। इन धातूपाठ में भी धातु की संख्या पाणिनीय धातूपाठ से अधिक मानी जाती है। आपिशलि व्याकरणभी पाणिनीय व्याकरण की भान्ति लौकिक तथा वैदिक उभयावित शब्दों का साधन है उसमें भी सर्वांगीण रूप से सुव्यवस्थित व्याकरण के रूपों, शब्दों, धातु इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

काश्यप-

कश्यप मुनि विरचित व्याकरण का प्रमाण आचार्य पाणिनि के सूत्रों से भी प्राप्त होता है। पाणिनीय व्याकरण में काश्यप के दो सूत्रों को उद्धृत किया गया है- तृषिमृषिकृषे: काश्यपस्य (१/२/२५), नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप – गालवानाम् (८/४/६७) । इसके अतिरिक्त वाजसनेयी प्रातिशाख्य के लोपं काश्यपशाकटायनौ इस वचन में नाम स्मरण किया गया है। इनके व्याकरण संबंधित विषयों की अधिक जानकारी अप्राप्त है।

4.4 व्याकरणशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का परिचय

महाभाष्य-

पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्रों पर कात्यायनादि द्वारा प्रणीत वार्तिकों के आधार पर विशिष्ट शैली में लिखा गया व्याख्यान- ग्रन्थ महाभाष्य के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसमें अष्टाध्यायी का विशद् व्याख्यान अपने महाभाष्य नामक ग्रन्थ में किया गया है। महामुनि पतंजलि द्वारा प्रणीत महाभाष्य एक व्याख्यान- ग्रंथ है, क्योंकि इसे पाणिनि के प्रमुख और महत्वपूर्ण सूत्रों पर ही लिखा गया है। महामुनि पतञ्जलि पाणिनि व्याकरण के अत्यन्त आदरणीय विद्वान है, इन्होंने व्याकरण जैसे ध्रुव और गम्भीर विषय को सरल प्रवाह में और स्पष्ट शैली में समझाने का प्रयास किया है। इन्होंने शब्दों के अनुशासन सम्बन्धी विचारों के साथ व्याकरण के दार्शनिक विचारों का भी उल्लेख यात्रा किया है। महाभाष्य का विभाजन आह्निक में है – “अह्ना निवृत्तम् - आह्निकम्”! इस व्युत्पत्ति से यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि एक-एक दिन में अध्यापनीय विषय का संग्रह। इसमें कुल 85 आह्निक / अध्याय है। महाभाष्य को केवल व्याकरण शास्त्र का ही ग्रन्थ ना मानकर समस्त विधाओं का आधार माना गया है। क्योंकि पतञ्जलि ने समस्त वैदिक तथा लौकिक शब्दों का अनुशीलन करते हुये पूर्ववर्ती सभी व्याकरण का अध्ययन करके

समग्र ब्याह करने की विषयों का प्रतिपादन किया है। इसमें व्याकरण विषयक कोई भी प्रश्न अछूता नहीं रह जाता है, उनकी शैली तर्कपूर्ण व सर्वथा मौलिक मानी जाती है। उनकी रचना से समस्त रहस्य का पता लगाना सरल हो जाता है। यूं तो अष्टाध्यायी में १४ प्रत्याहार सूत्रों को मिलाकर ३९९५ सूत्र या ४000 सूत्र माने हैं ,परन्तु पतञ्जलि के महाभाष्य में १६८९सूत्रों पर ही भाष्यलिखा है। शेष सूत्रों का इस रूप में ग्रहण कर लिया गया है। इसग्रन्थ में सम्भाषणात्मक शैली का प्रयोग तथा विवेचन के मध्य संवादात्मक वाक्य का समावेश मिलता है। उनके व्याख्यान पद्धति के तीन तत्त्व प्रमुख माने गये हैं-सूत्र का प्रयोजन-निर्देश, पदों का अर्थ करते हुये सूत्र अर्थ निश्चित करना। और सूत्र की व्याप्ति बढ़कर, सूत्र का नियंत्रण करना। महाभाष्य में व्याकरण के मौलिक व महान्याय सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया गया है। इसमें लोक-विज्ञान तथा लोक-व्यवहार के आधार पर मौलिक सिद्धांतों की पुनः स्थापना करके व्याकरण को दर्शन का स्वरूप प्रदान किया है। इसमें स्फोटवाद की मीमांसा करते हुये शब्द को ब्रह्म का रूप माना गया है। हमें इसमें शब्द का स्वरूप, व्याकरण अध्ययन के प्रयोजन, शब्द अनुशासन की पद्धति, शब्द अर्थ सम्बन्ध की नित्यता, व्याकरण शास्त्र द्वारा नियम का बोधन और प्रयुक्त शब्दों की अन्य व्याख्यान की आवश्यकता ,शुद्ध शब्दों के ज्ञान में धर्म की उत्पत्ति, व्याकरण पद, ध्वनि ही शब्द है, शब्द नित्य होते हैं,उसके भेदकावर्णन, नित्य शब्द के स्फोटआदिविषयों काप्रतिपादन, ध्वनि रूप कार्य तथा स्फोट वर्णादि विषयों काविधिवत रूप से बोध होता है।

वार्तिक (कात्यायन)-

पाणिनीय व्याकरण को और भी परिष्कृत एवं सरल बनाने वालों में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण नाम कात्यान का आता है। उन्होंने ही सर्वप्रथम अष्टाध्यायी में वार्तिक सूत्रों के माध्यम से संशोधन किया है। कात्यायन के वार्तिकों से जो निश्चित रूप से प्रभाव मन पर पड़ता है, वह यही है कि वह कभी-कभी सदैव नहीं भाषागत व्यवहार के उन भेदों को लेकर जो उनके और पाणिनि के अवान्तरकाल में उत्पन्न हो गये थे। उनकी अशुद्धियां का शोधन उन्होंने वार्तिक सूत्रों के द्वारा किया गया है। वार्तिक सूत्रों के माध्यम से पाणिनि के सूत्रों की न्यूनता के पूर्ति का कार्य किया गया है। इन्होंने वार्षिक पाठ नामक पाणिनीय व्याकरण के अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग की रचना की जो के सूत्रों के अवशिष्ट विषयों का वर्णन करता है यद्यपि स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में यह वर्तमान में उपलब्ध नहीं है तथापि पतञ्जलि के महाभाष्य में वार्षिक उल्लेखित है परन्तु उनकी संख्या की जानकारी सटीक रूप से प्राप्त नहीं होती है। पतञ्जलि के महाभाष्य में १२४५ सूत्रों पर कात्यायन के वार्तिक सूत्रों की प्राप्ति होती है। कतिपय विद्वानों के मत में कात्यायन ने लगभग १५00 सूत्र के ऊपर वार्तिक लिखा है वार्तिक भी एक पारिभाषिक शास्त्रीय शब्द है जिसका लक्षण है-

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्तिकज्ञाः विचक्षणाः।।

जब सूत्रों में उक्तानुक्ता दुरुक्त के कारण विश्व का पूर्ण स्पष्टीकरण ना हो और अन्य अर्थ की प्रतीति होती है ऐसी स्थिति में समाधान के लिए उसे वाक्य की पूर्ति हेतु वार्तिक सूत्रों से स्पष्ट किया जाता है। जैसे "**ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्**"आदि।

काशिका-

जयादित्य और वामन विरचित सम्मिलित वृत्ति काशिका नाम से प्रसिद्ध है। पाणिनीय व्याकरण के ग्रन्थों में महाभाष्य और भर्तृहरि लिखित ग्रन्थों के अन्तर काशिका वृत्ति प्राचीन तथा सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना गया है। इसमें बहुत से सूत्रों की वृत्ति और उदाहरण प्राचीन वृत्तियों से संगृहीत है। काशिका वृत्ति का विभाजन ८ अध्यायों में किया गया है। इसके प्रथम ५ अध्यायों के अन्त में जयादित्य का नाम है, तथा अन्य अध्यायों में वामन का नाम है । इससे स्पष्ट होता है कि इन दोनों ने मिलकर वृत्ति काशिका की रचना की है।

सरस्वतीकण्ठाभरण-

भोजराज द्वारा रचित सरस्वतीकण्ठाभरण व्याकरणवांग्मय में अद्वितीय स्थान रखता है। सरस्वती कण्ठाभरण का मुख्य आधार पाणिनि और चन्द्र व्याकरण है, इन्होंने सूत्र रचना और प्रकरण विच्छेदों के लिये अष्टाध्यायी की अपेक्षा चंद्र व्याकरण का अधिक आश्रय लिया है। सरस्वतीकण्ठाभरण आठ अध्यायों में विभक्त व्याकरण विषयक ग्रन्थ है। इस ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय में चार पाद एवं ६४११ सूत्रों की संख्या प्राप्त होती है। प्रत्येक शास्त्र के ग्रन्थों के समान ही व्याकरण शास्त्र के ग्रन्थों में भी उत्तरोत्तर शास्त्र की अधिक महत्ता होती है, इसी के आधार पर भोजराज ने पाणिनि के ग्रन्थ की शैली को नवीन रूप में उपस्थापित किया है। इनके शब्द अनुशासन के अनेक महत्वपूर्ण भाग है - परिभाषा पाठ, गणपाठ और उणादि सूत्र आदि।

प्रक्रियासर्वस्व-

नारायण भट्ट विरचित 'प्रक्रियासर्वस्व' एक सुप्रसिद्ध प्रक्रिया ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का विभाजन प्रकरण में किया गया है, इसमें कुल २० प्रकरण उपलब्ध होते है। प्रक्रियासर्वस्व के अवलोकन से यह विदित होता है कि नारायण भट्ट ने किसी देवनारायण नाम के राजा की आज्ञा से इस ग्रंथ की रचना की थी। नारायण भट्ट ने इस ग्रंथ की रचना मात्र ६0 दिनों में की थी। इस ग्रंथ में हमें समस्त अष्टाध्यायी के सूत्रों तथा प्रकरण का यथास्थान सन्निविष्ट किया है। उनके प्रकरणों का विभाजन और क्रम भट्टोजिदीक्षित रचित सिद्धान्त कौमुदी से भिन्न है, ग्रन्थकार ने भोज के सरस्वती कण्ठाभरण की वृत्ति का अनुसरण किया है।

4.5 व्याकरणशास्त्र के नवीन ग्रन्थों का परिचय

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी-

आचार्य भट्टोजिदीक्षित विरचित व्याकरण सिद्धांत कौमुदी एक लक्ष्य प्रधान ग्रंथ है। लक्ष्य प्रधान वृत्ति से अभिप्राय है- प्रक्रियानुसार व्याख्यान। इसमें अष्टाध्यायीगत सूत्र क्रम को भंग किये बिना व्याख्या की गयी है। महाभाष्यानुसार व्याख्यान ग्रन्थ की रचना सन्धि, समास, सुबन्त आदि प्रक्रिया के लिए उपयोगी प्रकरणों के अनुसार होती है, अतः प्रक्रिया अनुसार व्याख्यान ग्रन्थ में आचार्य भट्टोजिदीक्षित द्वारा रचित व्याकरण सिद्धान्तकौमुदी विशेष लाभ प्रतिष्ठित ग्रन्थ है। इस कथन में लेश मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है कि व्याकरण निकाय में सर्वाधिक प्रचलित पुस्तक व्याकरणसिद्धान्तकौमुदी ही है। यह व्याकरणसिद्धान्तकौमुदी दो भागों में विभक्त की गयी है, इसमें कुल १४ प्रकरण है। पूर्वार्ध में संज्ञा परिभाषा, सन्धि, सुबन्त, अव्यय, स्त्री प्रत्यय, कारक, समास तथा तद्धित प्रकरण का निरूपण किया गया है। इसके दूसरे भाग अर्थात उत्तरार्ध में तिङन्त, ण्यन्तादि प्रक्रियाएं, कृदन्त तथा स्वर प्रकरण है। सिद्धान्त कौमुदी में हमें सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के ३९७८या ४000 के लगभग सूत्रों की व्याख्या प्राप्त होती है। इस

प्रकार यह ग्रन्थ सम्पूर्ण अष्टाध्यायी का प्रतिनिधित्व करता है।कौमुदी कावैशिष्ट्यबतातेहुये उसके सम्बन्ध मेंएक उक्ति गयी गयी है –

कौमुदी यदिआयाति वृथाभाष्येपरिश्रमः।
कौमुदी यदि नायाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

व्याकरणसिद्धान्तकौमुदी में हम सर्वप्रथम संज्ञाओं का अध्ययन करते हैं, इसके पश्चात सन्धि तथा पद ज्ञान के लिए षड्लिंङ्गप्रकरण का अध्ययन तथा स्त्रीलिङ्ग ज्ञान के लियेस्त्री प्रत्यय का प्रकरण है। तत्पश्चात स्त्री प्रत्यय के बाद कारक तद्नुसार समास प्रकरण , उसके पश्चात तद्धित प्रकरण रखा गया है। दीक्षित जी ने धातु में होने वाले समग्र प्रत्ययों का निरूपण भागों में विभक्त किया है। यह द्विविध होते हैं- तिङन्त और कृदन्त। तिङन्त को भी १० गणों और शेष ण्यन्त,सन्नन्त आदि के रूप में विभाजित किया है। तिङन्त के चार प्रकरण बताए है– कृत्य, पूर्व कृदन्त, उणादि और उतर कृदन्तादि इस तरह से यह प्रकरण पाणिनीय सूत्रानुसार क्रम का अत्यन्त अतिक्रमण नहीं करता है। दीक्षित जी ने समग्र धातुओं का विवेचन धातू पाठ के क्रम से किया है। अन्तिम प्रकरण में वैदिक प्रक्रियाएं अर्थात स्वर प्रकरण का निरूपण किया गया है।अतः यह कहनाउचित होता कि१६वींशताब्दी में लिखा गयायह ग्रन्थनव्यपाणिनीय व्याकरण परम्परा काप्रसिद्धग्रन्थ है।प्रक्रिया -ग्रन्थोंमें उत्कृष्ट और लोकप्रिय इस ग्रन्थ में पाणिनि की अष्टाध्यायी के सभी सूत्रों को प्रक्रियात्मक क्रम से विवेचित कर उनकी संक्षिप्त वृत्ति देते हुये शब्द रूपों की सिद्धि में उनका विनियोग प्रदर्शित किया है।इसके अध्ययन से अध्ययनकर्ताव्यस्त जीवन में भी अल्प समय में ही व्याकरण के किसी विशेष प्रकरण को जानने में समर्थ हैं।

लघुसिद्धान्कौमुदी-

लघुसिद्धान्कौमुदी पण्डित वरदराज द्वारा विरचित संस्कृत व्याकरण का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह मूल रूप से अष्टाध्यायी पर आधारित है। परन्तु लघुसिद्धान्कौमुदी को लिखने का उद्देश्य सिद्धान्तकौमुदी को और अधिक सरल बनाने से है। आचार्य वरदराज ने विद्यार्थियों की असमर्थता को देखते हुये मध्यसिद्धान्तकौमुदी और लघुसिद्धान्त कौमुदी नामक दो ग्रन्थ सिद्धान्त कौमुदी को संक्षिप्त करके लिखें हैं। उन्होंने लघुसिद्धान्कौमुदी में मुख्य सूत्रों का सन्निवेश किया है, लघु सिद्धान्त कौमुदी में १२७५ सूत्र गुम्फित किये गये हैं। दीक्षित जी के शिष्य का प्रमुख उद्देश्य पाणिनि व्याकरण में बालकों को सरलता से प्रवेश करना था। इस बात की पुष्टि ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण के द्वारा स्पष्ट की गयी है। लघु सिद्धान्त कौमुदी के अध्ययन से हमें संस्कृत सन्धि, समास, प्रत्यय, कारक एवं लकार-विज्ञान जैसे विषयों का स्पष्टीकरण प्राप्त होता है। इसमें संस्कृत व्याकरण के जटिल नियमों को संक्षिप्त रूप में प्राप्त होते हैं। यह पाठ्यक्रम के अनुरूप छात्रों को संस्कृत भाषा को सिखाने में अत्यन्त उपयोगी है। यह ग्रन्थ पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध होने से दो भागों में विभक्त है। लघु सिद्धान्त कौमुदी में सर्वप्रथम संज्ञा प्रकरण,उसके उपरान्तसन्धि, सन्धि के मुख्य भेद अच् सन्धि, हल सन्धि, विसर्ग सन्धि के विषय का ज्ञान होता है। उसके पश्चात् सुबन्त प्रकरण में अजन्तपुलिङ्ग, अजंतस्त्रीलिङ्ग, अजन्तनपुंसकलिङ्ग, हलन्तपुलिङ्ग, हलन्तस्त्रीलिङ्ग, हलन्तनपुंसकलिङ्ग, वर्णन।अर्थात् षड्लिङ्ग प्रकरण का अध्ययन विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया गया है। अवयव प्रकरण के अध्ययन के साथ पूर्वार्ध की समाप्ति हो जाती है। उत्तरार्ध में तिङन्त प्रकरण का ज्ञान होता है, जिन्हें १० लकारों के माध्यम से समझाया गया है। तत्पश्चात नाम धातु, स्वर प्रक्रिया, कृदन्त प्रकरण, कारक, समास

प्रकरण, तद्धित प्रकरण तथा अन्तिम अध्याय में स्त्री प्रत्ययों का सविस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। यद्यपि वरदराज ने सिद्धान्त कौमुदी का संक्षिप्त संस्करण ही लघु कौमुदी को बनाया है, तथापि प्रकरणों की दृष्टि से लघु कौमुदी का क्रम सिद्धान्त कौमुदी के क्रम से बहुत श्रेष्ठ है। सिद्धान्त कौमुदी में अव्यय प्रकरण के बाद स्त्री प्रत्यय प्रकरण प्रारम्भहोता है। परन्तु लघु कौमुदी में स्त्री प्रत्यय प्रकरण सब प्रकरणों के अन्त में रखा गया है, यह उचित भी है क्योंकि कृत, तद्धित और समास आदि का ज्ञान प्राप्त करने से स्त्री प्रत्यय को समझना सरल है। अतः यह ग्रन्थ शिक्षकों के लिये एक आदर्श ग्रन्थ है, क्योंकि इसमें सूत्रों की व्याख्या अर्थ और उदाहरण एक साथ प्राप्त होते हैं। जिसके फल स्वरूप विद्यार्थियों को सहजता पूर्वक संस्कृत व्याकरण से अवगत कराया जा सकता है।

वैयाकरणभूषणसार-

वैयाकरणभूषणसार वैयाकरण सम्प्रदाय में अतिशय प्रसिद्ध ग्रन्थ है, इसके रचयिता कौण्ड भट्ट है। यह ग्रन्थ वैयाकरणभूषण नामक ग्रन्थ का संक्षिप्त सार है। यद्यपि वैयाकरणभूषण में जो शास्त्रार्थ विस्तार से दिये गये हैं, वह ही इसमें शब्दान्तर में संक्षेप से प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें भट्टोजिदीक्षित कृत ७४ कारिकाओं की व्याख्या संक्षेप रूप से प्रस्तुत की गयी है। यह प्रक्रियात्मक तथा दर्शन प्रधान होने से उभयात्मक ग्रन्थ है। वैयाकरण भूषणसार व्याकरण दर्शन के गूढ़तत्व निरूपिका कारिकाओं की व्याख्या होने के कारण व्याकरण दर्शन का भी ग्रन्थ माना जाता है, इसमें निर्णय शब्द से वैयाकरणों के तत्तविषयक सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। शब्दों की रूप प्रक्रिया पर नहीं अपितु अर्थो पर इसमें विचार विमर्श किया गया है, इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय धात्वार्थ निर्णय है। वैयाकरण भूषणसार में १५ निर्णय तथा २१कारिकाओं में इसका प्रतिपादन किया गया है । इस ग्रन्थ में निम्नलिखित विषयों को बताया गया है -१. धात्वर्थनिर्णय, २. लकारार्थनिर्णय ३. सुबर्थनिर्णय ४. नामार्थनिर्णय ५. समासशक्तिनिर्णय ६. शक्तिनिर्णय ७.नञर्थनिर्णय ८.निपातार्थनिर्णय ९.त्वादिभावप्रत्ययार्थनिर्णय १0. देवताप्रत्ययर्थनिर्णय ११. अभेदैकत्वसङ्ख्यानिर्णय १२. सङ्ख्या विवक्षानिर्णय १३.क्त्वाद्यर्थनिर्णय १४. स्फोटस्यावतरणिका तथा १५. स्फोटनिर्णय। वैयाकरणभूषणसार में मंगलाचरण के प्रयोजन से लेकर कारिकाओं का शब्दकौस्तुभ कासार होना, कार्यकाओं का सरलार्थ, फल और व्यापार के लक्षण, आश्रय का विवेचनादि, बोधकतारूपा शक्ति व्याकरणानुसार, असाधु शब्दों का बोधादि का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है।

लघुशब्देन्दुशेखर-

लघुशब्देन्दुशेखर पाणिनीय की प्रक्रियाधारा में प्रौढ़तालाने में सर्वप्रतिष्ठित ग्रन्थ है। इसमें नागेश भट्ट जी के द्वारा सिद्धान्त कौमुदी की विस्तारपूर्वक व्याख्या का वर्णन किया गया है। संस्कृत के विद्वानों ने इसे व्याकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना है, क्योंकि इससे छात्रों और विद्वानों के लिये शब्द रूपों और धातु रूपों का संकलन किया गया है। यह संज्ञा शब्द, जैसे- पुल्लिङ्ग, (राम, नर, गुरु, हरि आदि), स्त्रीलिङ्ग, (लता, रमा, नदी, लक्ष्मी आदि), नपुंसकलिङ्ग, (फल, वारी, ज्ञान, वनादि)।सर्वनाम शब्द, जैसे (अस्मद्, युष्मद्, तद्, किम्, असद् इत्यादि)।विशेषण शब्द, धातुएं १० लकारों में , संख्यावाचक शब्द, कारक विभक्तियों का वर्णन और उनका प्रयोग,प्रत्यय, सन्धियों का सविस्तार वर्णन, अवयव का प्रयोग, उपसर्ग, संस्कृत वाक्य रचना को व्याख्यात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। अतः यह कहना उचित होगा कि लघु

शब्देन्दुशेखर मुख्य रूप से संस्कृत शब्द रूप, धातु रूप और व्याकरणिक संरचना पर केंद्रित एक व्याकरण प्रमुख ग्रन्थ है, यह संस्कृत भाषा सीखने में बहु उपयोगी ग्रन्थ भी है।

4.6 व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक ग्रन्थों का परिचय

व्याडि का संग्रह (व्याडि)-

आचार्य व्याडि दाक्षायण एवं दाक्षि नाम से विख्यात थे, इन्होंने संग्रहकार के रूप में एक लाख श्लोकों के परिणामरूपी ग्रन्थ की रचना की थी।**(शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः, संग्रहो व्याडिकृतो लक्षसंख्यो ग्रन्थः** -महाभाष्य – प्रदीपोद्योत)। व्याडि का समय २९०० विक्रम संवत पूर्व स्वीकार किया गया है। संग्रहकार व्याडि अष्टाध्यायी के व्याख्याता माने जाते थे।तथाउनके ग्रन्थ को प्रथमदार्शनिक- ग्रन्थ स्वीकार किया गया था।आचार्य शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में व्याडि के अनेकश मतों को उद्धृत किया है, तथा व्याडि ने भी शब्दानुशासन की रचना की थी। उनके शब्द संग्रह का वर्णन शाकल्य और गार्ग्य ने बहुत बार किया है। व्याडि रचित शब्दानुशासन व्याकरण के कुछ अंश महाभाष्यऔर कातंत्र व्याकरण मेंभी उपलब्ध है।

वाक्यपदीय-

भर्तृहरि द्वारा विरचित वाक्यपदीयव्याकरण शास्त्र का एक अत्यन्त प्रौढ़ एवं दर्शनात्मक ग्रन्थ है। उन्होंने पद्यात्मक रूप से तीन काण्डों में वाक्यपदीय को विभाजित किया है, जिसमें मुख्यतः भाषा के दर्शन का निरूपण प्राप्त होता है। यह एक कठिन ग्रन्थ है, जिसमें हमें समकालीन दार्शनिक विवादों से पूर्ण परिचय का पुष्कल साक्ष्य वर्तमान की प्राप्ति होती है। वाक्यपदीय में भाषा शास्त्र व व्याकरण दर्शन से संबंधित मौलिक प्रश्न उठाए गये हैं, तथा उनका समाधान भी उन्होंने उसी में प्रस्तुत किया है।वाक्यपदीय की अनादिनिधन आदि चारकारिकाओं, वृत्ति में शब्दब्रह्मकानिरूपण किया गया है। शब्द ब्रह्म रूप एक ही स्फोट शब्द और उसके अर्थ, इन दोनों काउपादान कारण है और दोनों ही शब्द ब्रह्मका कार्य होने से परस्पर उभय रूप होते हैं।भर्तृहरि ने अनादिनिधन कारिका की वृत्ति में कहा है कि– सर्वास्व वस्थास्वना श्रिता दिनि धनं ब्रह्मेति। इस पर श्री वृषभाचार्य की टीका है – न केवलम विवर्तावस्थायां, विवर्तावस्थायामपीति।अर्थात् अविवर्तमेंतथाविवर्तावस्थामेंभीशब्दब्रह्मआदि-अन्तरहित-नित्य है। और वह शब्द का लत था देश के परिच्छेद से शून्य है। सभी दर्शनों में कार्य-कारणात्मक तथा विभक्त एवं अविभक्त ब्रह्म की पूर्व और पर अथवा प्रवृत्ति या निवृत्ति की गयी है। अतः ब्रह्म की दो अवस्थाएं हैं – एक सर्व विकल्पातीततत्त्वात्मक और दूसरी समाविष्ट सर्व शक्ति रूप। सगुण ब्रह्म को ही वैयाकरण शब्द ब्रह्म, रस ब्रह्म और सौन्दर्य वादी रूप ब्रह्म कहते है। अद्वैत वेदान्त वादी भर्तृहरि शब्द ब्रह्म को ही जगतकामूल कारण मानतेहै। इसी शब्द ब्रह्म को विवर्ता वस्था कहा गया है। इन्होंने स्वीय ग्रन्थ में भाषा विज्ञान, व्याकरण तथा अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों का प्रतिपादन कर दार्शनिक महत्व को दिखाया है और वाक्य का स्वरूप निर्धारित कर व्याकरण की महान्यायता सिद्ध की गयी है। उनकी रचना पद्य बद्ध है, तथा इसमें कुल श्लोक की संख्या १९६४ है। इन्हीं श्लोक बद्ध रचना को (१.)(आगम) ब्रह्म काण्ड, (२.) वाक्य काण्ड तथा (३.)पद काण्ड भेद से विभक्त किया गया है।

(१) **ब्रह्म काण्ड** -इसमें शब्द ब्रह्मविषयक सिद्धांतऔर विवर्तवाद का विवेचन है।भर्तृहरि शब्द को ब्रह्म मानते हैं, उनके अनुसार शब्द तत्व अनादि और अनन्त है। प्रथम काण्ड

में मुख्य रूप से अखण्ड वाक्य स्वरूप स्फोट शब्द का विवेचन प्राप्त होता है। यहां पर मुख्य रूप से शब्द ब्रह्म सिद्धांत,अद्वैतवाद और भाषा,स्फोट सिद्धान्त, व्याकरण और दर्शन का समन्वय, ज्ञान मीमांसा पर प्रभाव आदि दार्शनिक मतोंका प्रतिपादन किया है।प्रथम काण्ड में १५६ श्लोक हैं। ब्रह्म काण्ड को अतिरिक्त आगम काण्ड के नाम से भी जाना जाता है। भर्तृहरि ने भाषा को ही व्याकरण का प्रतिपाद्य स्वीकार किया है, तथा प्रकृति प्रत्यय के सहयोग विभाग पर ही भाषा का यह रूप आश्रित होता है। इसमें वाणी के तीन चरण पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी का भी उल्लेख मिलता है।

(२) **वाक्यकाण्ड** -द्वितीय काण्ड में ४९३श्लोक के माध्यम से भाषा की इकाई वाक्य को मानते हुये उस पर विचार किया गया है। इसमें नादों द्वारा अभिव्यज्यमान आन्तरिक शब्द ही बाह्य रूप से श्रूयमाण शब्द कहलाते हैं, इत्यादि तथ्यों का स्पष्टीकरण प्राप्त होता है।

(३) **पदकाण्ड** -इस काण्ड में पद से सम्बन्ध नाम या सुबन्त के साथ विभक्ति, संख्या, लिङ्ग, द्रव्य, वृत्ति जाति पर विचार किया गया है। इसमें कुल १४उद्देश्य है, तथा श्लोकों की संख्या १३२५ है। वाक्यपदीय पर अनेक व्याख्याएं उपलब्ध होती हैं।

वैयाकरण सिद्धान्तमञ्जूषा–

वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा महान् संस्कृत विद्वान नागेशभट्ट द्वारा रचित एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह १६वीं शताब्दी में लिखा गया है, इस ग्रन्थ में भट्टोजिदीक्षित रचित ग्रन्थों, तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रक्रियात्मक और दार्शनिक स्वरूप से नवीतम रूप को प्रस्तुत करता है। इन्होंने मुख्य रूप से शब्दों की पवित्रता के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें व्याकरण दर्शन के सभी तत्त्व अन्तर्निहित तथा व्याकरण दर्शन के पूर्व ग्रन्थों का भी समावेश मिलता है। नागेश भट्ट ने वैयाकरण सिद्धांत मञ्जूषा के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण की कठिन व्याख्याओं को सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में वर्णस्फोटसामान्यनिरूपण, शक्तिनिरूपण, लक्षणानिरूपण, व्यञ्जनानिरुक्ति, धात्वर्थविचार, निपातसामान्यार्थविचार, नञर्थविचार, एवकारार्थविचार, तिङर्थविचार, सनाद्यर्थविचार, कृदर्थ, नामार्थविचार, सुबर्थ, समासशक्ति, सुबन्तप्रकृतिकक्यजाद्यर्था, पदवाक्यस्फोटतथा अखण्डपदवाक्यस्फोट विषयों का वर्णन किया गया है। नागेश भट्ट ने कहा कि ऋषि स्फोट शब्द का समर्थन करते थे। पाणिनि संप्रदाय में स्फोट शब्द 'अबङ् स्फोटायनस्य' सूत्र हर जगह पाया जाता है। इसी शब्द की व्याख्या मूलरूप से सभी वैयाकरणों ने की है। वैयाकरण सिद्धान्त मञ्जूषा के अन्त में स्फोटवाद के विषय में एक उक्ति गयी है–

वैयाकरणनागेशः स्फोटायन ऋषेर्मतम्।
परिष्कृत्योक्तवांस्तेन प्रीयतां जगदीश्वरः।।

4.7 सारांश

उपर्युक्त संस्कृत व्याकरण ग्रन्थोंके अध्ययनसेभारतीय वाङ्मयमें शब्द-शास्त्रपरम्परा के विशद् इतिहास का पता चलता है। संस्कृत व्याकरण का इतिहास के विषय में अनेक वैयाकरणों के नाम तथा उनके शब्द-शास्त्र सिद्धान्त काउल्लेख वैदिक,लौकिकतथा प्राचीन ग्रन्थों जैसे – वेद, ब्रह्मणग्रन्थ, संहिता, ऋक्प्रातिशाक्य, पाणिनि पूर्वशब्दानुशासन और पाणिनि व्याकरण से

लेकर नव्य वैयाकरण तक प्राप्त होती है। तैत्तिरीय संहितानुसार देवों की प्रार्थना स्वीकार करते हुये इन्द्र ने अव्याकृत वाणी का विश्लेषण करके शब्द-शास्त्र सिद्धान्त को द्योतित किया है। इन्हें प्रथम वैयाकरण होने का श्रेय प्राप्तहोता है। वाक्य से पदों का अपोद्धार और पद में प्रकृति एवं प्रत्यय की कल्पना व्याकृत वाणी का लक्षण होने पर व्याकरण शब्द पक्ष का प्रादुर्भाव हुआ है। आरम्भिक व्याकरण निश्चित रूप से वैदिक भाषा की व्याख्या के लिये था। इसमें पाणिनि पूर्व शब्दानुशासन जैसे - ऐन्द्रव्याकरण, वायुव्याकरण, भरद्वाज, काश्यप व्याकरणत था आपशिलिव्याकरणादि प्रमुख ग्रन्थ है। तदुपरान्त संस्कृत भाषा या वैज्ञानिक भाषा को परिनिष्ठित करने हेतु आचार्य पाणिनि इस निखिल शब्दानुशासन के प्रवर्तक माने जाते है। उनके द्वारा व्याकृत पाणिनीय व्याकरण अनुवर्ति शाब्दिकों के अध्ययन का प्रमुख प्रवर्तक ग्रन्थ सिद्ध हुआ है । व्याकरण निकाय के प्रमुख ग्रन्थों में सर्वप्रथम पाणिनि-विरचित अष्टाध्यायी एवं तत्पूर्व ग्रन्थों की विशिष्ट महत्ता स्वीकृत है। पाणिनि एवं पाणिनि पूर्व ग्रन्थ वैदिक शब्द-शास्त्र (वैदिक संस्कृति) तथा तत्कालीन शिष्ट भाषा संस्कृत का सम्पूर्ण रूप से अङ्गीकार करता है। इनमें हमें समस्त शब्द रूप की प्रक्रिया, धातु से शब्द निर्वाचन पद्धति और समग्र वर्णमाला को सूत्रों में बांधकर लाघवत्व दर्शाया गया है। जिसमें वार्तिकार कात्यायन तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि का विशेष महत्त्व पूर्ण स्थान रहा है। क्योंकि इन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों में संशोधन करके पाणिनीय व्याकरण को परिष्कृत किया है। वहीं महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनि के प्रमुख सूत्रों में भाष्य लिखकर शब्दानुशासन से अवगत करवाया है। इन मुनित्रयों का केवल एक मात्र लक्ष्य संस्कृत व्याकरण के माध्यम से भाषा का सटीक ज्ञान करवाने से है। मुनित्रय के पश्चात् आचार्य भर्तृहरि, वामन-जयादित्य, आचार्य भट्टोजिदीक्षित, कौण्डभट्ट, वरदराज,नागेश भट्ट आदि से लेकर अद्यावधि तक अनेक वैयाकरणिक विद्वानों ने स्वरचितग्रन्थों द्वारा इस परम्परा को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने में अहम योग दान दिया है। इन्होनें पाणिनीय व्याकरण को अधिक सरल बनाने का कार्य किया है, ताकि संस्कृत व्याकरण को पढ़ने वाले अध्येताओं को इसका सरलतया अवबोधन हो सके। तत्पश्चात पद साधुत्व के ज्ञान के लिये, शाब्द बोध हेतु तथा व्याकरण दर्शन के रूप में स्फोटवाद, शब्द के नित्यत्व का साधन करते हुये, शब्द को ही ब्रह्म स्वीकार करतेहै, तथा इस संसार को दार्शनिक वैयाकरणों ने शब्द ब्रह्म को विवर्तरूप में व्याख्यायित किया है। वैयाकरणों ने प्राच्य तथा नव्य विधाओं में लक्ष्य तथा लक्षण उभयतः ग्रन्थों की रचना की है। उनका मुख्य रूप से प्रतिपाद्य विषय पाणिनि रचित अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रक्रियात्मक सिद्धि के लिये क्रम से लगाकर सूत्र तथा उदाहरण को एक साथ रखकर संस्कृत व्याकरण शास्त्र में बालकों का सरलता से प्रवेश करवाने से है। मूल ग्रन्थों के प्रणयन के साथ-साथ टीका तथाउपटीकारूपीरचनाओंमेंमतोंकाखण्डन-मण्डन भी प्राप्त होता है, जो शब्द-शास्त्र की उन्नत परम्परा को आज भी जागृत करने का कार्य करती है। फिर वो वैज्ञानिक भाषा का सर्वांगीण विकास हो या भाषा-शैली के रूप में महाभाष्य की अद्भुत व्याख्यान शैली। अथवा काशिका से लेकर सिद्धान्त कौमुदी आदि प्रक्रिया ग्रन्थ हो, व्याकरण शास्त्र इनसभी विधाओं में अपनी उन्नत शास्त्रीयपरम्परा केलिये लोक विश्रुत है। अतः उपर्युक्त संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों के सम्यकतया अध्ययन से पता चलता है कि यह संस्कृत व्याकरण, वैदिक , लौकिक, वैज्ञानिक तथा आधुनिक भाषा को सीखाने में बहुउपयोगी ग्रन्थ है। इसीलिए व्याकरण शास्त्र को वेद का मुख कहा है –**" मुखंव्याकरणंस्मृतम्"।**

4.8 पारिभाषिकशब्दावली

सूत्र – सारगर्भित दृढ़ कथन।

माहेश्वरसूत्र – शिव के डमरू से अनुनादित 'अइउण्' आदि चतुर्दश सूत्र।

वार्तिक – संशोधन, पूर्णताया व्याख्या की दृष्टि से जोड़ा जाना वाला कथन, जो मूल पाठ के सदृश मान्य होता है।

पद – वर्णों के संयोग से बनने वाली सार्थक ईकाई को पद कहते हैं।

प्रत्याहार – वर्ण बाहुल्य कि स्थिति में संक्षिप्तता के लिये प्रथम एवं अन्तिम वर्ण का उल्लेख कर उन्हें सूत्र रूप में प्रतिपादित करना। जैसे – अण्, इक् इत्यादि 42 प्रत्याहार।

प्रातिशाख्य – प्रति अर्थात्तत्-तत्शाखा से सम्बन्धित वैदिक व्याकरण।जैसे – ऋक्प्रातिशाख्य आदि।

वैयाकरण – व्याकरणशास्त्र को जानने वाला व्याकरण विद्या व्याकरण शास्त्र में पारङ्गत विद्वान्।

आख्यात – किसी धातु या क्रिया रूप के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द।

भाष्य – किसी मूल पाठ पर लिखी गयी एक वैदुष्य पूर्ण विश्लेषात्मक व्याख्या।

स्फोट – सामान्य ध्वनि से भिन्न विशिष्ट-ध्वनि के द्वारा अर्थ अभिव्यक्ति कराने वाला शब्द, जिसके आधार पर व्याकरण दर्शन का 'स्फोटवाद' सिद्धान्त निकला है।

4.8 बोध प्रश्न एवं उत्तर

(प्र०1) 'अष्टाध्यायी' के रचयिता कौन है?

- क) महर्षिवाल्मीकि
- ख) महर्षिपतञ्जलि
- ग) महर्षिपाणिनि
- घ) भर्तृहरि

(प्र०2) इन्द्र को सर्व प्रथम शब्द शास्त्र का उपदेश किसने दिया?

- क) ब्रह्मा
- ख) शिव
- ग) बृहस्पति
- घ) वायु

(प्र०3) 'महाभाष्य' किस शैली का व्याकरण ग्रन्थ है?

- क) सूत्रशैली
- ख) व्याख्यात्मक शैली
- ग) वार्तिक
- घ) उपदेशशैली

(प्र०4) 'प्रक्रियासर्वस्व' ग्रन्थ में कुल कितने प्रकरण उपलब्ध होते हैं?

- क) 18 प्रकरण
- ख) 19प्रकरण
- ग) 20 प्रकरण

घ) 22 प्रकरण

(प्र०5) माहेश्वर सूत्रों की संख्या कितनी है?

क) 12

ख) 14

ग) 16

घ) 18

(प्र०6) "अथवर्णसमूहः" यह किस व्याकरण का प्रथम सूत्र है?

क) ऐन्द्रव्याकरण

ख) भरद्वाजव्याकरण

ग) पाणिनीयव्याकरण

घ) सरस्वतीकण्ठाभरण

(प्र०7) 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' में कितने सूत्र प्राप्त होते हैं।

क) 1272

ख) 1270

ग) 1278

घ) 1275

(प्र०8) 'लघुशब्देन्दुशेखर' किस आचार्य की कृति है ?

क) भर्तृहरि

ख) कौण्डभट्ट

ग) नागेशभट्ट

घ) जयादित्यऔरवामन

(प्र०9) अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते ....।

क) दार्शनिकाः

ख) वैयाकरणाः

ग) साहित्यज्ञाः

घ) संगीतज्ञाः

(प्र०10) 'वाक्यपदीय' के तीन काण्ड हैं –

क) ब्रह्म, शब्द और वास्तु

ख) पद, आगम और पदान्त

ग) ब्रह्म, वाक्य और पद

घ) आगम, ब्रह्म और प्रकृति

उत्तरमाला – 1. (ग) 2. (ग) 3. (ख) 4. (ग) 5. (ख) 6. (क) 7. (घ) 8. (ग) 9. (ख) 10. (ग)

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. अशोक चन्द्र गौड़ शास्त्री, संस्कृतव्याकरणशास्त्रेतिहास विमर्शः,भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी – २०१९

2. आचार्य श्रीयुधिष्ठमीमांसक, संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, रामलालकपुरट्रस्ट
3. पतंजलि, व्याकरणमहाभाष्य, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
4. उमाशंकरशर्माऋषि, संस्कृतसाहित्य का इतिहास, चौखम्भा विश्व भारती प्रकाशन, वाराणसी

4.11 उपयोगी पुस्तकें

1. डॉ. अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री, संस्कृतव्याकरणशास्त्रेतिहासविमर्शः,भारतीयविद्यासंस्थान, वाराणसी – २०१९
2. आचार्यश्रीयुधिष्ठमीमांसक, संस्कृतव्याकरणशास्त्रकाइतिहास, रामलालकपुरट्रस्ट
3. पतंजलि, व्याकरणमहाभाष्य, चौखम्भासुरभारतीप्रकाशनवाराणसी
4. उमाशंकरशर्माऋषि, संस्कृतसाहित्यकाइतिहास, चौखम्भाविश्वभारतीप्रकाशन, वाराणसी

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र०1) संस्कृतव्याकरण के दो प्रमुख प्राचीन एवं नवीन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्र०2) पाणिनि की अष्टाध्यायी पर विस्तार पूर्वक टिप्पणी लिखिए।

प्र०3) 'वाक्यपदीय' का दार्शनिक महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

प्र०4) 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' के प्रतिपाद्य विषयों पर चर्चा कीजिए।

प्र०5) पाणिनि से पूर्व शब्दशास्त्र के ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

खण्ड- दो (Section-B)
लघुसिद्धान्तकौमुदी : संज्ञा प्रकरण एवं अच् सन्धि

इकाई 1. संज्ञा प्रकरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संज्ञा प्रकरण का महत्त्व एवं प्रतिपाद्य
1.4 संज्ञा प्रकरण की विषयवस्तु
    1.4.1 मंगलाचरण अर्थ एवं व्याख्या
    1.4.2 चतुर्दश माहेश्वर सूत्रों का प्रयोजन
    1.4.3 प्रत्याहार निर्माण विधि
    1.4.4 वर्णमाला उच्चारण स्थान एवं स्वरूप
    1.4.5 प्रयत्न विधान
    1.4.6 संहिता संज्ञा विधायक,संज्ञा सूत्र
    1.4.7 संयोग संज्ञा विधायक,संज्ञा सूत्र
    1.4.8 पद संज्ञा विधायक,संज्ञा सूत्र
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत व्याकरण से सम्बन्धित यह द्वितीय खण्ड की प्रथम इकाई। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि संस्कृत व्याकरण क्या है ? इसका उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ ? इसके संस्थापक आचार्य कौन-कौन हैं ? व्याकरण के प्रयोजन क्या हैं ।

प्रस्तुत इकाई में संस्कृत व्याकरण का सामान्य परिचय जानने के बाद आप इसके प्रथम अध्याय संज्ञा प्रकरण का विधिवत् अध्ययन कर पाएंगे, जिसमें मुख्य रूप से चौइह माहेश्वर सूत्र प्रत्याहार एवं उसे बनाने की प्रक्रिया, वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न तथा कुछ संज्ञाओं का सुव्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संज्ञा के मुख्य विषयों से समझा सकेंगे तथा आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनि संबंधी चिन्तनों का सम्यक विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- संस्कृत व्याकरण के आधारभूत चौदह माहेश्वर सूत्रों को जान पाएंगे ।
- प्रत्याहार के द्वारा वैज्ञानिक विधि से अल्प प्रयास एवं अल्प वर्णो का प्रयोग करते हुए अधिक से अधिक वर्णो का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग कर पाएंगे ।
- दैनिक जीवन में प्रयोग करने वाले वर्णों का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न जान पाएंगे ।
- वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्नों को जानकर आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनियों का ठीक प्रकार से विश्लेषण कर पाएंगे ।
- संस्कृत ध्वनियों के ज्ञान से अन्य भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का सहजता पूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- अन्य भाषा में प्रयुक्त होने वाले ध्वनियों में आये विकृतियों को भलीभॉति जान पाएंगे ।
- स्वर एवं व्यन्जन वर्णो का भलीभॉति ज्ञान प्राप्त कर लेने से भाषा के आधारभूत तत्त्वों को समझ पाएंगे ।
- स्वर संधि प्रकरण में इस ज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग करते हुए उचित लाभ ले पाएंगे ।

1.3 संज्ञा प्रकरण का महत्त्व एवं प्रतिपाद्य

व्याकरण अध्ययन से सम्बन्धित यह प्रकम खण्ड की प्रथम इकाई है । जैसा कि आप जानते हैं कि संज्ञा का अर्थ अभिधान या नाम है । जीवन का व्यवहार हो या अध्ययन का विषय, संज्ञा के बिना बात आगे नहीं बढती । जिस प्रकार जन्म लेते ही संतान की संज्ञा निर्धारित हो जाती है, क्योंकि दैनिक जीवन में इसी नाम के आधार पर सभी प्रकार के क्रिया-कलाप निश्चित किये जाते हैं उसी प्रकार किसी शास्त्र के अध्ययन के लिये सर्वप्रथम इसके कुछ अंगभूत तत्त्वों की संज्ञा निर्धारित हो जाती है जिसके आधार पर अन्य अंग सुनियोजित रूप से अपने कार्यो में प्रवृत्त होते हैं। संस्कृत व्याकरण को पाणिनि ने सूत्रों में प्रस्तुत किया है । इस तथ्य को आप इसके पहले की इकाई में ठीक प्रकार से जान चुके हैं। यूत्र कस लक्षण संज्ञा प्रकरण के अन्त में बताया जाएगा । किन्तु सूत्र के छः प्रकारों-संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश और

अधिकार- में संज्ञा प्रथम प्रकार है। संस्कृत व्याकरण में प्रयुक्त होने वाले तकनीकी शब्दों (सवर्ण संज्ञा, संहिता संज्ञा, संयोग संज्ञा आदि) का नामकरण संज्ञा प्रकरण का मुख्य विषय है। इसके अतिरिक्त यहाँ उपयोगिता के अनुरूप चौदह माहेश्वर सूत्र, प्रत्याहार बनाने की विधि एवं प्रत्याहारों की संख्या, वर्णो का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न आदि का भी सम्यक् विवेचन प्रस्तुत है।

1.4 संज्ञा प्रकरण की विषय वस्तु

1.4.1 मंगलाचरण अर्थ एवं व्याख्या

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्।
पाणिनीय प्रवेशाय लघुसिद्धान्त कौमुदीम्।।

पदच्छेदः- नत्वा-अव्ययपदम् । सरस्वतीम्, देवीम्, शुद्धाम् गुण्याम्,- इमानि चत्वारि पदानि द्वितीयान्तानि । 'करोति'-क्रियापदम् । अहम् - प्रथमान्तम् (कर्तृपदम्) । पाणिनीयप्रवेशाय - चतुर्थ्यन्तम्। लघुसिद्धान्तकौमुदीम्-द्वितीयान्तम् (कर्म)।

अन्वय:- अहं शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्वा पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि।

इसमें 'अहम्' कर्तृपद है और 'करोमि' क्रियापद (प्रधान) । 'नत्वा' गौण क्रिया । 'सरस्वतीम्' गौण क्रिया का कर्म है। 'शुद्धाम्' -गुण्याम्' और 'देवीम्' ये सरस्वती के विशेषण हैं। 'लघुसिद्धान्तकौमुदीम्' यह 'करोमि' इस प्रधान क्रिया का कर्म है । ''पाणिनीयप्रवेशाय' से प्रयोजन बताया गया है। शुद्धाम्-पवित्राम् । गुण्याम्-प्रशस्तगुणयुक्ताम्। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तस्मिन् प्रवेशाय । सिद्धः अन्तो येषां ते सिद्धान्ताः, सिद्धान्तानां कौमुदीव कौमुदी सिद्धान्तकौमुदी, चन्द्रिकावद् वैयाकरणसिद्धान्तानां प्रकाशिकेत्यर्थः। लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी चेति लघुसिद्धान्तकौमुदी,ताम्। नत्वा इति।

हिन्दी - मैं वरदराज, शुद्ध और उत्तमगुणवाली सरस्वती देवी को प्रणाम करके पाणिनि मुनि के बनाए हुए व्याकरण शास्त्र में (व्याकरण जिज्ञासु छात्रां के) प्रवेश के लिए 'लघुसिद्धान्तकौमुदी'' बनाता हूँ।

1.4.2 चतुर्दश माहेश्वर सूत्रों का प्रयोजन

चतुर्दश माहेश्वर सूत्र—

अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्। हयवरट्। लण्। ञमङणनम्। झभञ्। घढधष् । जबगडदश्। खफछठथचटतव् । कपय् शषसर् । हल् ।। इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादि संज्ञा अर्थानि । एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण् मध्ये त्वित्संज्ञक ।। ये महेश्वर की कृपा से प्राप्त सूत्र अण् आदि संज्ञाओं की सिद्धि के लिये हैं। माहेश्वर अर्थात् माहेश्वर की कृपा से प्राप्त ये चौदह सूत्र अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिये है। अइउण् आदि ये जो चौदह सूत्र है यह महेश्वर की कृपा से पाणिनि जी को प्राप्त हुए है, इन चौदह सूत्रों से अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि की जाती है। एषामन्त्या इतः। इन चौदह सूत्रों की अन्तिम वर्ण की इत्संज्ञा होती है। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण मात्र के लिए है। लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः। लण् इस छटें सूत्र के मध्य में जो लकार के बाद अकार है उसकी इत्संज्ञा होती है।

विवरण - अइउण्, ऋलृक आदि जो यह चौदह सूत्र है उन्हे चतुर्दश सूत्र कहते हैं। इन चौदह सूत्रों से प्रत्याहार बनाया जाता है। अतः इन्हे प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं। कहते हैं कि महामुनि पाणिनि विद्यार्थी अवस्था में मन्द बुद्दि के थे। जब उन्हे पढ़ने के बाद भी कुछ ज्ञान नहीं हुआ, तब वे दुखित होकर तथा गुरूकुल छोड़कर तपस्या करने के लिए हिमाचल पर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने शिव जी की तपस्या की। शिव जी ने तपस्या से प्रसन्न होकर चौदह बार डमरू बजाया। उससे पाणिनि ने अइउण आदि चौदह सूत्र प्राप्त किये। इस लिए इन सूत्रों को माहेश्वर अर्थात् महादेव से प्राप्त हुआ कहते है। इस लिए इन्हे माहेश्वर सूत्र कहते है। जिस प्रकार बालकों को सबसे पहले हिन्दी ज्ञान के लिये क, ख आदि वर्ण की आवश्यकता है। छात्रों को चाहिये की इन माहेश्वर सूत्रों को अच्छी तरह से रट लें। ताकि प्रत्याहार बनाने में सरलता हो जाय। क्योंकि जब तक प्रत्याहार नहीं बन सकता तब तक आगे सन्धि प्रकरण का ज्ञान नहीं होगा। इन चौदह सूत्रों का प्रयोजन क्या है? मूल में कहा गया है कि इन चौदह सूत्रों का प्रयोजन अण् अच् आदि प्रत्याहारों कि सिद्दि है। इन चौदह सूत्रों से अण् आदि प्रत्याहार बनाये जाते हैं। प्रत्याहार बनाने कि प्रक्रिया आगे बतायेंगे। प्रत्याहारों से अनेक सूत्रों द्वारा प्रयोगों की सिद्दि की जायेगी।

एषामन्त्या इतः- इन चौदह सूत्रों के अन्त के वर्ण - ण् क् ङ्, च्,ट् ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, एवं ल् – ये चौदह इत्संज्ञा वाले हैं।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः - हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण के लिये है।

लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः- लण् सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है।

ये चौदह सूत्र पाणिनि को महेश्वर (शिव) से प्राप्त हुए। अतः इनका नाम माहेश्वर सूत्र है। महेश्वरदागतानि प्रोक्तानि' इस विग्रह के अनुसार महेश्वर (शिव) से प्राप्त होने के कारण ये माहेश्वर सूत्र या शिव सूत्र हैं। इसी बात को नन्दिकेश्वर काशिका में निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंच वारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥1॥

अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन ,सनत्कुमार, पाणिनि आदि सिद्धजनो को, उद्धार करने की कामना वाले नटराज (महेश्वर) ने विचार-विमर्श कर कल्याणरूप सूत्र समूह की अभिव्यक्ति के लिए नृत्य के अन्त में डमरू बजाने के माध्यम से, उपदेश किया। पाणिनिशिक्षा में भी कहा गया है—

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥56॥

अर्थात् जिसने महेश्वर से अक्षर समाम्नाय प्राप्त कर सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया, उस पाणिनि को नमस्कार है। अइउण् आदि चौदह सूत्रों का समाम्नाय कहते हैं। अक्षर समाम्नाय को वर्णसमाम्नाय के नाम से भी जाना जाता है। महेश्वर से प्राप्त उपर्युक्त चौदह सूत्रों के आधार पर ही पाणिनि ने 3978 सूत्रों का निर्माण किया एवं इन्ही के माध्यम से सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र को सुव्यवस्थित रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

वर्णों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि पाणिनि से पहले वर्णमाला विद्यमान थी। पाणिनि ने परम्परा से प्राप्त वर्णमाला का यथावत् प्रयोग न कर उसे अन्य प्रकार से प्रस्तुत किया क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य था प्रत्याहार की सिद्धि। प्रत्याहार की सिद्धि के लिये वर्णमाला में दो

परिवर्तन आवश्यक थे। पहला अनुबन्धों को जोड़ना तथा दूसरा वर्णों के प्रचलित क्रम में परिवर्तन लाना। अनुबन्ध इत्संज्ञा या इत्संज्ञा योग्य वर्णों को कहते हैं। इत्संज्ञा वाला वह व्यंजन वर्ण है जो प्रत्येक माहेश्वर सूत्र के अन्त में उपस्थित होता है। उपस्थित होते हुए भी उसकी अन्य वर्णो के साथ गणना नहीं होती, किन्तु अन्य वर्णो की गणना के लिये उसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है।

यथा -'अइउण् इस माहेश्वर सूत्र में 'ण्' अनुबन्ध है। यहॉ अ इ तथा उ वर्णों की गिनती में ण् का स्थान नहीं है किन्तु इन वर्णो की गिनती के लिए 'ण्' का सूत्र के अन्त में रहना आवश्यक है।

दूसरी बात है कि पाणिनि ने पहले से विद्यमान वर्णमाला में वर्णों के क्रम को परिवर्तित कर उसे प्रस्तुत किया है। यथा ऐऔच्' के बाद 'हयवरट्' में य, व, र इत्यादि के द्वारा व्यंजनों की गणना शुरू की है। क,ख,ग इत्यादि से नहीं, जबकि परम्परा में क,ख,ग इत्यादि से व्यंजनों की गणना शुरू होती है। इसका मुख्य प्रयोजन है , जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रत्याहारों की सिद्धि। प्रत्याहारों की सिद्धि से ही व्याकरण की रचना एवं पाठकों को उसका ज्ञान सम्भव है।

उपर्युक्त दोनों बातों के आधार पर ही वर्णो का उपदेश सम्भव था। अतः पाणिनि ने परम्परा से प्राप्त वर्णमाला के रहते हुए भी पृथक् रूप से माहेश्वर सूत्र अण् आदि प्रत्याहार की सिद्धि के लिये है। प्रत्येक सूत्र के अन्त में अनुबन्ध या इत् संज्ञक वर्ण है। क्योंकि सूत्रों की संख्या चौदह है, अतः अनुबन्धों की संख्या भी चौदह ही है। चौदह माहेश्वर सूत्रों में चौदह अनुबन्ध क्रमशः इस प्रकार हैं -ण् क् ङ्, च्,ट् ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, एवं ल्। जैसा कि पहले संकेत किया गया है अनुबन्ध इत्संज्ञक होते है। व्याकरण की दृष्टि से उपदेश की स्थिति में जो अन्तिम हल् (व्यंजन) होता है इसकी इत् संज्ञा होती है।

'हलन्त्यम्' 1/3/3 उपदेशऽन्त्यं हलित्स्यात्। यथा- 'अ इ उ ण्- यह उपदेश है। इसमें आनेवाले अन्तिम वर्ण 'ण्' की इत्संज्ञा होती है। इसी प्रकार अन्य इत्संज्ञक वर्णों को भी जानना चाहिए।'उपदेश' शब्द का स्पष्टीकरण आवश्यक है। व्याकरण की परम्परा में पाणिनि, कत्यायन एवं पतञ्जलि- इन तीन मनीषियों के मुख से उच्चरित वर्ण समूह उपदेश कहलाता है- 'उपदेश आद्योच्चारणम्'। उपलब्ध उपदेशों को निम्नलिखित पद्य के माध्यम से बताया गया है—

धातु-सूत्र गणोणादि-वाक्य-लिङगनुशासनम्।आगम-प्रत्ययादेशा उपदेशा-प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् धातु, सूत्र गण, उणादि और लिंगानुशासन तथा इनके साथ आगम, प्रत्यय और आदेश ये सभी उपदेश कहलाते हैं। इन सभी का उच्चरण अर्थात् व्यावस्थापन पाणिनि ने किया। धातुपाठ, सूत्रपाठ (अष्टायायी), गणपाठ, उणादि पाठ और लिंगानुशासन ये पॉच मिलकर व्याकरण कहे जाते हैं। ये सभी पाणिनि के द्वारा रचित है। आगम, प्रत्यय तथा आदेश का परिचय बाद में दिया जाएगा।

सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र- सूत्रों में जो पद न दिखायी दे उसे दूसरे सूत्रों से ले आना चाहिये, सभी सूत्रों में।

प्रस्तुत प्रसंग में 'अ इ उ ण् ' आदि चौदह सूत्र सर्वप्रथम पाणिनि के द्वारा प्रस्तुत किये गये। अतः इनके अन्त में आनेवाले वर्ण अनुबन्ध कहलाते हैं। हम पहले पढ़ आये हैं कि माहेश्वर सूत्रों के अन्त में आने वाले वर्णों की गिनती नहीं होती है। यह केवल प्रत्याहार की सिद्धि के लिये है। व्याकरण की शब्दावली में उसे लोप संज्ञा कहा जाता है। जैसे-'अ इ उ ण्' के अन्त में आनेवाला

अनुबन्ध 'ण्' की गिनती नहीं होती है। यह उपस्थित है किन्तु नहीं के बराबर है। दूसरे शब्दों में जिसका श्रवण प्राप्त है, फिर भी यदि उसका श्रवण नहीं होता तो उसे लोप संज्ञा कहते हैं -

अदर्शनं लोपः 1/1/6 प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् । प्रसक्त अर्थात् विद्यमान का अदर्शन होना लोप कहलाता है।

सूत्र - तस्य लोपः 1/1/9 तस्येतो लोपः स्यात् । यहाँ 'ण्' की लोप संज्ञा हैं। सार रूप में यह समझें कि सूत्र के अन्त में आने वाला हल् वर्ण अनुबन्ध एवं इत्संज्ञक है और इत्संज्ञक वर्ण का लोप होता है अर्थात् उपस्थित होने पर भी अन्य वर्णो के साथ उसकी गणना नहीं होती हैं। 'सूत्र' शब्द की व्याख्या बाद में की जाएगी।

हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः - हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण के लिये है।

माहेश्वर सूत्र के विषय में यह भी जान लेना आवश्यक है कि पॉचवे सूत्र 'हयवरट्' के 'ह' से लेकर आगे के सभी वर्णो में 'अ' भी जुड़ा हुआ है। उसका प्रयोजन केवल इतना है कि 'ह्' आदि व्यंजनों का उच्चारण हो सके। क्योंकि व्यंजनों का उच्चारण बिना स्वर की सहायता के नहीं हो सकता। पतंजलि अपने भाष्य में इसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं-'**न पुनरन्तरेणाचं व्यन्जनस्योच्चारणमपि सम्भवति' इति ।** अतः 'ह' आदि के उच्चारण के लिये स्वर का संयोग आवश्यक था। स्वरों में प्रथम होने के कारण 'अ' को ही सभी व्यंजनों के साथ जोड़ दिया गया है। इस प्रकार 'हयवरट्' से लेकर 'हल्' तक सभी सूत्रों में आने वाले व्यंजनों से संयुक्त स्वर 'अ' केवल उन-उन वर्णों के उच्चारण के लिये है। उसकी कोई अन्य उपयोगिता वहॉ नहीं है।

लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः- लण् सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार इत्संज्ञक है।

यहॉ एक अपवाद भी है। छठे सूत्र 'लण्' में 'ल् अ एवं ण्' ये तीन वर्ण हैं। 'ण्' इत्संज्ञक है। अतः उसकी गिनती नहीं होती है। अब शेष है 'ल्' के साथ संयुक्त 'अ'। यहॉ यह ध्यातव्य है कि 'ल' के साथ संयुक्त 'अ' केवल 'ल्' के उच्चारण के लिये ही नही है, अपितु उसका एक अन्य प्रयोजन भी है। वह है स्वयं इत्संज्ञक बनकर 'र' प्रत्याहार को सिद्धि करना। 'र' प्रत्याहार की सिद्धि एवं प्रयोजन के विषय में आगे बताया जाएगा। किन्तु ज्ञातव्य यह है कि 'लण्' में आनेवाला 'अ' केवल 'ल्' के उच्चारण के लिये ही नहीं, अपितु विशेष प्रयोजन से भी उपस्थित है। इसके आगे हम प्रत्याहार बनाने की विधि सीखेंगे।

1.4.3 प्रत्याहार निर्माण विधि

व्याकरण ज्ञान के लिये प्रत्याहार का ज्ञान अत्यावश्यक है। पाणिनि ने प्रत्याहार के माध्यम से सम्पूर्ण व्याकरण का ज्ञान सरलता पूर्वक प्रस्तुत कर दिया है। जैसा कि आप पहले पढ़ आये हैं कि इत्संज्ञा का फल उसका लोप होता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह निरर्थक है। यह पूर्णतः सार्थक है, क्योंकि इसके द्वारा प्रत्याहार की सिद्धि होती है। ' प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा : यत्र स प्रत्याहारः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें संक्षेप किया जाय उसे प्रत्याहार कहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्याहार के माध्यम से हम बहुत सारे वर्णों को संक्षेप रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं। यह एक ऐसी विधि है जो भाषा की दृष्टि से पूरी दुनियॉ में अनोखी है एवं आधुनिक भाषा चिन्तन को संस्कृत की देन है। प्रत्याहार बनाने की विधि के माध्यम से उसकी उपयोगिता को हम ठीक प्रकार से समझ सकते हैं। पाणिनि ने इसके लिये जिस सूत्र का विधान किया है वह इस प्रकार है-

सूत्र - आदिरन्त्येन सहेता 1/1/71 इस सूत्र का अर्थ वृत्ति के साथ इस प्रकार है- अन्त्येने ता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथा 'अण्' इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा । एवम् अच् अल्, हलित्यादयः। अर्थात् अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण से युक्त आदि वर्ण, बीच के वर्णों की और अपनी भी संज्ञा का बोधक होता है। जैसे 'अण्' - यह 'अ इ उ' इन वर्णों की संज्ञा का बोधक है। इसी प्रकार अच्, अल्, हल् इत्यादि संज्ञायें भी समझनी चाहिए। उपर्युक्त सूत्र 'आदिरन्त्येन सहेता' प्रत्याहार विधायक है। इसे हम उदाहरण के माध्यम से ठीक प्रकार से समझ सकते हैं। यथा- 'अण्' प्रत्याहार। 'अण्' इसलिए प्रत्याहार है क्योंकि इसमें हम अनेक वर्णों को संक्षेप रूप से प्रस्तुत कर देते हैं। सूत्र के अर्थ के अनुसार 'अण्' प्रत्याहार की सिद्धि के लिए आवश्यकता है, किन्तु 'अण्' प्रत्याहार में आने वाले वर्णों के साथ इसकी गिनती सम्भव नहीं है। इस प्रत्याहार की दृष्टि से हमने 'अ इ उ ण्' इस माहेश्वर सूत्र के प्रथम वर्ण 'अ' को लिया तथा अन्तिम वर्ण 'ण' को लेकर 'अण' बना दिया। सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'ण्' के साथ आदि वर्ण 'अ' मध्य में आने वाले वर्ण 'इ उ' तथा अपनी अर्थात् स्वयं 'अ' की भी संज्ञा का बोधक है।

इसे एक बार फिर समझें। 'अण्' प्रत्याहार में अन्त्य इत् 'ण' के सहित आदि वर्ण हुआ 'अ'- इन दो अर्थात् 'अ' और 'ण्' के बीच में दो वर्ण 'इ, उ' आते हैं। इन दो अर्थात् 'इ, उ' और अपनी भी अर्थात् स्वयं 'अ' की भी संज्ञा 'अण्' हुई। तात्पर्य यह है कि 'अण्' से 'अ इ उ' इन तीन वर्णों का बोध होता है। यहॉ 'ण्' 'अण्' प्रत्याहार बनाने के लिये है, उसकी गणना 'अ इ उ' के साथ नहीं हुई। इसीलिए 'ण्' की लोप संज्ञा हुई अर्थात् उसकी उपस्थिति है, फिर भी वह नहीं है। यही लोप का फल है।

हम इसको दूसरे उदाहरण 'अच्' प्रत्याहार से भी जान सकते हैं। 'अच्' प्रत्याहार में प्रथम सूत्र 'अ इ उ ण्' का 'अ' एवं चतुर्थ सूत्र 'ऐ औ च्' का 'च्' है। आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'च' के सहित आदि वर्ण 'अ' बीच के आठ वर्ण 'इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ' के अनुसार अन्तिम वर्ण 'च्' के साथ अपना अर्थात् 'अ' का बोध कराता है। इस प्रकार 'अच्' प्रत्याहार में कुल नौ (9) वर्णों की 'अच्' संज्ञा हुई। यहॉ ध्यान रहे कि अन्तिम वर्ण 'च' अच् प्रत्याहार की सिद्धि के लिये आवश्यक हैं किन्तु अन्य वर्णों के साथ उसकी गिनती नही होती। अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी स्वरों का बोध हो जाता है ।

हम इसको तीसरे उदाहरण 'हल्' प्रत्याहार से भी जान सकते हैं। यहॉ हम पॉचवें माहेश्वर सूत्र 'हयवरट्' से 'ह' लेते हैं तथा चौदहवें माहेश्वर सूत्र 'हल्' से 'ल्' लेकर 'हल्' प्रत्याहार बनाते हैं। 'आदिरन्त्येन सहेता' सूत्र के अनुसार अन्तिम वर्ण 'ल्' के सहित आदि वर्ण 'ह' बीच के 33 वर्णो 'ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प ष स ह' के साथ अपना अर्थात् 'ह' का बोध कराता है। इस प्रकार 'हल्' प्रत्याहार में 34 ('ह' का प्रयोग दोबार है।) वर्ण होते हैं। यहॉ यह ध्यातव्य है कि 'हयवरट्' से लेकर 'हल्' तक के सूत्रों में आये अन्तिम वर्णो (अनुबन्ध या इत्संज्ञक वर्ण) को छोड़ कर ही अन्य वर्णों की संख्या निर्धारित करेंगे। यहॉ इत्संज्ञक वर्ण हैं- 'हयवरट्' में 'ट्' लण् में 'ण्' 'ञमङणनम्' में 'म्' 'झभञ्' में 'ञ्', 'घढ़धष्' में 'ष्', 'जबगडदश्' में 'श्' 'खफछठथचटतव्' में 'व्' 'कपय्' में 'य्' 'शषसर्' में 'र्' एवं 'हल्'। इस प्रकार कुल इत्संज्ञक जिनकी गिनती नहीं की जानी है, की संख्या है दस (ट् ण् म् ञ् ष् श् व् र् एवं ल्)। यहॉ 'प्रत्याहार' शब्द का अर्थ 'संक्षेपीकरण' चरितार्थ होता है। हम 'हल्' प्रत्याहार के

उच्चारण मात्र से उसके द्वारा तैंतीस वर्णों को जान लेते हैं। यदि प्रत्याहार विधि नहीं विकसित की जाती तो हमें तैंतीस वर्णों का अलग-अलग उच्चारण करना पड़ता। व्यञ्जन के सभी वर्ण 'हल्' प्रत्याहार के अन्दर समाविष्ट हैं।

इसी प्रकार 'अल्' प्रत्याहार भी बनाया जा सकता है। 'अल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत स्वर एवं व्यंजन सभी वर्ण समाहित हो जाते हैं। 'अल्' प्रत्याहार को इस प्रकार बनाया जा सकता है। इसमें प्रथम सूत्र से 'अ' तथा अन्तिम सूत्र से 'ल्' लेकर 'अल्' प्रत्याहार बनाते हैं। प्रत्येक सूत्र के अन्तिम वर्ण को छोड़ते हुए अन्य सभी वर्णों की गिनती करने पर इसके अन्तर्गत स्वर एवं व्यंजन दोनों प्रकार के वर्णों का बोध हो जाता है।

उपर्युक्त उदाहरणों को देखने एवं समझने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि पाठक गण प्रत्याहार बनाना अवश्य सीख गये होंगे। चौदह सूत्रों के आधार पर बयालीस प्रत्याहार बनते हैं जिनका उपयोग पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र में किया है। इन प्रत्याहारों को वर्ण गणना के साथ निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

प्रत्याहारों का निरूपण और उदाहरण

1. अण् - अ इ उ।
2. अक् - अ इ उ ऋ लृ।
3. अच् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।
4. अट् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य वर।
5. अण् - अ इउ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
6. अम् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।
7. अश् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।
8. अल् - अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
9. इक् - इ उ ऋ लृ।
10. अच् - इ उ ऋ जृ ए ओ ए औ।
11. इण् - इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
12. उक् - उ ऋ लृ।
13. एङ् - ए ओ।
14. एच् - ए ओ ऐ औ।
15. ऐच् - ऐ औ।
16. हश् - ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
17. हल् - हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
18. यण् - य व र ल।
19. यम् - य व र ल ञ म ङ ण न।
20-यञ् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।
21. यय् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
22. यर् - य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग उ द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

23. वश् - व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
24. वल् - व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
25. रल् - र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
26. मय् - म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
27. ङम् - ङ ण न।
28. झष् - झ भ घ ढ ध।
29. झश् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
30. झय् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
31. झर् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
32. झल् - झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
33. भष् - भ घ ढ ध।
34. जश् - ज ब ग ड द।
35. बश् - ब ग ड द।
36. खय् - ख फ छ ठ थ च ट त क प।
37. खर् - ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
38. छव् - छ ठ थ च ट त।
39. चय् - च ट त क प।
40. चर् - च ट त क प श ष स।
41. शर् - श ष स।
42. शल् - श ष स ह।

1.4.4 वर्णमाला उच्चारण स्थान एवं स्वरूप

अभी तक आपने माहेश्वर सूत्र के माध्यम से वर्णों एवं प्रत्याहारों का ज्ञान प्राप्त किया है। माहेश्वर सूत्र में अनुबन्धों या इत्संज्ञकों को छोड़कर कुल बयालीस वर्णों की गणना हुई है। इनमें नौ स्वर हैं तथा तैतीस व्यंजन हैं। नौ स्वरों में प्रथम पॉच (अ इ उ ऋ लृ) वे हैं जिनकी चर्चा अपेक्षित है, क्योंकि अन्य चार (ए ओ ऐ औ) केवल दीर्घ एवं प्लुत हैं। प्रथम पॉच स्वरों में 'लृ' को छोड़कर शेष चार 'अ, इ, उ, ऋ की ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत संज्ञा होती है। यथा-'अ' जब एक मात्रा वाला होता है तो ह्रस्व कहलाता है, द्वि मात्रा से युक्त होने पर दीर्घ (आ) कहलाता है तथा तीन मात्रा से युक्त हो जाने पर प्लुत (अ३) कहलाने लगता है। व्यंजन की आधी मात्रा होती है-

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रिकम्॥

इस प्रकार ह्रस्व रूप से 'अ', दीर्घ रूप से 'आ' तथा प्लुत रूप से 'आ३' -ये 'अ' के तीन भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार 'इ, उ एवं ऋ' के भी तीन-तीन भेद होते हैं। संस्कृत भाषा में 'लृ' स्वर का दीर्घ नहीं होता। अतः 'लृ' के दो भेद ही सम्भव हैं- ह्रस्व एवं प्लुत। पाणिनि ने इस बात को निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से कहा हैं-

सूत्र - 'ऊकालो झ्रस्व दीर्घ प्लुतः' 1/2/27

उश्च ऊश्च उ३श्च वः । वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्।

अर्थात् एकमात्र, द्विमात्र और त्रिमात्र इन तीनों ऊकारों के उच्चारण काल के समान उच्चारण काल है जिसका वह स्वर क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञावाला है। दूसरे शब्दों में एक मात्रा वाले स्वर की ह्रस्व, दो मात्रा वाले स्वर की दीर्घ तीन मात्रा वाले स्वर की प्लुत संज्ञा होती है। यहॉ सूत्र में केवल ' उ ' को लेकर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के स्वरूप् को प्रस्तुत किया गया है। आप सभी इसी के आधार पर अन्य स्वरों के भेद को समझने का प्रयास करें।

सूत्र - उच्चैरुदात्त:1- 1- 29 ।। तालु आदि के सखण्ड स्थानों के उपरि भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको उदात्त कहते हैं।

सूत्र - नीच्चैरनुदात्त: 1- 1- 30 ।। कण्ठ तालु आदि के सखण्ड स्थानों के नीच के भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको अनुदात्त कहते हैं।

सूत्र - समाहार: स्वरित: 1- 1- 30 ।। कण्ठ तालु आदि के स्थानों के मध्य भाग से जिस अच् की उत्पत्ति होती है उसको स्वरित कहते हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष है कि ' अ, इ, उ तथा ऋ '- ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत होते हैं ; ' लृ ' केवल ह्रस्व और प्लुत होता है तथा 'ए , ओ, ऐ एवं औ केवल दीर्घ और प्लुत होते हैं।

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकानुनसिकत्वाभ्यां द्विधा। जो ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत वह अनुनासिक अननुनासिक भेद से दो दो प्रकार के होते हैं इससे पहले हमने स्वर के भेदों को समझा है।

अब अनुनासिक वर्ण कौन हैं सूत्र के माध्यम से जानेगें -

सूत्र - मुखनासिकावचनोऽनुनासिक:1-1- 8 ।।

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। जिस वर्ण का उच्चारण नासिका से होता है उसे अनुनासिक कहते हैं।

तदित्थम्- अ, इ, उ, ऋ, एषां वर्णानां प्रत्येकम् अष्टादश भेदाः। इस प्रकार से अ, इ, उ, ऋ, इन चार वर्णो के अठारह अठारह भेद अर्थात् नव प्रकार के जो स्वर वर्ण है। उनमें से इन चार वर्णो का अठारह अठारह भेद होता है। अब पॉचवॉ वर्ण लृ का कितने भेद होते है। वह बताते है। लृ वर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् लृ वर्ण के बारह भेद होते है। अब नव स्वरो में से पा प्च वर्णो का भेद निश्चित हो गया है। अब चार और बच गये है। उनका वर्णन किया जा रहा है- एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात्। एच् प्रत्याहार के ए,ओ,ऐ,औ ये चार जो वर्ण है। उनका इन चारो वर्णो के बारह भेद होते है। क्योंकि इसमें ह्रस्व का आभाव होता है। अर्थात् ह्रस्व न होनें से छः भेद कम हो जाते है। इस लिये इन चारों प्रत्येक वर्णो के बारह बारह भेद माने जाते है। इस विषय को तालिका के माध्यम् से देख सकते हैं-

ह्रस्व- अ, इ, उ, ऋ, लृ,

1. ह्रस्व उदात्त अनुनासिक
2. ह्रस्व उदात्त अननुनासिक
3. ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक
4. ह्रस्व अनुदात्त अननुनासिक
5. ह्रस्व स्वरित अनुनासिक

6. ह्रस्व स्वरित अननुनासिक

दीर्घ

आ, ई, ऊ, ॠ, एओ, ऐ, औ

7. दीर्घ उदात्त अनुनासिक
8. दीर्घ उदात्त अननुनासिक
9. दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक
10. दीर्घ अनुदात्त अननुनासिक
11. दीर्घ स्वरित अनुनासिक
12. दीर्घ स्वरित अननुनासिक

प्लुत

आ 3 इ 3 ऊ 3 ॠ 3

ॡ 3 ए 3 ओ 3 ऐ 3 औ 3

13 . प्लुत उदात्त अनुनासिक
14 . प्लुत उदात्त अननुनासिक
15 .प्लुत अनुदात्त अनुनासिक
16 .प्लुत अनुदात्त अननुनासिक
17 . प्लुत स्वरित अनुनासिक
18 . प्लुत स्वरित अननुनासिक

सूत्र - तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णं 1-1- 9 ।। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथ: सवर्णसंज्ञं स्यात् ।

तालु आदि स्थान आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण के समान हों उसकी आपस में सवर्ण संज्ञा होती है **ऋलृवर्णयोर्मिथ: सावर्ण्यं वाच्यम्** । ऋ और लृ वर्ण की आपस में सवर्ण संज्ञा होती है इसका प्रयोजन आगे बताया गया है- इसका मुख्य प्रयोजन है वर्णों के उच्चारण स्थानों एवं प्रयत्नों के अध्ययन के समय इसका समुचित प्रयोग । यथा-जब हम 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न की चर्चा करते हैं तो इस ह्रस्व 'अ' के साथ इसके दीर्घ रूप "आ" तथा प्लुत रूप 'आ३' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न का भी बोध हो जाता है । यदि 'अ' का उच्चारण स्थान कण्ठ है तो दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' का उच्चारण स्थान भी कण्ठ ही होगा । इसी प्रकार अन्य स्वरों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के विषय में समझना चाहिये । उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न संस्कृत व्याकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है । हम जिस भी वर्ण का उच्चारण करते हैं उसका कोई निश्चित स्थान होता है एवं वह किसी निश्चित प्रयत्न से ही हमारे मुख से बाहर आता है ।

उच्चारण स्थान—

उच्चारण स्थान ग्यारह हैं -1. कण्ठ, 2. तालु 3. मूर्धा 4. दन्त, 5. ओष्ठ, 6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका, 7.कण्ठ एवं तालु, 8. कण्ठ एवं ओष्ठ, 9. दन्त एवं ओष्ठ 10. जिह्वामूल और 11. नासिका । इनमें कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त ओष्ठ, जिह्वामूल एवं नासिका स्वतन्त्र रूप से वर्णो के उच्चारण स्थान हैं, परन्तु मुखनासिका,कण्ठ तालु कण्ठ ओष्ठ एवं दन्त ओष्ठ मिश्रित रूप से ही वर्णों के उच्चारण में अपना योगदान देते हैं । अब हम अधोलिखित पंक्तियों के माध्यम से उच्चारण स्थान एवं उनसे उच्चरित होने वाले वर्णों को जानेंगे-

1. **कण्ठ -** अकार (दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' के साथ), कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) हकार और विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है। **'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः'** यहाँ ध्यातव्य है कि 'कु' से कवर्ग, 'चु' से चवर्ग, 'टु' से टवर्ग 'तु'तवर्ग एवं 'पु' से पवर्ग का बोध होता है।

2. तालु-इकार (दीर्घ 'ई' एवं प्लुत 'ई३' के साथ), चवर्ग (च, छ, ज, झ ञ), य और श का उच्चारण स्थान तालु है। **'इचुयशानां तालु'।**

3. मूर्धा - ऋ (दीर्घ 'ॠ' एंव प्लुत 'ऋ३' के साथ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ,ण), (रेफ) और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा हैं। **'ऋटुरषाणां मूर्धा'।**

4. दन्त - लृ (प्लुत 'लृ३' के साथ), तवर्ग (त, थ, द, ध, न), ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है। जैसा कि हमने पहले जाना है कि लृ का दीर्घ नहीं होता, केवल ह्रस्व और प्लुत होता है। **'लृतुलसानां दन्ताः'।**

5. ओष्ठ - उ (दीर्घ 'ऊ' एव के साथ), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म), और उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। प, फ से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। यथा- दन प दन फ'।

6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका - ञ, म, ङ, ण और न का उच्चाकरण स्थान नासिका भी है। तात्पर्य यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान तालु हैं। किन्तु इसके साथ ही 'ञ' का उच्चारण स्थान नासिक भी है। निष्कर्ष यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ एवं नासिका, 'ङ' का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं नासिका, 'ण' उच्चारण स्थान मूर्धा एवं नासिक तथा न का उच्चारण स्थान दन्त एवं नासिका समझना चाहिये। **'ञमङणनानां नासिका च'।**

7. कण्ठ एवं तालु - ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं तालु है। **'एदैतोः कण्ठतालु'।**

8. कण्ठ एवं ओष्ठ-ओ औ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं ओष्ठ है। **'ओदौतोः कण्ठोष्ठम्'।**

9. व का उच्चारण स्थान दन्त एवं ओष्ठ है। **'वकारस्य दन्तोष्ठम्'।**

10. **जिह्वामूल**-जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। 'दन क दन ख' इस प्रकार 'क' 'ख' से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। जिह्वामूल का अर्थ है जिह्वा का उद्गम स्थान अर्थात् जहाँ से जिह्वा आरम्भ होती है। **'जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्'।**

11. **नासिका**-अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है। **'नासिकानुस्वारस्य'।** यहाँ तक हमने वर्णों के उच्चारण स्थान के विषय में जाना। आगे हम वर्णों के उच्चारण में लगने वाले प्रयत्न के विषय में जानेंगे।

1.4.5 प्रयत्न विधान

वर्णों के उच्चारण में जो चेष्टा करनी पड़ती है उसे प्रयत्न कहने हैं। **'प्रकृष्टो यत्रः प्रयत्नः'** अर्थात् वर्णों के उच्चारण से पहले सुनियोजित एवं सुविचारित रूप से जो चेष्टा होती है वह प्रयत्न कहलाता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का है **'यत्नो द्विधा'- आभ्यन्तरो बाह्यश्च।** वर्णों के मुख के बाहर आने से पहले मुख के अन्दर जो प्रयत्न होता है उसे आभ्यन्तर कहते हैं। यह प्रयत्न पहले होता है तथा इसके विना बाह्य प्रयत्न निष्फल है। बाह्य प्रयत्न वह है जो वर्णों के मुख से बाहर निकलते समय किया जाता है। उसका अनुभव सुननेवाला भी कर सकता है। प्रयत्नों को निम्नलिखित प्रकार से जान सकते हैं।-

आभ्यन्तर प्रयत्न - यह पॉच प्रकार का होता है।

'आद्यः पंचधा - स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतसंवृतभेदात्' 1. स्पृष्ट, 2. ईषत्स्पृष्ट, 3. ईषद्विवृत, 4. विवृत और 5. संवृत।

1.**स्पृष्ट** - स्पृष्ट प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय जिह्वा के द्वारा **तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्'**। 'क' से लेकर 'म' तक अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के अन्तर्गत आनेवाले पच्चीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। इन पच्चीस वर्णो के उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है वह स्पृष्ट है।

2. ईषत्स्पृष्ट - इसका तात्पर्य है जिह्वा के द्वारा उच्चारण स्थानों के कुछ स्पर्श से। ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थों का होता है-**'ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्'।**'यण्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले वर्ण यथा-य व र ल अन्तःस्थ कहलाते हैं। अन्तःस्थ का अर्थ है बीच में रहनेवाला। य, व, र, ल ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित है इसीलिए अन्तःस्थ कहलाते हैं। माहेश्वर सूत्रों के अन्तर्गत भी पाणिनि ने स्वरों के पश्चात एवं व्यन्जनों से पहले अर्थात् दोनों के बीच में अन्तःस्थों य,व,र,ल को स्थान दिया है। इस प्रकार य, व, र, ल स्वर एवं व्यंजन दोनों हैं, इन अन्तःस्थों का प्रयोग सन्धि प्रकरण में जान पाएंगे।इनके उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है उसे ईषत्स्पृष्ट कहते हैं।

3. ईषद्विवृत - इसका तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय कण्ठ का थोड़ा खुलना। ईषद्विवृत उष्म वर्णो का होता है-**'ईषद्विवृतमुष्मणाम्'।** 'शल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले श, ष, स, ह वर्ण ऊष्म कहलाते हैं-**'शल् उष्माणः।** इनके उच्चारण के लिये लगने वाले प्रयत्न को ईषद्विवृत कहते हैं।

4. विवृत - इस प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय कण्ठ का पूर्ण रूप से खुला रहना विवृत स्वरों अर्थात् अ, इ,उ,ऋ,लृ, ए, ओ, ऐ तथा औ वर्णो का होता है-**' विवृतं स्वराणाम् '।** इन वर्णो के उच्चारण में लगने वाला प्रयत्न ही विवृत कहलाता है।

5.संवृत - जब ह्रस्व 'अकार' का सिद्ध रूप में प्रयोग होता है तब वहॉ संवृत प्रयत्न होता हैं, किन्तु प्रक्रिया की अवस्था में उसमें विवृत प्रयत्न होता है-'प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव'। यथा - 'दण्ड आढकम्' यहॉ 'दण्ड' में 'ड्' के साथ आने वाला 'अ' का संवृत प्रयत्न है तथा 'आढकम्' का आदि वर्ण 'आ' का विवृत। लेकिन यहॉ समस्या यह है कि संवृत 'अ' तथा 'आ' की सवर्ण संज्ञा नहीं होने से अर्थात् दोनो के प्रयत्न समान नही होने से 'अकः सवर्णे दीर्घः; सूत्र से दीर्घ नही हो सकता, क्योंकि सवर्ण स्वर परे रहने पर ही दीर्घ संभव है। इसीलिये संधि काल में 'अ' अपने सिद्ध स्वरूप को त्यागकर साधन अवस्था में आ जाता है। साधन अवस्था ही प्रक्रिया की अवस्था है। इस प्रकार प्रक्रिया अवस्था में आने से दोनों में सवर्ण संज्ञा होती है जिसके कारण 'दण्डआढकम् में 'दण्डआढकम्' में 'दण्ड' का 'ड' के साथ रहने वाले 'अ' एवं 'आढकम् के आदि वर्ण 'आ' का दीर्घ होकर 'दण्डाढकम्' यह रूप सिद्ध होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्नाः

बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1.हलन्त्यम् सूत्र से होती है-

(अ) इत्संज्ञा (ब) टि संज्ञा (स) पदसंज्ञा (द) लोपसंज्ञा

2. प्रत्याहार होते हैं -

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) बयालीस

3. प्रयत्न होते हैं

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) दो

4. आभ्यन्तर प्रयत्न होता है

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द)पाच

5. बाह्य प्रयत्न होते हैं-

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) ग्यारह

प्रश्न

1. अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने वाले वर्णों को बतायें।
2. माहेश्वर सूत्र के अन्तर्गत व्यंजन वर्णों की संख्या बताये।
3. त्रिमुनि से आप क्या समझते हैं?
4. इत्संज्ञा से क्या तात्पर्य है?
5. प्रत्याहार विधायक सूत्र का नाम लिखें।
6. निम्नलिखित रिक्तस्थानों की पूर्ति करें-

क. ह का उच्चारण स्थान..................है।

ख. तालु.....................वर्णो का उच्चारण स्थान है।

ग. अनुस्वार का उच्चारण स्थान...............है।

घ. पवर्ग के अन्तर्गत ....वर्ण आते हैं।

ड़. प्रयत्न के भेद........... हैं।

7. निम्नलिखित विकल्पों में से सही उत्तर चुने-

1. 'ष' का उच्चारण स्थान है-

(क) दन्त (ख) मूर्धा

(ग) तालु (घ) ओष्ठ

2. सवर्ण संज्ञा के लिये आवश्यक है-

(क) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न

(ख) प्रत्याहार एवं उपदेश

(ग) बाह्यप्रयत्न एवं उच्चारण स्थान

(घ) संयोग एवं उदात्त

8. सुबन्त और तिङन्त की कौन संज्ञा होती है।
9. एक मात्रा वाले वर्ण किस नाम से जाने जाते है।
10. ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत में से लृ का कौन सा भेद प्राप्त नहीं होता?

11. सत्य / असत्य बताइये-

(क) ए का उच्चारण स्थान कण्ठ तालु/कण्ठ ओष्ठ है।

(ख) माहेश्वर सूत्रों की संख्या चौदह/पन्द्रह है।

(ग) स्वर सन्धि में संहिता / संयोग संज्ञा की आवश्यकता होती है।

आभ्यन्तर प्रयत्न तालिका

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म - **क से लेकर म तक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है।** य व र ल **इन वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है।** श ष स ह

इन वर्णों का ईषद्विवृत, प्रयत्न होता है । अ इ उ ऋ लृ ऐ ओ ऐ औ **इन वर्णों का विवृत, प्रयत्न होता है ।**

वाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा – विवार: संवार: श्वासो नादो घोषो अघोषो अल्पप्राणो महाप्राणो उदात्तोऽनुदात्त: स्वरितश्चेति ।

वाह्य प्रयत्न- वाह्य प्रयत्न के ग्यारह भेद होते हैं - 1. विवार 2.संवार 3. श्वास 4.नाद 5.घोष 6. अघोष, 7. अल्पप्राण, 8. महाप्राण, 9.उदात्त, 10 अनुदात और 11. स्वरित।

खरो विवार: श्वासा अघोषाश्च – (खर् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह) प्रत्याहार में आने वाले वर्णो का विवार श्वास अघोष प्रयत्नहोता है।

हश: संवारा: नादा घोषाश्च – हश् (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णो का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

हश् (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

अच् प्रत्याहार (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) के वर्णों का .उदात्त, अनुदात और स्वरित प्रयत्न होता है। **वर्गाणां प्रथम- तृतीय पंचमा यणश्चाल्पप्राणा:** वर्गों के प्रथम - तृतीय पंचम (यथा कवर्ग में प्रथम वर्ण क, तृतीय वर्ण ग, पंचम वर्ण ङ, यण्- य व र ल) वर्णों तथा यण् प्रत्याहार के वर्णों का अल्पप्राण होता है।

वर्गाणां द्वितीय- चतुर्थौ शलश्च महाप्राणा: वर्गों के द्वितीय- चतुर्थ (यथा कवर्ग में द्वितीय वर्ण ख, चतुर्थ वर्ण घ, शल्- श ष स ह) वर्णों तथा शल् प्रत्याहार के वर्णो का महाप्राण होता है।

1. **विवार** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख खुलता है उन वर्णों प्रयत्न होता है।

2. **संवार** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख संकुचित रहता है उन वर्णों का संवार प्रयत्न होता है।

3. **श्वास** - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को बिना झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है, उन वर्णों के लिए यह श्वास प्रयत्न होता है।

4. **नाद** - जिन वर्णो के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है उन वर्णो के लिए यह नाद प्रयत्न होता है।

5. **घोष**:- जिन वर्णों के उच्चारण में गूॅज होती है वह घोष -प्रयत्न होता है।

6. **अघोष** - जिन वर्णों के उच्चारण में गूज नहीं होती है वह अघोष प्रयत्न होता है।

7. **अल्पप्राण**-वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अल्प प्रयोग अल्पप्राण प्रयत्न है।

8.**महाप्राण**- वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अधिक उपयोग महाप्राण प्रयत्न कहलाता है।

9. **उदात्त** - तालु आदि स्थानों के ऊपरी भाग से उच्चारण किया जाना उदात्त प्रयत्न कहलाता है

10**.** **अनुदात्त** - तालु अदि स्थानों के निम्न भाग से उच्चारण किया जाना अनुदात्त प्रयत्न कहलाता है।

11. **स्वरित**- तालु आदि स्थानों के मध्य भाग से उच्चारण किया जाना स्वरित प्रयत्न कहलाता है। यहॉ यह जानना आवश्यक है कि मुख के भीतर कण्ठ, तालु आदि स्थान हैं। उन पर जब भीतर से प्रेरित वायु का आघात होता है तब वर्णों की उत्पत्ति होती है। उन सभी स्थानों के तीन

भाग है - ऊपर, नीचे तथा मध्य । इसी दृष्टि से उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित प्रयत्नों को जानना चाहिये।

अनुस्वार और विसर्गः ये दो हमेशा स्वर के ही आगे आते हैं, व्यंजनों के नहीं - **अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ ।** उपरिवर्णित उच्चारण स्थानों एवं आभ्यन्तर प्रयत्नों का मुख्य प्रयोजन सवर्ण संज्ञा की सिद्धि है। बाह्य प्रयत्नों का सवर्ण संज्ञा में कोई उपयोग नहीं है। सवर्ण संज्ञा किस प्रकार होती है- इस विषय में पाणिनि का कथन है कि तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस-जिस वर्णों के समान हों वे वर्ण परस्पर सवर्ण संज्ञा वाले होते हैं। यहॉ 'दैत्य अरिः' इस स्थिति में 'य' के बाद आनेवाले ' अ ' के परे 'अरि' का आदि वर्ण 'अ' है, यहॉ पहले 'अ' और बाद आनेवाले दूसरे ' अ ' परस्पर सवर्ण हैं, क्योंकि दूसरे 'अ' का उच्चारण स्थान और प्रयत्न वही है जो पहले 'अ' का है। इस प्रकार दोनों 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के समान होने से दोनों सवर्ण संज्ञक हुए एवं परिणामस्वरूप दोनों में दीर्घ सन्धि सम्भव हुई। यहॉ एक अपवाद है। 'ऋ' और ' लृ ' वर्णो के उच्चारण स्थान भिन्न होते हैं, फिर भी इनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है- **'ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्'** सवर्ण संज्ञा का प्रयोग संधि प्रकरण में विशेष रूप से दिखाया जाएगा।

अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः 1-1- 69 ।। प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः । जो प्रतीत होता हो , जिसका विधान किया जाता हो वह प्रत्यय है।

अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । जिस का विधान न किया गया हो ऐसा अण् और उदित् सवर्ण संज्ञा का वोधक होता है। **अत्रैवाण परेण णकारेण -** केवल इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार णकार तक समझना चाहिये।

कु चु टु तु पु एते उदितः कु चु टु तु पु ये उदित् कहे गये हैं। **तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा-** इस कारण अ अट्ठारह प्रकार का बोधक होता है। **तथेकारोकरौ** - इस कारण इकार उकार भी अट्ठारह प्रकार के बोधक होते हैं। **ऋकारस्त्रिंशतः एव लृकारोऽपि-** ऋकार 30 का बोधक होता है इसी प्रकार लृकार भी। **एचो द्वादशानाम्** - एच् (ए ओ ऐ औ) बारह प्रकार के होते हैं। **अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा-** अनुनासिक और अननुनासिकभेद से य व ल दो दो प्रकार के होते हैं। **तेनाननुसिकास्ते द्वयोद्वयो संज्ञा-** इसी लिये अनुनासिक भेद से य व ल की दो दो संज्ञाये होती हैं।

1.4.6 संहिता संज्ञा विधायक, संज्ञा सूत्र

परः संनिकर्षः संहिता 1- 4 -109 ।। वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ।

वर्णो की अत्यन्त समीपता की संहिता संज्ञा होती है संहिता का उदाहरण सन्धि प्रकरण में दिया गया है।

1.4.7 संयोग संज्ञा विधायक,संज्ञा सूत्र

'हलोऽनन्तराः संयोगः।1/1/7 अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञा स्युः'

स्वर वर्णों (अचों) के व्यवधान से रहित व्यंजनों (हलों) की संयोग संज्ञा होती है। दूसरे शब्दों में जिन दो व्यन्जनों के बीच में स्वर न हो, उन दोनों व्यंजनों की मिलाकर संयोग संज्ञा होती है। यथा- 'सुधय् उपास्यः'। यहॉ 'ध् य्' ये दो व्यन्जन स्वर के व्यवधान से रहित है अर्थात् इन दोनों

व्यन्जनों के बीच में कोई स्वर नहीं है। अतः उनकी संयोग संज्ञा हो जाती है। संयोग का मुख्य प्रयोजन व्यंजन सन्धि का सम्पादन है।

1.4.8 पद संज्ञा विधायक,संज्ञा सूत्र

सुप्तिङन्तं पदम् 1-1–14 ।। सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। सुप् प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसे सुबन्त तथा तिङ् प्रत्यय जिसके अन्त में हो उसे तिङन्त कहा जात है। 'सुप्' एवं तिङ्' ये दो प्रत्याहार हैं। सुप् के अन्तर्गत इक्कीस प्रत्यय आते हैं जिनका प्रयोग 'रामः' इत्यादि की सिद्धि के लिये सुबन्त प्रकरण में किया जाता है। तिङ् के अन्तर्गत अठारह प्रत्यय हैं जिनका प्रयोग 'भवति' इत्यादि की सिद्धि के लिये तिङन्त प्रकरण में किया जाता है। पद संज्ञा के प्रयोग के विषय में पाठक उन्हीं अध्यायों में विस्तार पूर्वक जान पाएंगे। प्रत्येक संज्ञा के लिए विधायक सूत्र और संज्ञा सूत्र अलग प्रयुक्त है। सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। सुबन्त का अर्थ होता है। जिस शब्द के अन्त में सुप् अर्थात सु, औ, जस् आदि इक्कीस प्रत्यय हो उसे सुबन्त कहते है। अतः ये शब्द रुप कहे जाते हैं। इन इक्कीस प्रत्ययों को तालिका के माध्यम से देखें समझें-

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा विभक्ति	सु	औ	जस्
द्वितीया विभक्ति	अम्	औट्	शस्
तृतीया विभक्ति	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी विभक्ति	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञचमी विभक्ति	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी विभक्ति	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी विभक्ति	ङि	ओस्	सुप्

इसी प्रकार तिङ् प्रत्यय हो जिसके अन्त में उसे तिङन्त कहतें हैं। जैसे भवति में भू धातु है और तिङ् प्रत्यय के अन्तर्गत ति आता है। अतः ति प्रत्यय तथा शप् गुण अवादेश होकर भवति बनता है। अतः इन्हें धातु रूप कहते हैं। तिङ् प्रत्याहार के अन्तर्गत अठारह प्रत्यय आते हैं। जिसका विशेष रूप से वर्णन भ्वादि प्रकरण में किया गया है। तिङ् प्रत्याहार को तालिका के माध्यम से समझे-

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम् पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	मस्

ये अठारह प्रत्यय हो जिसके अन्त में उसकी पद संज्ञा होती है। विशेष बात यह है कि जब तक आप संज्ञा प्रकरण का सम्यग् रूप से अध्ययन नहीं करेंगे, तबतक आगे संधि प्रकरण का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः सन्धि प्रकरण के ज्ञान के लिए संज्ञा प्रकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार संज्ञा प्रकरण की समाप्ति हुई। अब आगे सन्धि प्रकरण का ज्ञान कीजिये।

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि माहेश्वर सूत्रों में प्रत्याहार कितने प्रकार के होते है। प्रत्याहार विधायक सूत्र क्या है। इन सबका वर्णन विशेष प्रकार से किया गया है। इस

संज्ञा प्रकार में स्वर तथा व्यंजनों के विषय में मुख्य रुप से बताया गया है अच् प्रत्याहार के वर्णो के स्वर कहते है तथा अच् प्रत्याहार से रहित हल् वर्णो को व्यञजन कहते हैं। इन्ही वर्णों को सूत्रों के माध्यम से परस्पर सवर्ण संज्ञा की गयी हैं। तथा इसी प्रकार सूत्रों के माध्यम से संहिता संज्ञा , पद संज्ञा इन सबका वर्णन किया गया है जो आगे सन्धि प्रकार में इनका विशेष प्रकार से प्रयोग बताया गया है। इस इकाई में इत् संज्ञा, लोप संज्ञा, आदि परिचयात्मक वर्णनों में एक आधारभूत संरचना का तथ्य प्रदर्शित है जिसके आधार पर आपने लोप संज्ञा करना और लोप करना सीखा है। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत के अतिरिक्त उदात्त अनुदात्त स्वरितादि स्वरों के विभिन्न भेद व उनके उच्चारण स्थान के साथ आपने वर्णो की उच्चारण प्रक्रिया का ज्ञान भी प्राप्त किया है। आपने जाना कि सवर्ण संज्ञा वाले वर्णो को सवर्णी कहते हैं। सवर्ण संज्ञा के लिये स्थान और प्रयत्न की समानता चाहिए। सवर्ण संज्ञा में आभ्यन्तर प्रयत्न ही लिया जाता है। वाह्य प्रयत्न का उपयोग किसी वर्ण के स्थान पर कोई आदेश करने पर किया जायेगा। जिन दो वर्णो का आपस में स्थान भी एक हो प्रयत्न भी एक हो उनकी आपस में सवर्ण संज्ञा होती है। जिस प्रकार अ का कण्ठ स्थान है और आ का भी कण्ठ स्थान है तथा दोनों का प्रयत्न भी विस्तृत है। अतः स्थान और प्रयत्न एक होने से आपस में सवर्णी कहे जायेंगे इसी प्रकार जहॉ अ का ग्रहण होगा वहीं पर अठारह प्रकार के आ का ग्रहण किया जायेगा। यहाँ पर यह ध्यान देना होगा कि जब तक सम्पूर्ण स्थान और सम्पूर्ण प्रयत्न तुल्य न हो तब तक सवर्ण संज्ञा नहीं होती है। जिस प्रकार इ तथा ए का प्रयत्न समान है किन्तु स्थान तुल्य नहीं है। अतः इनकि आपस में सवर्ण संज्ञा नहीं होगी। यत्नो द्विधा यत्न दो प्रकार के होते हैं। आभ्यन्तरो वाह्यश्च- 1. आभ्यन्तर, प्रयत्न 2. वाह्य प्रयत्न। आद्यः पंचधा- पहला आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं।1. स्पृष्ट - 2. ईषत्स्पृष्ट - 3. ईषद्विवृत - 4. विवृत- 5. संवृत-। वर्णो की उत्पत्ति में जिह्वा के अग्र, उपाग्र, मध्य तथा मूल भागो का उपयोग हुआ करता है। जिह्वा को छूना, स्पृष्ट, थोड़ा छूना, ईषत्स्पृष्ट, थोड़ा दुर रहना ईषद्विवृत, दूर विवृत, तथा हटकर समीप रहना संवृत यत्न कहलाता है। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम उनमे से स्पर्श संज्ञक वर्णो का स्पृष्ट प्रयत्न होता है। (क से लेकर म तक वर्ण सपृस्ट संज्ञक होता है। ईषत्स्पृष्टमन्तः स्थानाम्- । अन्तस्थ संज्ञक वर्णो का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है। (यण् प्रत्याहारस्थ य्, व्, र्, ल्, ये वर्ण अन्तस्थ संज्ञक होते है।) ईषद्विवृत मूष्मणाम्- उष्म संज्ञक वर्णो का ईषद्विवृत प्रयत्न होता है। शल् अर्थात श्, ष्, स्, ह्, ये उष्म संज्ञक होते हैं। विवृतं स्वराणाम्- स्वर संज्ञक वर्णो का विवृत प्रयत्न होता है। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप प्रत्याहार बनाना और स्वरों के भेद करना, वर्णों को सवर्ण रूप में बताते हुये संयोग आदि संज्ञाओं का उल्लेख कर सुबन्त और तिङ्गन्त आदि का निर्धारण कर सकेंगे।

1.6 शब्दावली

शब्द	अर्थ
इति से	यह
माहेश्वराणि	महेश्वर से
सूत्राणि	सूत्रों को
सुबन्तम्	सुबन्तम् को
तिड.न्तम्	तिड.न्त को

अज्भिः	अचों से
अव्य वहिताः	व्यवधान से रहित
संयोगः	संयोग
वर्णानाम्	वर्णों का
सन्निधिः	सन्निकटता
अर्थानि	अर्थों को
एषाम्	इनकी
हकारादिषु	हकार आदि वर्णो में
उच्चारणार्थः	उच्चारण के लिए
अदर्शनम्	जो न दिखायी दे
प्रसक्तस्य	विद्यमान वर्ण का
तस्य	उसका
इतः	इत्संज्ञा होती है
आदिः	पूर्ण (पहले)
मध्यमानाम्	बीच में पढ़े गये
नत्वाः	नमस्कार करके
सरस्वतीं देवीम्	सरस्वती देवी को
शुद्धां	शुद्ध एवं प्रशस्त
गुण्यांम्	गुण से युक्त
पाणिनी	पाणिनि मुनि द्धारा
प्रवेशाय	प्रवेश के लिए
अहम	मैं(वरद राजा चार्य)
लघुसिद्वान्तकौमुदीम्	लघु सिद्वान्त कौमुदी को
करोमि	करता है

1. सूत्रः अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोसुखम् ।
असतोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ।।

अर्थात् कम वर्ण वाले, संदेह रहित, सार की तरह, अनेक मुख वाले, निरन्तरता से युक्त तथा शुद्ध पद या पद समूह को विद्वान लोग सूत्र कहते हैं। यथा-चौदह माहेश्वर सूत्र, हलन्त्यम् इत्यादि।

2. प्रत्ययः धातु एवं शब्द के आगे जुड़ने वाले सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय कहलाते हैं।

3. समय के अंश विशेष को मात्रा कहते हैं। सामान्यतः पलक गिरने अथवा चुटकी बजाने में लगने वाले समय से एक मात्रा का बोध होता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पात्मक

1. (अ) 2. (द) 3. (द) 4. (द) 5. (द)

उत्तर

1. अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ तथा औ।

2. 33 ('ह' का दो बार प्रयोग हुआ है)।
3. पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि।
4. उपदेश, अवस्था में अन्तिम व्यंजन की इत्संज्ञा होती है।
5. आदिरन्त्येन सहेता।
6. (क) कण्ठ
(ख) इ, च, छ, ज, झ, ञ, य तथा श।
(ग) नासिका
(घ) प, फ ब, भ तथा म।
(ड़) आभ्यन्तर एवं बाह्य।
7. (क) मूर्धा
(ख) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न।
8. पद संज्ञा
9. ह्रस्व
10. दीर्घ
11. (क) कण्ठ तालु (ख) चौदह (ग) संहिता

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक श्री धरानन्द शास्त्री (2000)मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार-महेशसिंह कुशवाहा, (1994) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

1.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र कमलाकान्त, व्याकरण सौरभम्, (2002) एन. सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।
2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल 'हंस', बृहद् अनुवादचन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032)ज्ञानदा प्रकाशन, पटना

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चौदह माहेश्वर सूत्रों को लिखें।
2. अल् प्रत्याहार की निर्माण विधि को समझाते हुए उसके अन्तर्गत आने वाले वर्णो को लिखे।
3. सवर्ण संज्ञा से आप क्या समझते है।
4. आभ्यन्तर प्रयत्न पर टिप्पणी लिखें।
5. बाह्य प्रयत्न की भेद सहित प्रस्तुति करें।
6. व्याख्या करें।
(क) संहिता संज्ञा
(ख) संयोग संज्ञा
(ग) पद संज्ञा
7. संज्ञा प्रकरण पर एक निबन्ध लिखें।

8. चौदह सूत्रों का उल्लेख कर उनके इत् संज्ञक वर्णों को चिह्नित कीजिये।
9. प्रयत्न कितने प्रकार के होते है उनकी व्याख्या करें।
10. प्रयत्न की परिभाषा करते हुये बाह्य प्रयत्नों को उदाहरण सहित लिखें।
11. सवर्ण संज्ञा विधायक सूत्र की व्याख्या करते हुए वर्णों के उच्चारण स्थान बतायें।
12. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्यय: सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

इकाई-2 यण् सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 यण् सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तकें
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में सवर्ण संज्ञा से लेकर पद संज्ञा तक का अध्ययन किया है । प्रस्तुत इकाई में यण् सन्धि से लेकर अलोऽन्त्यस्य सूत्र तक की उदाहरण सहित व्याख्यायें व प्रयोगों की सिद्धियों का अध्ययन आप करेंगे।

वर्णो के मेल को सन्धि कहते है। इक् के स्थान में यण् होने से यण सन्धि होती है। इक का अर्थ होता है इ, उ, ऋ, लृ और यण का अर्थ होता है य, र, व, ल। सन्धि कहॉ पर होती है और किन परिस्थितियों में सन्धि का विधान किया जाता है इत्यादि तथ्यों का वर्णन इस इकाई में प्रस्तुत है लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण में यण् सन्धि, अयादि सन्धि, गुण सन्धि, वृद्धि सन्धि पर रूप सन्धि, सवर्णदीर्घ सन्धि, पूर्वरूप सन्धि और प्रकृति भाव इन सन्धियों की गणना की गयी हैं।

अत: इस इकाई के अध्ययन से सन्धि प्रक्रिया को समझते हुऐ आप उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे, तथा इस इकाई में आये हुए प्रयोगों की सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्धि भी करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- यण् सन्धि की परिभाषा बता सकेंगे।
- सुद्ध्युपास्यः प्रयोग कैसे सिद्ध होगा, इसे समझा सकेंगे।
- मद्ध्वरिः प्रयोग कैसे सिद्ध होगा इसे बता सकेंगे।
- लोप विधायक विधि सूत्र की व्याख्या कर सकेंगे।
- द्वित्व विधायक विधि सूत्र को बता सकेंगे।
- यण:प्रतिषेधो वाच्य: के प्रयोजन को समझा सकेंगे।

2.3 यण् सन्धि विधायक विधि सूत्र

इको यणचि 6।1।77।

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य इति स्थिते।।

इक् के स्थान में यण् होता है, अच् पर, (बाद) में होने पर जहाँ सन्धि कार्य के विषय हो।

यह सूत्र यण् सन्धि अर्थात् इक् के स्थान में यण् आदेश का विधान करता है। अतः यह यण् आदेश - विधायक विधि सूत्र है। सभी सूत्र सभी स्थानों पर नहीं प्रयोग होते है। उनके कुछ नियम तथा शर्ते होती है। जो उनके नियम तथा शर्तो को पूरा करता है। जैसे- इक् के स्थान में यण् आदेश करने के लिए इको यणचि सूत्र ने, शर्त रखी है कि पूर्व में इक् प्रत्याहार का वर्ण हो, तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो, इक् प्रत्याहार वाले वर्णो के स्थान में यण् प्रत्याहार वाले वर्ण आदेश होगा। इक् प्रत्याहार में '' इ, उ, ऋ, लृ '' ये चार वर्ण आते हैं, और अच् प्रत्याहार में ''अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ औ '' ये वर्ण आते है, जिसके प्रयोग में अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो इक् के स्थान में यण् ''य व र ल'' ये वर्ण आदेश होते हैं। जैसे - सुधी + उपास्य में धी में जो ई है, वह इक् प्रत्याहार में आता है, और उपास्य का जो उकार है वह अच् प्रत्याहार में आता है और वह इक् के बाद में विद्यमान है, इसलिए इक् के स्थान में यण् प्रत्याहार

का चारों वर्ण एक साथ प्राप्त हुए। जो भी आदेश होता है वह किसी वर्ण के स्थान पर आदेश होते हैं अर्थात् उसे हटाकर ही होते है। यहाँ ई के स्थान पर ई को हटाकर बैठना चाहते है। यहाँ पर संहिता का विषय भी हैं क्योंकि सुधी + उपास्य में परःसन्निकर्ष: संहिता से संहिता संज्ञा हो चुकी है। धी का ईकार और उपास्य का उकार की अत्यन्त समीपता अर्थात् अत्यन्त सन्निधि है। अतः यह संहिता है। ''शंका'' अब यहाँ शंका होती है कि इक् प्रत्याहार का वर्ण यहां पर तीन है सु में उ, धी में ई, उपास्य में उ। अब किस इक् के स्थान में यण् हो इसको निर्णय करने के लिए अगला सूत्र उपस्थित होता हैं।

नियम कारक परिभाषा सूत्र

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1।1।66॥

सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्॥

अर्थ:- सप्तमी-विभिक्त के द्वारा निर्दिष्ट कार्य व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर होता है।

व्यवधान :- दो के बीच में किसी अन्य का होना व्यवधान है।

अव्यवधान :- दो के बीच में किसी अन्य का न होना अव्यवधान है। यह सूत्र व्यवधान न हो ऐसा कहता हैं अर्थात् पर से पूर्व में व्यवधान न होने पर ही कार्य हो, ऐसा नियम बनाता है। जैसे- सुधी ,उपास्यः (स् + उ = सु, ध् + ई = धी, उपास्य) यहाँ पर सु का उकार इक् है और उससे धी का इकार अच् पर में है, इसी तरह धी का इकार इक् है और उससे परे अच् है, उपास्यः का उकार और उपास्यः के उकार को इक् मानकर पर में अच् है पा का आकर। इस दशा में सु के उकार के स्थान पर यण् प्राप्त हो सकते हैं ऐसी परिस्थिति में एक प्रकार का अनियम हुआ, वह यह है कि धी के इकार को अच् परे मानकर सु में उकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा उपास्यः के उकार को अच् मानकर धी के इकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा पा के आकार को अच् पर मानकर उपास्य के उकार के स्थान पर यण् किया, अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्र को परिभाषा सूत्र कहते हैं। सभी परिभाषा सूत्र अपनी-अपनी प्रवृत्ति के योग्य स्थलों को देखकर उन-उन विधि सूत्रों में उपस्थित होते हैं।

इस सूत्र ने यह विधान किया कि सप्तमी विभिक्ति के द्वारा निर्दिष्ट जो शब्द या वर्ण उससे व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर आदेश आदि कार्य करना चाहिए। अर्थात् पूर्व या पर के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं होना चाहिए। यण् को विधान करने वाला सूत्र है इको यणचि। उसमें सप्तम्यन्त पद है-अचि। अच् के परे होने पर इक् के स्थान पर यण् होगा। अच् और इक् के बीच में कोई अन्य वर्ण न हो तो, इसलिए यहाँ पर धी में ईकार और उपास्यः के उकार के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं है। अतः यहाँ पर धी में ईकार के स्थान पर यण् प्राप्त है, सु में जो उकार है उस उकार के स्थान में यण् नहीं होगा क्योंकि पर में अच् नहीं है और सु के इकार के बाद ध् वर्ण का व्यवधान है। इसलिए उकार के स्थान में यण् नहीं होगा। इसी प्रकार उपास्यः के उकार के स्थान में भी यण् नहीं होगा क्योंकि पर में अच् नहीं है, प् वर्ण का व्यवधान है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुधी + उपास्यः में इक् प्रत्याहार का वर्ण मात्र धी में ई एक है और यण् प्रत्याहार (य्, व्, र्, ल्,) का वर्ण चार है। अब ई के स्थान में इन चारों वर्णो में से कौन सा वर्ण हो? इसके लिए अलग सूत्र आ रहा है।

नियम कारक परिभाषा सूत्र:-

स्थानेऽन्तरतमः 1 । 1 । 50 ।।

प्रसंगे सति सदृशतम् आदेशः स्यात् । सुध्य्+उपास्य इति जाते ।।

अर्थ- प्रसंग अर्थात् प्रसक्ति (प्राप्ति) होने पर अत्यन्त सदृश आदेश होता है ।

एक के स्थान पर अनेक की प्राप्ति हो तो उनमें से स्थानी का अत्यन्त सदृश होगा और वही स्थानी के स्थान पर आदेश होगा । वर्णो की सदृशता (समानता) न तौल से की जाती है या न आकृति से की जा सकती है । इनकी समानता अर्थ, स्थान, प्रयत्न मात्रा की दृष्टि से देखी जा सकती हैं ।

अब यहाँ सुधी में धी में जो ईकार है उसका स्थान है तालु (इचुयशानां -तालु ईकार चवर्ग- च, छ, ज, झ, ´, य और श इन वर्णो का तालु स्थान है पहले संज्ञा प्रकरण में बताया गया है, पुनः आप को स्मरण कराया गया) और यण् में य् का तालु व का दन्त और ओष्ठ, र का मूर्धा, ल् का दन्त है, इसलिए यहाँ पर स्थानी रूपी जो इकार है उसका स्थान है तालु और यण् प्रत्याहार के चारों वर्णो में से य् का भी उच्चारण स्थान तालु है । अतः ईकार तथा यकार दोनों का उच्चारण स्थान एक है । व, र, ल, का उच्चारण स्थान भिन्न है । इसलिए इकार एवं यकार दोनों का उच्चारण स्थान एक होने से धी में ईकार के स्थान में यकार आदेश होकर सुध्य् + उपास्यः ऐसा बना । इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है ।

द्वित्व विधायक विधि सूत्र

अनचि च 8 । 4 । 47 ।।

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम्। सुध्ध्य् उपास्य इति जाते ।।

अर्थ :- अच् से परे जो यर् उसका विकल्प से द्वित्व होता है पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण न हो तो । यह सूत्र द्वित्व करता है एक वर्ण को दो कर देता है। यर् प्रत्याहार वाले वर्ण को द्वित्व करता है यर् के पूर्व में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो, किन्तु पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण न हो तो। हल् वर्ण पर हो या न हो । एक पक्ष में कार्य होना एक पक्ष में कार्य न होना उसी को विकल्प कहते है ।

सुधी + उपास्यः में धी के ईकार के स्थान पर यण् होकर सुध्य् + उपास्यः जो बना है, उसके बाद अनचि च यह सूत्र लगता है । सुध्य् + उपास्यः में अच् है सु में उकार, उससे परे यर् प्रत्याहार का वर्ण है ध् उस धकार से परे अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण नहीं है। क्योंकि यकार अच् प्रत्याहार में नहीं आता है । इसलिए यर् प्रत्याहार का जो वर्ण धकार है उसका विकल्प द्वित्व होकर सु ध् ध् य् +उपास्यः बना और जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा उस पक्ष में सु ध् य् + उपास्यः यही रहेगा। प्रत्याहार का ज्ञान करने के लिए आप को संज्ञा प्रकरण में जाना होगा। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है ।

जश्त्व विधान करने वाला विधि सूत्र

झलां जश् झशि 8 । 4 । 53 ।।

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ।।

अर्थ- झश् प्रत्याहार के परे रहने पर झलों के स्थान में जश् प्रत्याहार का वर्ण होता है।

इस सूत्र से पूर्व धकार के स्थान पर दकार हो जाता है। इस सूत्र से झल् प्रत्याहार के स्थान पर जश् प्रत्याहार का वर्ण हो जाता है यदि पर में वर्ण के झश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो। इसी कार्य को जश्त्व कहते है। सु ध् ध् य् + उपास्यः यहाँ पर झल् प्रत्याहार (झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) का वर्ण है ध् उसको जश् (ज, ब, ग

ड, द,) ‘द’ हुआ, क्योंकि धकार और दकार का स्थान दन्त (एक) है तथा पर में झश् प्रत्याहार का वर्ण धकार है इसलिए पूर्व धकार के स्थान में दकार होकर सुद्ध्य् + उपास्यः बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ।

लोप विधायक विधि सूत्र

संयोगान्तस्य लोपः 8 । 2 । 23 ।।

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ।।

अर्थ - संयोगान्त जो पद उसके अन्त का लोप होता है।

हलोऽनन्तराः संयोगः से जिनकी संयोग संज्ञा होती है यदि वह संयोग अन्त में हो ऐसा जो पद (पद संज्ञक शब्द) उसका लोप होता है। इस सूत्र के द्वारा सु द् ध् य् +उपास्यः में अच् से रहित हल् वर्ण द् ध् य् या जिस पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ है सु ध् य् में ध् य् इन सबका एक साथ लोप प्राप्त होता है सु ध् य् में ध् य् इन सबका एक साथ लोप प्राप्त होता है किन्तु इन सबका एक साथ लोप होना ठीक नहीं है। इस प्रकार से जब सम्पूर्ण पद लोप हो जायेगें तो शब्द ही कहाँ बचेंगे। इस अनियम को रोकने के लिए परिभाषा सूत्र उपस्थित होता है।

अन्त्य अल् आदेश परिभाषा सूत्र

अलोऽन्त्यस्य 1 । 1 । 52 ।।

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात्। इति यलोपे प्राप्ते - (यणः प्रतिषेधो वाच्यः।) सुद्ध्युपास्यः मद्ध्वरिः (धात्रंशः लाकृतिः)

अर्थः- षष्ठी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट जिस पद के स्थान पर आदेश प्राप्त हो, वह आदेश अन्त्य अल् वर्ण के स्थान पर होता हैं।

सु द् ध् य् + उपास्यः इस पद में लोप आदेश संयोगान्तस्य लोपः से प्राप्त है। इस सूत्र में षष्ठयन्त पद है संयोगान्तस्य उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है सु द् ध् य्। उसके स्थान पर प्राप्त आदेश है लोप। वह अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र के नियम से अन्त्य अल् वर्ण सु द् ध् य् में य का लोप प्राप्त है। अर्थात् सु द् ध् य् में अन्तिम वर्ण य का लोप प्राप्त हुआ।

इस लोप को रोकने के लिए कात्यायन मुनि का वार्तिक यणः प्रतिषेधो वाच्यः आया।

वार्तिक - यणःप्रतिषेधो वाच्यः

अर्थ - यण् के लोप का निषेध कहना चाहिए।

यणः प्रतिषेधो वाच्यः यह वार्तिक कहता है कि जहाँ पर यण् (य् व् र् ल्) कार्य हुआ है। इसके लोप का निषेध कहना चाहिए अर्थात् अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा सूत्र के द्वारा जो सु द् ध् य् उपास्यः में अन्त्य अल् वर्ण यकार का जो लोप प्राप्त है। उसका लोप नहीं होगा। क्योंकि वह यकार सुधीः उपास्यः में धी में जो ईकार है उस ई के स्थान में जो यण् आदेश हुआ है उस यण् के यकार के लोप का निषेध होता है अर्थात् यकार का लोप नहीं होता है। (1) सु द् ध् य् उपास्यः,(2) सु ध् य् + उपास्यः जो रूप बना है वह ज्यों का त्यों रहता हैं। इसके बाद एक संस्कृत में नियम है अच् प्रत्याहार से रहित जो वर्ण है उसको एक में मिला देना चाहिए। (अज्झीनं परेण संयोज्यम्) यहाँ पर अचों से रहित वर्ण है। सु द् ध् य् +उपास्यः, सु ध् य् + उपास्यः, में द् ध् य्, ध् य् इनको क्रमशः मिला देना चाहिए। यथा द् में ध् मिल गया तो द्ध और य् में उपास्यः का उकार मिलकर यु, द्ध और यु मिलकर द्ध्युपास्यः एवं सु मिलकर सुद्ध्युपास्यः

प्रयोग बनता है और जिस पक्ष में धकार को द्वित्व नहीं हुआ है। उस पक्ष में सुध्युपास्यः प्रयोग सिद्ध होता है। संक्षिप्त रूप में सुद्ध्युपास्य रूप की सिद्धि करते हैं।

सुधी + उपास्यः इस स्थिति में तस्मिन्नितिनिर्दिष्टे पूर्वस्यः स्थानेऽन्तरतमः इन दोनों सूत्रों की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से धी में जो इकार है उस इकार के स्थान में यकार होकर सु ध् य् + उपास्य बना। इसके बाद अनचि च सूत्र से धकार को विकल्प से द्वित्व होकर सु ध् ध् य् +उपास्यः बना। जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा, उस पक्ष में झलां जश् झशि, इस सूत्र के द्वारा पूर्व धकार को दकार होकर सु द् ध् य् + उपास्य बना। इसके बाद संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से पुरे प्रयोग संयोग वर्ण द् ध् य्, ध् य् का लोप प्राप्त होता है। पुनः अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र के द्वारा अन्त्य अल् वर्ण यकार का लोप प्राप्त होता है। उस यकार के लोप को बांधकर यणः प्रतिषेधोवाच्यः वार्तिक के द्वारा यकार का लोप का निषेध होकर सु द् ध् य् + उपास्यः ज्यों का त्यों रहा। उसके बाद अज्झीन्नं परेण संयोज्यम् इस नियम के द्वारा वर्ण सम्मेलन होकर सुद्ध्युपास्यः तथा जिस पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ है उस पक्ष में सुध्युपास्यः ये दो रूप बनते हैं।

इक् प्रत्याहार में चार वर्ण है (इ, उ, ऋ, लृ) इकार का उदाहरण सुदध्युपास्यः सुध्युपास्य दिया गया। यण् सन्धि में उकार का उदाहरण देखिये:-

मधु + अरिः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से इक प्रत्याहार का वर्ण है। मधु में उकार पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अरिः में आकार। इसलिए तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से इक् प्रत्याहार का जो वर्ण मधु में जो उकार है उसको यण् अर्थात् वकार होकर म् ध् व् + अरिः बना। क्योंकि उकार तथा वकार दोनों का स्थान एक है। इसके बाद अनचि च सूत्र से धकार को द्वित्व होकर म् ध् ध् व् + अरिः बना। झलां जश् झशि सूत्र से पूर्व धकार के स्थान में दकार होकर म् द् ध् व् + अरिः बना। संयोगान्तरस्य लोपः से संयोगान्त पद द् ध् व् इन सबका लोप प्राप्त हुआ। इनको बांधकर अलोऽन्त्यस्य सूत्र से अन्त्य अल् वर्ण यकार का लोप प्राप्त होता है। पुनः यकार लोप को बांधकर यण्: प्रतिषेधोवाच्यः इस वार्तिक के द्वारा यकार के लोप का निषेध होकर म द् ध् व् + अरिः ज्यौ का त्यौ बना रहा। उसके बाद अज्झीन्नं परेण संयोज्यम् इस नियम के द्वारा वर्ण सम्मेलन होकर मद्ध्वारिः प्रयोग बनता है और जिस पक्ष में अनचि च सूत्र से द्वित्व होता है, उस पक्ष में मध्वारिः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता हैं। मध्वरिः प्रयोग संक्षेपरूप से समझाया गया है। इसका प्रयोग सुद्ध्युपास्यः के समान होता है। केवल मात्र इतना अन्तर होता है कि सुद्ध्युपास्य इकार के स्थान में यकार होता है। मद्ध्वरिः में उकार के स्थान में वकार होता है। इसलिए सुदध्युपास्यः के प्रयोग को समझना अथवा याद करना अत्यन्त आवश्यक है।

इक् प्रत्याहार के चार वर्णो में से इकार उकार का उदाहरण हो गया है आगे ऋकार का उदाहरण देखिये:-

धात्रंश - धातृ + अंशः यहाँ पर स्थानेऽन्तरतमः इस सूत्र की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से (धातृ में जो तृ में ऋकार है उस ऋकार के स्थान में र यण् होता है क्योंकि पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है अंशः का अकार) इसलिए ऋ के स्थान में र यण् होकर धा त् र् + अंशः बना। अनचि च सूत्र से तकार को द्वित्व होकर धा त् त् र + अशं बना। यहाँ पर झलां जश् झशि यह सूत्र नहीं लगेगा। क्योंकि झश् प्रत्याहार का वर्ण पर में नहीं है। संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से त् त् र् इन तीनों वर्णो का लोप प्राप्त हुआ। उसको रोककर अलोऽन्त्यस्य सूत्र से धा त् त् र् का लोप प्राप्त

हुआ। पुनः यणः प्रतिषेधो वाच्यः इस वार्तिक के द्वारा र के लोप का निषेध हुआ। धा त् त् र् + अंशः ज्यौ का त्यौ बना रहा। उसके बाद अज्झीनं परेण संयोज्यम् इस नियम के आधार पर वर्ण सम्मेलन होकर धात्त्रंशः सिद्ध होता है और जिस पक्ष में अनचि च से द्वित्व नहीं होगा। उस पक्ष में धात्रंशः प्रयोग बनता है। इस बात का ध्यान देना है कि जिस प्रकार सुद्ध्युपास्यः प्रयोग बनता है। इसी प्रकार धात्त्रंशः प्रयोग बनता है केवन अन्तर इतना होता है कि वहाँ पर इकार के स्थान में यण् यकार हुआ है। यहाँ पर ऋकार के स्थान में यण् रकार होता है।

लाकृतिः लृ + आकृतिः यहाँ पर तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतम्ः इन दोनों सूत्रों कि सहायता से इको यणचि इस सूत्र से (इक प्रत्याहार का वर्ण है लृ पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है, आकृतिः का आकार इस लिए लृ के स्थान में ल् वर्ण होता है क्योंकि लृ और ल् इन दोनों वर्णो का स्थान दन्त (एक) है) लृ के स्थान में ल् होकर ल् +आकृतिः बना। अब यहाँ अनचि च, झलां जश् झशि, संयोगान्तस्य लोपः, अलोऽन्त्यस्य, यणः प्रतिषेधोवाच्यः ये सूत्र नहीं लगेंगे। वर्ण सम्मेलन होकर लाकृतिः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

यण् सन्धि कहाँ होती है इसकी विशेष प्रकार की व्याख्या की गयी है। किन्तु सामान्य नियम यह है कि जैसे सुधी + उपास्यः यहाँ पर केवल इतना मात्र बताना है कि इसमें कौनसी सन्धि हुई? इसका उत्तर यह है कि इसमें इको यणचि से यण् सन्धि होकर सु ध् य् + उपास्यः बना तथा वर्ण सम्मेलन होकर सुध्युपास्यः प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ किसी सूत्र की आवश्यकता नहीं हैं। इसी प्रकार जैसे इत्यादि शब्द है। इसका विग्रह है इति + आदि है इक् प्रत्याहार का वर्ण है। इति में ति में इ पर ये अच् प्रत्याहार का वर्ण है आदि का आकार इसलिए इकार के स्थान में इको यणचि से यण् यकार होकर इ त् य + आदि बनता है।

यदि + अत्र	य द् य् + अत्र	यद्यत्र
गति + इत्यादि	ग त् य् + इत्यादि गत्यादि	
पति + आदि	प त् य् + आदि	पत्यादि
नदि + आदि	न द् य् + आदि	नद्यादि

वर्ण सम्मेलन होकर इत्यादि प्रयोग सिद्ध होता है। अब यहाँ किसी अन्य सूत्र का प्रयोग नहीं करेंगे तब भी काम चल सकता है। इसी प्रकार यण् सन्धि में यकार का अन्य उदाहरण भी दिये जा रहे हैं। यण् सन्धि में यकार का उदाहरण इन शब्दों का आप विग्रह करें:-

यद्यत्र		
गत्यादि	पत्योः	हर्यो
पत्यादि	नद्याम्	इत्याचरति
नद्यादि	यद्यपि	कप्यायात
यद्यत्र	प्रत्येकम्	कप्यानय
मत्यत्र	करोम्यहम्	दध्योदन
कत्यादि	कौमुद्यायाति	अभ्युदय
नद्यत्र	दध्यानय	इत्यपि
गत्यत्र	अस्त्यनुरागः	कव्यपि
सत्यादि	ह्यम्	सत्यपि
मत्यादि	अस्त्यात्मा	नद्यपि

यण् सन्धि में यकार का उदाहरण एवं उनकी सन्धि करें।

कान्ति + आभा

दधि + आदेन

जननि + आह

अभि +उदयः

गति + उदयः

कान्ति + अस्ति

नादि+ आवहति

इति + आह

यदि + अयम्

हरि + आगतः

यण् सन्धि में उकार का उदाहरण एवं सामान्य नियम्

मधु + अरिः यहाँ पर इक् प्रत्याहार का वर्ण है पर में मधुः का उकार और अच् प्रत्याहार का वर्ण है पर में अरिः का अकार। इसलिए पर में अच् प्रत्याहार होने के कारण मधु में धु में जो उकार है उसको इको यणचि सूत्र से उकार को यण् वकार होकर म ध् व् +अरिः बना। अब यहाँ पर तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतमः सूत्र का प्रयोग नहीं करेगे तब भी कोई हानी नहीं है। क्योंकि कहीं भी प्रश्न आता है तो यही प्रश्न आता है कि मध्वरिः में कौन सी सन्धि होगी ? हम उत्तर देते है कि यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण सन्धि हुई है। अन्य कोई सूत्र की आवश्यकता नहीं होती है। उकार का अन्य उदाहरण भी देखिये :-

मनु +आगच्छति यहाँ पर इक् प्रत्याहार का वर्ण है मनु में नु में उकार, पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है आगच्छति का आकार, इसलिए उकार के स्थान में यण् व वर्ण आदेश होता है, क्योंकि दोनों का स्थान एक है म न् व् + आगच्छति बना। वर्ण सम्मेलन होकर मन्वादि प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे ही अन्य उदाहरण सिद्ध किये जाते है। इसी नियम को सामान्य नियम कहते हैं।

उकार का उदाहरण एवं उसका विग्रह करें:- सामान्य नियम कहते है क्योंकि अन्य बाहर कही भी आप परीक्षा देने जाते है तो यही पूछा जाता है कि किस सूत्र से कौनसी सन्धि हुई है। इसलिए व्याख्या के साथ सामान्य ज्ञान कर ले तो भी काम चल सकता है।

ऋकार का उदाहरण एवं उनका विग्रह करें:-

पित्रागतः	भर्त्रादेशः
मात्रा	मात्रादेशः
भ्रात्रागच्छति	दुहित्रादेशः
मात्राज्ञा	यात्रागतः
पित्रधीनम्	सवित्रागच्छति
पित्रनुरोधम्	धात्रनुरोधम्

यण् सन्धि में ऋकार का उदाहरण एवं उनका विग्रह करें:-

मातृ + आ	भातृ + उक्त
नृ + आत्मज	नृ + आ
पातृ + एतत्	यातृ + आगतः

भातृ + आशाः	यामातृ +आगतः
दुहितृ + ईशः	
धातृ + आदेश:	
मातृ + आदेश:	
भातृ + अनुरोधः	
पितृ + अनुरोधः	
पितृ: अंश:	
मातृ + अर्चा	

यण् सन्धि में लृकार का उदाहरण बहुत कम प्राप्त होता है। लृकार का उदाहरण:-

लाकृतिः	लृ +आकृतिः
लाकरः	लृ + आकरः
लाकरोत्	लृ + आकरोत्

इस प्रकार अच् सन्धि में यण् सन्धि का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है उसको आप समझें।

सन्धि करें

भू +आदि	भ् + व् + आदि
पु +आदि	प् + व् +आदि
गुरू +आज्ञा	गुर् + व् + आज्ञा
खलु + एहि	खल् + व +एहि
खुल +एतत्	खल् + व् + एतत्
चारू + अग्डी	चार् + व् +अग्डी
वधु + आनय	वध् + व् + आनय
कुरू +इदम्	कुर् + व् + इदम्
वृणु + इदम्	श्रृण्+ व् +इदत
मधु + इदम्	मध् + व् + इदम्
वटु+अयम्	वट् + व् +अयम्
वधु + इयम्	वध् + व् + अयम्
विभु +अयम्	विभ् + व् + अयम्

विग्रह करें	**सन्धि**	**आदेश**
अन् व् +आदेशः	अन्वादेशः	
शिश् व् + अग्ङः	श्श्विग्ङः	
मन् व् + आदेशः	मन्वादेशः	
मध् व् + अक्षत	मध्वक्षतः	
वस्त् व् + अस्ति	वस्त्वस्ति	
वृक्षष् व् + अभिलाषः	वृक्ष्वभिलाषः	
मनव् + आदि	मन्वादि	
देवेष् व् + आसीत्	देवेष्वासीत्	
वस्त् व् + इदम्	वस्त्विदम्	

शत्र् व् + इत्यादि शत्रवित्यादि

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि करें**
पितृ +आगतः	पत् र् + आगतः	
मातृ +आ	मात् र् + आ	
भातृ + आगच्छति	भात् र् +आगच्छति	
मातृ +आज्ञा	मात् र् +आज्ञा	
पितृ + अधीनम्	पित् र् +अधीनम्	
पितृ + अनुरोधम्	पित् र् + अनुरोधम्	
भर्तृ + आदेशः	भतर् र् +आदेशः	
दृहितृ + आदेशः	दुहित् र् + आदेशः	
यातृ + आगतः	यात् र् + आगतः	
सवितृ + आगच्छति	सवित् र् +आगच्छति	
धातृ + अनुरोध:	धातर् + अनुरोध	

विग्रह करें	आदेश	**सन्धि करें**
न्र् +आत्मज	न्रात्मज	
पात् र् + एतत्	पात्रेतत्	
भात् र् + आशा	भात्राशा	
दृहित् र् + ईशः	दुहित्रीशः	
धात् र् + आदेशः	धात्राः	
मात् र् + आदेशः	मात्रादेशः	
भ्रात् र् +अनुरोधः	भात्रानुरोधः	
पित् र् + अंशः	पित्रंशः	
मात् र् +अर्चा	मात्रार्चा	
भात् र् + उक्तः	भात्रुक्तः	
नर् + आ	न्रा	
यात् र् + आगतः	यात्रागतः	
यायात् + आगातः	यामात्रागतः	

विग्रह	आदेश	**सन्धि करें**
यदि + अत्र	यद् य् + अत्र	
गति + इत्यादि	गत् य् + इत्यादि	
नदि +आदि	नद् य् + आदि	
यदि +अत्र	यद् य् +अत्र	
मति + अत्र	मत् य् + अत्र	
कति + आदि	कत् य् + अत्र	
नदि + अत्र	नद् य् + अत्र	
गति +अत्र	गत् य् + अत्र	
सति + अत्र	सत् य् + अत्र	

मति +आदि	मत् य् +आदि
पति + ओः	पत् य् + ओः
नदी + आम्	नद् य् + आम्
यदि + अपि	यद् य् + अपि
प्रति +एकम्	प्रत् य् + एकम्
करोमि +अहम्	करोम् य् +अहम्
कौमुदी + आयति	कौमुद् य् + आयति
दधि + आनय	दध् य् +आनय
अस्ति + अनुरागः	अस्त् य् + अनुरागः
ही +अयम्	ह् य् + अयम्
अस्ति + आत्मा	अस्त् य् + आत्मा
हरि + ओः	हर् य् + ओः
इति: +आचरति	हर् य् + आचरति
कवि + आयाति	कव् य् + आयाति
कपि + आनय	कप् य् + आनय
दधि +ओदन	दध् य् +आदेन
अभि + उदय	अभ् य् + उदय
इति + अपि	इत् य् + अपि
सति + अपि	सत् य् + अपि
नदी +अपि	नद् य् + अपि

विग्रह करे	**आदेश**	**सन्धि**
कान्त्य् + आत्मा	कान्त्यात्मा	
जनन् य् + आह	जनन्याह	
गत् य् + उदय	गत्युदय	
कान्त् य् + अस्ति	कान्त्यस्ति	
नद् य् + आवहति	नद्यावहति	
इत् य् + आह	इत्याह	
पद् य् + अयम्	पद्ययम्	
हर य् + आगतः	हर्यागतः	

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
अपि + एतत्	अप य् + एतत्	अप्येतत्
दधि + आशन्	दध् य् + आशन	दध्याशन
अपि + आसीत्	अप् य् + आसीत्	अप्यासीत्
अति + उत्तमः	अत् य् +उत्तमः	अत्युत्तमः
नदी + उत्तमा	नद् य् + उत्तमा	नद्युत्तमा
कामिनी + उदय	कामिन् य् + उदय	कामिन्युदय
जननी + आगच्छति	जनन् य् +आगच्छति	जनन्यागच्छति

पति + अयम्	पत् य् + अयम्	पत्ययम्
मति + अयम्	मत् य् + अयम्	मत्ययम्
कवि + अयम्	कव् य् + अयम्	कव्ययम्
कपि + अयम्	कप् य् + अयम्	कप्ययम्
कान्ति +आभा	कान्त् य् + आभा	कान्त्याभा
हरी +आगच्छतः	हर् य् + आगच्छतः	हर्यागच्छतः
रवि + अयम्	रव् य् +अयम्	रव्ययम्
कपि: एकः	कप् य् + एकः	कप्येकः
नदी + एका	नद् य् + एका	नद्येका
गौरी +एका	गौर् य् + एका	गौर्येका
पार्वती + अपि	पार्वत् य् + अपि	पार्वत्यपि

अभ्यास प्रश्न -

लघु उत्तरीय -

1. सन्धि किसे कहते है।
2. मुख्य रूप से सन्धि कितने प्रकार की होती है।
3. इस इकाई में कितने सन्धियों का वर्णन किया गया है।
4. इक् के स्थान में यण् आदेश किस सूत्र से हुआ है।
5. स्थान का सादृश्य किस सूत्र से देखा जाता है।
6. अनचि च सूत्र किस प्रत्याहार को द्वित्व होता है।
7. झलां जश झशि सूत्र से किसका जश्त्व होता है।
8. यण: प्रतिषेधोवाच्य: इस वार्तिक के द्वारा किस वर्ण वर्ण के लोप का निषेध करता है।

बहु विकल्पीय प्रश्न -

1. यण् प्रत्याहार में कितने वर्ण होते है।

क. पॉच ख. चार ग. तीन घ. दो

2. इक् प्रत्याहार में कितने वर्ण है -

क. छ: ख. सात ग. आठ घ. चार

2.4 सारांश

अच् सन्धि में दो शब्द है- 1- अच् 2- सन्धि। सबसे पहले अच् के बारे में बताया गया है। अच् एक प्रत्याहार है, जिसके अन्दर अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ ये वर्ण आते हैं। जो हस्वं, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक इन सभी भेदों के साथ यहा ग्रहण किये गये है। ऐसे अच् अर्थात् स्वरों की सन्धि की गयी हैं। सन्धि का अर्थ है-जोड़ अर्थात् वर्णो का मेल। वर्ण दो प्रकार के है एक-स्वर तथा दूसरा-व्यंजन। यहाँ स्वर सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है। पहले और बाद में अर्थात् आदि तथा अन्त में दोनों वर्ण स्वर (अच्) हो तो वहाँ पर स्वर सन्धि होती है अर्थात् उसे अच् सन्धि कहते हैं। इसी प्रकार जहाँ दो हल वर्णो अर्थात् व्यंजन वर्णो का मेल होता है उसे हल् सन्धि कहते हैं, किन्तु कहीं-कहीं पूर्व में हल वर्ण हो और पर बने स्वर वर्ण हो तो वहाँ पर भी सन्धियाँ होती हैं। विसर्ग को लेकर होने वाली सन्धि

को विसर्ग सन्धि कहते है। इस प्रकार हलों को लेकर होने वाली सन्धि को हल् सन्धि कहते हैं। और अचों की सन्धि को अच् सन्धि कहते हैं। वर्णों के मेल से सन्धि हो जाने के बाद दो शब्दों को प्रायः एक में मिला दिया जाता है अर्थात् दोनों शब्द एक शब्द हो जाते हैं उसको सन्धि कहते हैं।

2.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
सुद्ध्युपास्यः	विद्वानों
गत्यादि	गति आदि
पत्यादि	पति आदि
नद्यादि	नदी आदि
यद्यत्र	जो यहाँ
मत्यत्र	मति यहाँ
कत्यादि	कितना आदि
नद्यत्र	नदी यहाँ है
नद्याम्	नदी में
यद्यपि	जो भी
प्रत्येकम्	प्रति एक
करोम्यहम्	मैं करता हूँ
कौमुद्यायाति	कौमुदी आ रही है
दध्यानय	दधि लाओ
अस्त्यनुराग	अनुराग है
अस्त्यात्मा	आत्मा है
इत्याचरति	ऐसा आचरण करता है।
कव्यायाति	कवि आ रहा है।
दध्योदन	दही और ओदन
इत्यपि	ऐसा भी
कव्यपि	कवि भी
नद्यपि	नदी भी
हर्यागतः	हरि आया
अप्येतत्	यह भी
दध्यासन	दही, आसन
अत्युत्तमः	अत्यन्त उत्तम
नद्युन्तमा	नदी उत्तम
जनन्यागच्छति	माता आ रही है
पत्ययम्	यह पति है।
मत्ययम्	यह बुद्धि है

कव्ययम्	यह कवि है
कप्ययम्	यह बन्दर है
हर्यागच्छतः	दो हरि आ रहे है
रव्ययम्	यह सूर्य है
कप्येकः	एक बन्दर है
नद्येका	एक नदी
गौर्येका	एक गौरी
पार्वत्यति	पार्वती भी
मद्ध्वरिः	मधुनामक दैत्य के शत्रु
धात्रंशः	ब्रह्मा का भाग
लाकृतिः	श्री कृष्ण

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. दो वर्णो के मेल को
2. पांच
3. एक
4. इको यणचि
5. स्थानेऽन्तरतमः
6. यर्
7. झल्
8. यण् प्रत्याहार वाले वर्ण को
9. धात्रंश

बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)

2.7 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ महेश्वर सिंह कुशवाहा
2. सिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र

2.8 उपयोगी पुस्तकें

लघुसिद्धान्तकौमुदी - श्रीधरानन्द शास्त्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इको यणचि सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या करें?
2. सुधीउपास्य: प्रयोग की विस्तारपूर्वक सिद्धि कीजिये।
3. धात्रंश: शब्द की सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्धि कीजिये।
4. द्वित्व विधायक विधि सूत्र को उदाहरण सहित परिभाषित कीजिये।

इकाई-3 अयादि एवं गुण सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अयादि एवं गुण सन्धि

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि सन्धि किसे कहते हैं और यण् आदि सन्धियों के विधान में किन - किन सूत्रों का प्रमुख योगदान है। प्रस्तुत इकाई में अयादि सन्धि और गुण सन्धि आदि के सूत्रों का उल्लेख करते हुए व्याख्या पूर्वक उनसे सम्बद्ध प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया गया है।

अच् प्रत्याहार का वर्ण यदि एच् प्रत्याहार के बाद आता है तो उसके स्थान में क्रमश: अय्, अव्, आय्, और आव् हो जाते है ऐसा एचोऽयवायाव: सूत्र का नियम है। जिससे हरये , विष्णवे, नायक: , पावक: आदि शब्दों की सिद्धियॉ की जाती है। इसी प्रकार इस इकाई में गुण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र और गुण संज्ञा करने वाला तथा इत् संज्ञा में प्रयुक्त सूत्रों की परिभाषायें उदाहरण सहित इस इकाई में वर्णित है।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आप अच् सन्धि के विभिन्न प्रयोगों की सिद्धि करने में सक्षम हो सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- अयादि सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होगें।
- एचोऽयवायवः सूत्र को परिभाषित करेंगे।
- वान्तोयिप्रत्यये सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या करेंगे।
- गुण आदेश सूत्र को उदाहरण सहित बतायेंगे।
- गुण संज्ञा विधायक सूत्र को परिभाषित कर सकेंगे।
- लोपः शाकल्यस्य इस सूत्र के विधान को समझा सकेंगे।

3.3 अयादेश विधायक विधि सूत्र

एचोऽयवायावः 6 । 1 । 78 ।।

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ।।

अर्थ - अच् प्रत्याहार का वर्ण एच् प्रत्याहार के बाद में हो तो एच् के स्थान में क्रमशः अय् अव्, आय्, आव आदेश होते है।

एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत ए, ओ, ऐ, औ, ये चार वर्ण आते हैं। इनके स्थान में क्रमशः अय् अव् आय् आव् अर्थात् ए = आय्, ओ = अव्, ऐ = आय्, औ = आव् आदेश होते हैं। पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो जैसे - हरये - इसका विग्रह हुआ हरे + ए। यहाँ एच् प्रत्याहार का वर्ण है हरे में र में ए और पर (बाद) में अच् प्रत्याहार का वर्ण है ए केवल ए। ऐसी स्थिति में इस सूत्र से हरे में र में ए के स्थान पर अय्, अव् आय् और आव् ये चारों आदेश एक साथ प्राप्त हुये अतः इस प्रकार यह अनियम हुआ। इस अनियम को रोकने के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ।

नियम विधायक परिभाषा सूत्र

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1 । 3 । 10 ।।

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः पावकः ।।

अर्थ - समान संख्या वाली विधि क्रम से होती है। एचोऽयवायावः सूत्र द्वारा कहा गया अय् अव् आय् आव् यह आदेश रूप जो विधि है वह समान विधि है ? क्योंकि एच् (ए ओ ऐ औ) भी चार है और अय् अव् आय् आव् ये आदेश भी चार है यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा सूत्र के द्वारा यह विधि बारी-2 अर्थात् पहले को पहला ए = अय् दूसरे को दूसरा औ = अव् , तीसरे को तीसरा ऐ = आय् चौथे को चौथा औ = आव् आदेश होगा।

इस प्रकार से हरे + ए में स्थानी रे में ए है और वह पहला है, अतः आदेश में पहला अय् आदेश होगा। र में ए के स्थान पर अय् आदेश होकर हर् + अय् + ए बना। अब यहाँ अच से रहित वर्ण अकेले नहीं बैठते किसी न किसी वर्ण के सहारे की आवश्यकता होती है वे अपने से बाद वाले वर्ण से मिलकर बैठते है। हर् वाला वर्ण र् अलगे वाला वर्ण अय् के अकार से मिलकर हरय् बना। हरय् वाला य् वर्ण अलगे ए से मिलकर हरये प्रयोग सिद्ध होता हैं।

अयादि सन्धि में ओ का उदाहरण

विष्णवे - विष्णो + ए यहाँ पर एच् प्रत्याहार का वर्ण है। विष्णो में ष्णो में ओ और पर में अच् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) प्रत्याहार का वर्ण है केवल ए। इस स्थिति में इस सूत्र से विष्णों में णों में ओ के स्थान पर अय् अव् आय आव् ये चारों आदेश एक साथ प्राप्त हो गये। स्थान एक है और आदेश चार है। यह संभव नहीं है इसलिए इस नियम को रोकने के लिए यथा संख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा सूत्र नियम बनाता है कि ए= अय्, ओ = अव्, ऐ = आय् और औ के स्थान पर में आव् आदेश होता है। विष्णो + ए यहाँ पर ओ के स्थान में अव् आदेश होकर विष्ण् + अव् + ए बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णवे प्रयोग सिद्ध होता हैं।

इसी प्रकार नायकः पावकः प्रयोग बनते है। अन्तर केवल इतना होता है कि पूरी प्रक्रिया हरये के समान होती है विग्रह और आदेश में भिन्नता होती हैं।

नायक: - नै + अकः यहाँ पर यथा संख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा सूत्र की सहायता से एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा नै में जो ऐ है उस ऐ के स्थान में अर्थात् तीसरा स्थान में तीसरा आदेश आय् होता है क्योंकि अच् प्रत्याहार का वर्ण अकः का अकार पर में है। न् + आय् + अकः बना। वर्ण सम्मेलन होकर नायकः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

पावक पौ + अकः यहाँ पर यथा संख्यमनुदेशः समानाम् सूत्र की सहायता से एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा पौ में जो औ है। उस औ के स्थान में चौथा स्थानी के स्थान पर चौथा आदेश आव् होता है क्योंकि पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है अकः का अकार।

प् + आव् + अकः बना। हरये के समान वर्ण सम्मेलन होकर पावकः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

अयादि सन्धि में इस सूत्र का अन्य उदाहरण विग्रह करें:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
भौ + उकः	भ् + आव् उकः	भावुक
चै +अनम्	च् + अय् +अनम्	चयनम्
गै + अन्	ग् + आय् + अनः	गायनः
पो + अनः	प् + अव् + अनः	पवनः
भो + अति	भ् + अव् + अति	भवति
ने + अति	न् + अय् + अति	नयति
शे + अनम्	श् +अय् + अनम्	शयनम्

असौ + अयम्	अस् + आव् + अयम्	असावयम्
चोरे + अति	चोर् + अय् + अति	चोरयति
लो + अनम्	ल् +अव् + अनम्	लवनम्
बालिके +अत्र	बालिक् + अय् + अत्र	बालिकयत्र
असे + ए	अस् + अय् + ए	असये
पशो + ए	पश् + अव् + ए	पशवे
गुरो +अः	गुर् + अव् + अः	गुरवः
साधो + ए	साध् + अव् + ए	साधवे
चे +अः	च् + अय् + अः	चयः
पो + इत्रम्	प् + अव् + इम्त्र	पवित्रम्
वटा + ऋक्ष	वट् + अव् + ऋक्ष	वटवृक्षः
भो +अनम्	भ् + अव् + अनम्	भवनम्
रवौ + इव	र व् + आव् + इव	रवाविव
वागथौ + इव	वागर्थ + आव् + इव	वागर्थाविव
करौ + एतौ	कर्+आव् + एतौ	करावेतौ
कवे +ए	कव् + अय् + ए	कवये

अवादेश विधायक विधि सूत्र

वान्तो यि प्रत्यये 6 । 1 । 79।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम्। नाव्यम् । (अध्वपरिमाणे च) गव्यूतिः।

अर्थ - यकार हो जिसके आदि में ऐसा प्रत्यय पर (बाद) में हो तो, ओ के स्थान में अव् और औ के स्थान में आव् आदेश होता हैं । इस सूत्र में भी यथा संख्यनुदेशः समानाम् सूत्र की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्थानी में प्रथम ओ के स्थान पर प्रथम अव् आदेश होता है और द्वितीय औ के स्थान पर द्वितीय आव् आदेश होता हैं।

गव्यम् - गो + यम् यहाँ पर यकरादि प्रत्यय पर में यम् का यकार होने के कारण गो में जो ओ है उस ओ के स्थान पर इस सूत्र से अव् आदेश होकर ग् + अव् + यम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर गव्यम् प्रयोग सिद्ध होता है।

नाव्यम् - नौ + यम् यहाँ पर यकरादि प्रत्यय पर में यम् का यकार परे होने के कारण वान्तोयियत्यये इस सूत्र से औ के स्थान पर आव् आदेश होकर न् + आव् + यम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर नाव्यम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक - गो शब्द के बाद 'यूति'' शब्द पर में हो तो गो के ओ के स्थान में अव् आदेश होता है। यदि यूति शब्द का अर्थ मार्गवाची परिभाषा (माप) अर्थ वाचक हो तो ।

गव्यूति :- गो + यूति यहाँ पर गो शब्द के बाद यूति शब्द परे होने के कारण गो में जो ओकार है उसको अव् आदेश होकर ग् + अव् + यूति बना । वर्ण सम्मेलन होकर गव्यूतिः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

गो + यम्	ग् + अव् +यम्	गव्यम्
नौ + यम्	न् + आव् + यम्	नाव्यम्
गो + यूति	ग्+अव् + यूति	गव्यूति

शंको + यः शंक् + अव् + यः शंकव्यः

गुण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

अदेङ् गुणः 1 । 1 । 2 ।।

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ।।

अर्थ - हस्व अकार और एड्. ये गुण संज्ञक होते है। अतः अ, ए, ओ, इन तीन वर्णो की गुण संज्ञा होती है।

नियम सूत्रः-

तपरस्तत्कालस्य 1 । 1 । 70 ।।

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।। त् जिसके पर (बाद में) है और त से जो परे है वह जो (अण्) अपने समकाल का ही बोधक होता है। अर्थात् हस्व वर्ण के साथ त पर में हो तो वह मात्र हस्व अकार का बोधक होगा। यदि दीर्घ के साथ त् पर में होगा तो दीर्घ मात्र वर्ण का बोधक होगा। हस्व वर्ण का बोधक नहीं होगा क्योंकि सभी स्वर अपने सवर्णो का ग्रहण कराते है जैसे अ से आ, आ3 अर्थात् दीर्घ प्लुत का भी ग्रहण कराने वाला होता है। किन्तु त पर अर्थात् जिस स्वर के बाद त् पढ़ा गया हो तो वह अपने समयकाल अर्थात् त के पूर्व में जो अ वर्ण है उसी का ज्ञान कराता है जैसे अदेङ् गुणः में अत् और एड. पढ़ा गया है यहां अत् में त पर में है अ केवल एक मात्रिक अकार का बोधक होगा। उसी प्रकार एङ् पढ़ा गया है, यहां अत् में त पर में अ केवल एक मात्रिक अकार का बोधक होगा। उसी प्रकार एङ् (ए ओ) को बोधक होगा अन्य अपने सवर्णो का बोधक नहीं होगा। अब यह निश्चित हो गया कि गुणसंज्ञक वर्ण अ, ए, ओ, तीन ही मात्र होगें। अपने सवर्णो का ग्राहक नहीं होंगे। इस सूत्र का प्रयोजन क्या है अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

गुण संज्ञा विधायक विधि सूत्र

आद्गुणः 6 । 1 । 69 ।।

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गंडोदकम्।

अर्थ - अवर्ण से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में गुण रूप एक आदेश होता है।

इस सूत्र के लगने के बाद एक शंका उत्पन्न होती है कि पूर्व और पर में दो ही वर्ण होते है और दोनों वर्णो के स्थान पर एक वर्ण आदेश के रूप में होना चाहिए किन्तु गुण संज्ञक वर्ण जो अ ए ओ तीन है, इन तीनों वर्णो की प्राप्ति एक साथ हो रही है। इस अनियम को दूर करने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की आवश्यकता होती हैं इस सूत्र के द्वारा स्थान साम्यता अर्थात् स्थानी और आदेश को लेकर तुल्यता देखी जाती है। स्थान और आदेश दोनों वर्णो का स्थान एक हो तो उस स्थानी के स्थान पर वह आदेश होता है।

उपेन्द्रः - 'उप' + इन्द्र में आदगुणः सूत्र लगा। अवर्ण है उप में प के बाद वाला अकार और अच् प्रत्याहार का वर्ण है पर में इन्द्र का इ पूर्व में अकार और पर में इकार इन दोनों वर्णों के स्थान पर गुण संज्ञक वर्ण अ, ए, ओ, ये तीनों वर्ण उपस्थित होते है अ और इ इन दोनों के स्थान पर गुण संज्ञक तीनों वर्णो में से किसी एक ही वर्ण होना चाहिए। किन्तु इन तीनों वर्णो में सें कौनसा वर्ण आदेश के रूप में हो? यह निश्चित नहीं हो पाया। इसलिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से उप में प में अ तथा इन्द्र का इ, अ और इ इन दोनों वर्णो के स्थान पर गुण संज्ञक अ, ए, औ तीनों वर्णो में से एक की प्राप्ति होगी। इन तीनों वर्णो में से सबसे सन्निकट वर्ण ए है। ए का स्थान

कण्ठ और तालु है और अ का स्थान काण्ठ है तथा इ का स्थान तालु है। इसलिए अ + इ इन दोनों वर्णो का स्थान में ए होकर उप् + अ + न्द्रः, अ + इ = इन दोनों के स्थान में ए हो गया, उप् +ए + न्द्रः बना। अब वर्ण सम्मेलन होकर उपेन्द्रः प्रयोग सिद्ध होता है। जहां भी संसार में अ वर्ण के बाद इ वर्ण होगा वहाँ पर ए अवश्य होगा और उस सन्धि को गुण सन्धि कहते हैं।

गुण सन्धि के तीन वर्ण है अ, ए, ओ, आपने ए का उदाहरण पढ़ लिया अब इसके बाद ओ का उदाहरण दिया जा रहा है।

गंगोदकम् - गंगा + उदकम् यहाँ पर सभी प्रक्रिया उपेन्द्रः के समान होगा अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ पर अ और इ मिलकर ए गुण संज्ञक वर्ण हुआ। यहाँ पर अ और उ मिलकर ओ गुण होता है। यहाँ किस प्रकार होगा इसका ज्ञान करिये।

गंगा + उदकम् यहाँ पर आद्गुणः सूत्र के द्वारा अवर्ण है। गंगा में आ पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदकम् का उ अब गंगा में आकार और उदकम् का उपकार इन दोनों वर्णो के स्थान पर गुण संज्ञक वर्ण तीनों एक साथ प्राप्त हो गया। अब इन तीनों वर्णो में से कौनसा वर्ण होगा। इसको निर्णय करने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र के द्वारा अ + उ का सबसे सन्निकट (समीप) वर्ण होगा, वही उसके स्थान में गुण होगा। यहाँ पर अ का स्थान कण्ठ और उकार का स्थान ओष्ठ है और गुणसंज्ञक वर्ण ओ का ओष्ठ है। यह निश्चित हो गया कि अ + उ के स्थान में ओष्ठ संज्ञक वर्ण ओ होगा। इसलिए गंग् + ओ + दकम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर गंगोदकम् प्रयोग सिद्ध होता है। अब यह निश्चित हो गया कि संसार में जहां कहीं भी अवर्ण के बाद में उवर्ण होगा तो ओ वर्ण गुण होना है। अब इन का क्रमशः उदाहरण देखें:-

गुण सन्धि में ए का उदाहरणः-

विग्रह	आदेश	सन्धि
उप् + इन्द्र	अ + इ = ए	उपेन्द्रः
गज् +इन्द्र	अ + इ = ए	गजेन्द्रः
रमा + ईशः	आ + ई = ए	रमेशः
उमा + ईशः	आ + ई = ए	उमेशः
राम + इति	आ + इ = ए	रामेति
च + इति	अ + इ = ए	चेति
परम + ईश्वर	अ + ई = ए	परमेश्वरः
देव + इन्द्र	अ + इ = ए	देवेन्द्रः
तव+इह	अ + इ = ए	तवेह
महा + ईशः	आ + ई = ए	महेशः
गण + ईशः	अ + इ = ए	गणेशः
देव + ईशः	अ + ई = ए	देवेशः
अवध + ईशः	अ + ई = ए	अवधेशः
सुर + ईशः	अ + ई = ए	सुरेशः
दिन + ईशः	अ + ई = ए	दिनेशः
भूप + ईशः	अ + इ = ए	भूपेशः
रमा + इति	अ + इ = ए	रमेति

सुर +इन्द्र	अ + इ = ए	सुरेन्द्र
सत्य + इन्द्र	अ + इ = ए	सत्येन्द्र

गुण सन्धि में ओ का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
गंगा + उदकम्	आ + उ = ओ	गंगोदकम्
महा + उत्सवः	आ + उ +ओ	महोत्सवः
हित + उपदेशः	अ +उ = ओ	हितोपदेशः
गुण +उत्तमः	अ + उ = ओ	गुणोत्तमः
सूर्य + उदयः	अ + उ = ओ	सूर्योदयः
यज्ञ + उपवीतम्	अ + उ = ओ	यज्ञोपवितम्
राम + उदक:	अ + उ = ओ	रामोदकः
कृष्ण +उत्सवः	अ + उ = ओ	कृष्णोत्सवः
गन्ध + उदक	अ + उ = ओ	गन्धोदकम्
फल + उदक	अ + उ = ओ	फलोदकम्
मनुष्य + उत्तम	अ + उ = ओ	मनुष्योत्तम्
बालक + उत्तम्	अ + उ = ओ	बालकोत्तम्
परम: + उत्कृष्टम्	अ + उ = ओ	परमोत्कृष्टम्

इस प्रकार गुण सन्धि में एकार तथा ओकार का उदाहरण दिया गया। इसके बाद ऋकार का उदाहरण दिया जायेगा।

इत्संज्ञा विधायक ,संज्ञा सूत्र

उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1 । 3 । 2 ।। उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणों रेफो रलयोः संज्ञा।।

अर्थ - जो अच् उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती है।

पाणिनि के वर्ण प्रतिज्ञा अर्थात् गुरू परम्परा के उपदेश से अनुनासिक धर्म वाले है। लण् सूत्र स्थित लकार में स्थित अवर्ण के साथ मिला हुआ रेफ र और ल वर्णो का बोध कराता है। उपदेशेऽजनुनासिक इत् यह सूत्र अनुनासिक अच् की अपेक्षा करता है। अनुनासिक कहीं स्पष्ट रूप से प्रतीत होते है और कहीं उनको अनुनासिक मान लिया जाता हैं।

हल् वर्णो में ङ् ´ ण् न् म् ये हमेशा अनुनासिक है। य् व् ल् ये तीनों वर्ण एक पक्ष में अनुनासिक होते है और एक पक्ष में अननुनासिक होते है अर्थात् अनुनासिक नहीं होते हैं। और य् व् ल् इन को छोड़कर शेष व्यंजन वर्ण अनुनासिक होते ही नहीं है किन्तु स्वर सारे अनुनासिक और अननुनासिक दोनों होते हैं। यह संज्ञा प्रकरण में कहा गया है। पाणिनि जी ने कहीं अचों को अनुनासिक माना है और कहीं अनुनासिक नहीं माना है जैसे भू सत्तायाम् धातु है इन को उपदेश में पढ़ा गया है। उपदेश में भू में जो अच् है यहां उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा नहीं होती है क्यौकिं उपदेश में अच् होते हुए उकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। इसलिए कि यहाँ पर जो अच् है वह अनुनासिक नहीं माना गया है। अन्य जगह उपदेश अवस्था में अच् को अनुनासिक माना गया। जैसे - एध वृद्धौ धातु है यहां पर स्पष्ट प्रतीत न होते हुए भी पाणिनि ने धकार में जो अकार है उसको अनुनासिक माना। अनुनासिक होने से उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से

इत्संज्ञा हुई तथा तस्य लोपः से लोप भी हुआ। इसका फल आगे स्वादि प्रकरण में बताया गया है। छात्र को पढ़ते पढ़ते पता चल जाता है कि कौन स्वर वर्ण अनुनासिक है और कौन स्वर वर्ण अनुनासिक नहीं हैं।

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः - कहा गया है कि पाणिनि ने जिन वर्णो को अनुनासिक माना है वहीं वर्ण अनुनासिक है। जिस प्रकार आप ने भू तथा एध् में देखा।

माहेश्वर चौदह सूत्रों में छठा सूत्र लण् है और लण् के मध्य (ल् अ ण्) में जो अकार है वह अनुनासिक माना गया है। इस प्रकार की इत्संज्ञा करने के लिए उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा होती है क्यौंकि गुरू परम्परा से लण् मध्ये त्वित्-संज्ञक यह संज्ञा प्रकरण में पहले कहा गया है। लण् सूत्र के मध्य में जो अकार है वह अनुनासिक है। लण् में जो अकार है उसको अनुनासिक मानकर उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र में इत्संज्ञा की गयी है उसका मुख्य प्रयोजन र् प्रत्याहार की सिद्धि करना हैं।

र् प्रत्याहार की सिद्धि

हयवरट् सूत्र के र से लेकर लण् सूत्र में इत् संज्ञक जो अकार है उस अकार को मिलाने से र् अ ट् ट् की इत्संज्ञा होकर र् अ बना। इन दोनों वर्णो को मिलाने से र प्रत्याहार की सिद्धि होती हैं। र प्रत्याहार के अन्तर्गत र् और ल् ये दो वर्ण आते हैं।

र् प्रत्याहार का प्रयोजन

उरण् रपरः 1 । 1 । 51 ।। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णार्द्धिः तवल्कारः ।।

अर्थ - 'ऋ' यह तीस प्रकार की संज्ञा है वह संज्ञा प्रकरण (अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः सूत्र) में कहा जा चुका है। उस तीस प्रकार वाले ऋ के स्थान पर यदि अण् आदेश करना हो तो वह र पर में वाला ही प्रवृत्त होता है अर्थात् र पर होता है।

ऋ वर्ण के स्थान पर अण् अ इ उ आदेश होगा तो वह र प्रत्याहार वाले वर्ण परे वाला होता है अर्थात् उस अण् से परे र् और ल् वर्ण होते हैं । यथा - अ प्राप्त होता है तो अर, अल् तथा इ प्राप्त हुआ तो इर्, इल्, इसी प्रकार उ प्राप्त हुआ तो उर् उल् बनते हैं। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिए। गुण कार्य में यदि स्थानी ऋ है तो आदेश अर् होगा, क्योंकि ऋ तथा र् दोनों का स्थान एक है। इसी प्रकार लृ के स्थान पर अकार के प्राप्त होने पर अल् होगा। क्योंकि लृ और ल् का स्थान एक हैं।

र् प्रत्याहार का उदाहरण

कृष्णार्द्धि कृष्ण + ऋद्धि यहां पर कृष्ण में जो णकार में अकार है उस अकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण ऋद्धि का ऋकार होने के कारण आद् गुणः सूत्र से पूर्व में अ और पर में ऋ के स्थान पर एक गुण प्राप्त होता है। ऋ का स्थान मूर्धा तथा अकार का स्थान कण्ठ है अ, ए, ओ, इन तीनों गुणों में से कण्ठ स्थान तो सबका मिलता है पर मूर्धा स्थान किसी का नहीं मिलता। अब यदि पूर्व और पर दोनों के स्थान पर अ गुण होगा तो उरण् रपरः सूत्र से अ से परे र प्रत्याहार प्राप्त होता है र प्रत्याहार में र और ल् दो वर्ण आते है। स्थानेऽन्तरतमः सूत्र द्वारा ऋ के स्थान पर अण् करने पर उस अण् से परे ''र'' और लृ के स्थान पर अण् करने पर उससे परे ल भी साथ में प्रवृत्त होता है। यहां पूर्व + पर के स्थान पर एकादेश होने से ऋ के स्थान पर अण् (अ) करना है। अतः उस अ से परे र भी हो जाता है अर्थात् अर् हो जाता है। इस प्रकार अर् का स्थान कण्ठ,

मूर्धा होने से स्थानी ऋ और आदेश र् दोनों का स्थान एक हो जाते है। तो अब अर् एकादेश होने से कृष्ण् + अर् +द्धि बना। ण् में अ मिला तथा र् द्धि के उपर चले जाने के कारण कृष्णर्द्धिः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

लृ का उदाहरण

तवल्कारः -तव् + लृकारः यहाँ पर पूर्व में विद्यमान वकार में अकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण लृकार का लृ के स्थान पर स्थानेऽन्तरमः और उरण् रपरः की सहायता से आद्गुणः से लपर सहित अल् गुण होकर तव् + अल् + कारः बना। वर्ण सम्मेलन होने पर तवल्कारः प्रयोग सिद्ध होता हैं।

गुणसन्धि में गुण संज्ञक अवर्ण का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
कृष्ण + ऋद्धिः	कृष्ण् + अर् +द्धि	कृष्णर्द्धि
महा + ऋषिः	मह् + अर् + षि	महर्षिः
उत्तम + ऋतुः	उत्तम् + अर् + णः	उत्तमर्णः
ग्रीष्म + ऋणः	ग्रीष्म + अर् +तुः	ग्रीष्मर्तुः
सप्त + ऋषिः	सप्त् + अर् + षिः	सप्तर्षिः
अधम +ऋणः	अधम् + अर् + णः	अधमर्णः
राजा + ऋषिः	राज् + अर् +षिः	राजर्षिः
ब्रह्म + ऋषिः	ब्रह्म + अर् + द्धि	ब्रह्मर्षिः
पुण्य + ऋद्धि	पुण्य् + अर् + द्धि	पुण्यर्द्धिः
परम् + ऋतः	परम् + अर् + त	परमर्तः
वसन्त + ऋतुः	वसन्त् + अर् + तुः	वसन्तर्तुः
तव + लृकारः	तव् + अल् + कारः	तवल्कारः
मम + लृकारः	मम् + अल् + कारः	ममल्कारः
तव + लृदन्तः	तव् + अल् + दन्तः	तवल्दन्तः
मम् + लृवर्णः	मम् +अल् + वर्णः	ममल्वर्णः

इस प्रकार आपने गुण सन्धि में गुणसंज्ञक तीनों वर्णो के विषय में विशेष रूप से अध्ययन किया गया।

लोप विधायक विधि सूत्र:-

लोपः शाकल्यस्य 8 । 3 । 19 ।।

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ।।

अर्थ - अश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो, अवर्ण पूर्व वाले पदान्त यकार वकार को विकल्प से लोप होता है। जिन यकार वकार का लोप करना है वह पदान्त में हो अर्थात् पद के अन्त में हो और उस यकार वकार से पूर्व में अवर्ण हो तथा यकार के बाद अश् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ´ म ड. ण न भ थ ढ ध ज ब ग ड द) का वर्ण हो तब य तथा व का लोप होता है।

पदान्त किसे कहते है जिनके अन्त में सुबन्त अर्थात् सु, औ, जस, अम् औट्, शस् इत्यादि इक्कीस प्रत्यय हो उन्हे सुबन्त कहते है जिसको हम शब्द रूप कहते है।

तिङन्त - जिसके अन्त में तिप् तस् झि इत्यादि अट्ठारह प्रत्यय हो उन्हें हम तिङन्त कहते है अर्थात् उसको धातु रूप कहते है जैसे भवति गच्छति इत्यादि।

हर इह:- हरे + इह यहां पर हरे जो शब्द है वह सम्बोधन के एक वचन का रूप है अतः उसकी पद संज्ञा होती है अर्थात् वह पदान्त है। यहां पर हरे में जो रे में ए है। वह ए एच् प्रत्याहार में आता है और पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है इह का इ इसलिए एचोऽयवायावः सूत्र से ए के स्थान में अय् आदेश होकर हर् अय् + इह बना। र् में अय् का अकार मिलकर हरय् + इह बना। अब यहाँ हरय् + इह में अश् प्रत्याहार का वर्ण है इह में इ। तथा पूर्व में पदान्त यकार है, हरय् में य्। उस य के पूर्व में अ वर्ण है र में अकार है। इसलिए लोपः शाकल्यस्य सूत्र से य् का लोप होकर हर + इह प्रयोग सिद्ध होता है यहाँ पर लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप होगा उस पक्ष में हर + इह बना। और जिस पक्ष में लोप नहीं होगा, उस पक्ष में हरय् + इह बना। और वर्ण सम्मेलन होकर हरयिह प्रयोग सिद्ध होता है। हर + इह इस स्थिति में आद गुणः से अकार और इकार मिलकर एकार गुण होना चाहिए। इस गुण को निषेध करने के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

अधिकार सूत्र-

पूर्वत्राऽसिद्धम् 8 । 2 । 1 ।।

सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्।

हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।।

अर्थ:- सात अध्यायों के प्रति त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते है और त्रिपादी में भी पूर्व शास्त्र के प्रति पर शास्त्र असिद्ध होते हैं।

व्याख्या:- पाणिनि अष्टध्यायी व्याकरण शास्त्र का अत्यन्त महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है। पाणिनि अष्टाध्यायी में लगभग तीन हजार नव सौ पचहत्तर सूत्र है। इन्हीं सूत्रों के उपर व्याकरण शास्त्र का निर्माण किया गया। महामहोपाध्याय श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित ने प्रयोगों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का क्रम से निर्माण करके सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। पाणिनि अष्टाध्यायी में आठ अध्याय है। प्रतिध्याय में चार पाद है इन्हीं बत्तीस पादों में सभी सूत्र समाहित है।

इस प्रकार आठ वे अध्याय का दूसरा तीसरा चौथा पाद त्रिपादी है और सात अध्याय एक पाद सपादसप्ताध्यायी अर्थात् सवा सात अध्याय है।

त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी के मध्य यह निर्णय करता है कि समस्त सपादसप्ताध्यायी के प्रति समस्त त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं। अर्थात् सामान जगहों पर सपादसप्ताध्यायी के सूत्र एवं त्रिपादी के सूत्र प्रवृत्त होते है। और त्रिपादी में पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। यथा आद्गुणः सवासात् अध्यायों के अन्तर्गत् सूत्र है। (छठे अध्याय प्रथम-पाद का चौरासिवॉ (84) सूत्र है) इसके दृष्टि में आठवें अध्याय के तीसरे पाद में वर्तमान लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है, अतः आद्गुणः सूत्र लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा किये गये यकार के लाप को नहीं देखता अतः इसे तो अब भी यकार सामने पड़े हुऐ दिखाई दे रहा है। अवर्ण से परे यकार के दिखाई देने से अच् प्रत्याहार पर में न होने के कारण आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण एकादेश नहीं होगा, तो हर इह ऐसा ही रहेगा और जिस पक्ष में यकार का लोप लोपः शाकल्यस्य से नहीं होगा उस पक्ष में हरयिह ऐसा प्रयोग सिद्ध होता हैं।

लोपः शाकल्यस्य सूत्र यकार वकार दोनों को लोप करता है यकार के लोप का उदाहरण तो आपने हर इह बनाया। वकार का उदाहरण सक्षेप में:-

विष्णो इह:- विष्णो + इह यहां विष्णो शब्द सम्बोधन। एक वचन का रूप है इसलिए यह पदान्त है। अब एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा ओकार के स्थान में अव् आदेश होकर विष्ण् + अव् + इह बना। विष्ण् में ण् में अव् का अकार मिलकर विष्णव् + इह बना। अब यहाँ पदान्त वकार का वर्ण है विष्णव् में व् तथा पर में अश् प्रत्याहार का वर्ण है इह का इकार इसलिए लोपः शाकल्यस्य सूत्र के द्वारा वकार का लोप होकर विष्ण + इह बना। अब यहां पर आद् गुणः सूत्र से पूर्व में ण में अकार तथा पर में इह का इकार इन दोनों वर्णो के स्थान में गुण रूप एकादेश होना चाहिए किन्तु पूर्वत्रासिद्धम सूत्र द्वारा आद गुणः की दृष्टि में लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा वकार का लोप नहीं हुआ है। इसलिए आद्गुणः सूत्र द्वारा वकार का दिखायी देने के कारण गुण नहीं हुआ। लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप होगा उस पक्ष में विष्ण इह रूप बनेगा। जिस पक्ष में लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्ण्व् + इह बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णविह प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
हरे + इह	हर् + अय् + इह	हर इह
विष्णो + इह	विष्ण् + अव् + इह	विष्ण इह
पुत्रौ +आगच्छतः आगच्छत	पुत्र + आव् + आगच्छत	पुत्रा
गुरौ + आयाते	गुर् +आव् + आयते	गुरा आयते
भानौ + अपि	भान् + आव् + अपि	भाना अपि
बने + ऋषयः	वन् + अय् + ऋषयः	वन ऋषयः
ते + इच्छन्ति	त् + अय् + इच्छन्ति	त इच्छन्ति
रवौ + उदिते	रव् + आव् + उदिते	रवा उदिते
गृहे + आसीत्	गृह + अय् + आसीत्	गृह आसीत्
करौ + एतौ	कर् + आव् + एतौ	करा एतौ

अभ्यास प्रश्न

1. गो अग्रम किस सूत्र का उदाहरण है ?
2. प्लुत किसे कहते है ?
3. हरी एतौ में कौन सा सूत्र लगा है ?
4. अदस् शब्द के मकार से परे इत् ऊत् की क्या होती है ?
5. चादियों का द्रव्य अर्थ न हो तो उनकी क्या होती है ?
6. आङ् को छोड़कर एक मात्र की क्या होती है?
7. ओकार अन्तवाला निपात की क्या होती है?
8. चक्रि अत्र में यहाँ पर पदान्त इक् है?
9. असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त इक् को क्या होता है ?
10. ह्रस्व विधान सामर्थ्य से कौनसी सन्धि नहीं होती है ?

11. चक्रिअत्र यह किस सूत्र का उदाहरण है?

12. गौरी +औ में यहां पर इकोऽसवर्णे से ह्रस्व क्यों नहीं हुआ ?

13.अच से परे रेफ और हकार ओर उस के रेफ और ह से परे यर को क्या होता है ?

14. असवर्ण अच् परे होने पर पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता है कहां पर ?

15. ऋकार परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से क्या होता है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. गो अग्रम में सन्धि हुई है :-

(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) प्रकृतिभाव (घ) अयादि

2. प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर होता है:-

(क) प्रकृतिभाव (ख) पररूप (ग) पूर्वरूप (घ) गुण

3. इदन्त, उदन्त और द्विवचन की होती है:-

(क) प्रगृह्य संज्ञा (ख) प्लुत संज्ञा (ग) ह्रस्व संज्ञा (घ) दीर्घ संज्ञा

4. ब्रह्म ऋषिः किस सूत्र का उदाहरण है:-

(क) आदगुणः (ख) अकः सवर्णेदीर्घः (ग) ऋत्यकः (घ) अनचि च

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके है कि अयादि संधि किसे कहते हैं तथा अयादि संधि का विधान कहॉ और किस प्रकार किया जाता है, साथ ही गुण संधि से सम्बन्धित सूत्रों तथा उनसे बनने वाले प्रयोगो को कैसे सिद्ध किया जाता है। इस इकाई में आपने अयादेश, अवादेश, व गुण संज्ञा विधायक विधि सूत्रों का अध्ययन किया है। यदि अवर्ण से परे अच् हो तो पूर्व और पर के स्थान पर गुण एकादेश होता है। उपेन्द्र: और गंगोदकम् आदि इसके उदाहरण है। जो अच उपदेश अवस्था में अनुनासिक होता है उसकी इत् संज्ञा होती है। पाणिनि ने अनुनासिक धर्म वाले वर्णो को परम्परया बताया है। लोप का अतिरिक्त विधान शाकल्य ऋषि के मत में भी प्रशस्त है। लोप: शाकल्यस्य इसका सूत्र है। अन्त में पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र की व्याख्या करके इकाई का वर्ण्य विषय समाप्त है। महामहोपाध्याय श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित ने प्रयोगों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का क्रम से निर्माण करके सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। पाणिनि अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं। प्रतिध्याय में चार पाद है इन्हीं बत्तीस पादों में सभी सूत्र समाहित है।

इस प्रकार आठवे अध्याय का दूसरा तीसरा चौथा पाद त्रिपादी है और सात अध्याय एक पाद सपादसप्ताध्यायी अर्थात् सवा सात अध्याय है। त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी के मध्य यह निर्णय करता है कि समस्त सपादसप्ताध्यायी के प्रति समस्त त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं। अर्थात् सामान जगहों पर सपादसप्ताध्यायी के सूत्र एवं त्रिपादी के सूत्र प्रवृत्त होते है। और त्रिपादी में पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। यथा आद्गुणः सवासात् अध्यायों के अन्तर्गत् सूत्र है। (छठे अध्याय प्रथम-पाद का चौरासिवॉ (84) सूत्र है) इसके दृष्टि में आठवें अध्याय के तीसरे पाद में वर्तमान लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है, अतः आद्गुणः सूत्र लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा किये गये यकार के लाप को नहीं देखता अतः इसे तो अब भी यकार सामने पड़े हुऐ दिखाई दे रहा है। अवर्ण से परे यकार के दिखाई देने से अच् प्रत्याहार पर में न होने के कारण आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण एकादेश नहीं होगा, तो हर इह ऐसा ही रहेगा और जिस पक्ष में यकार का लोप

लोपः शाकल्यस्य से नहीं होगा उस पक्ष में हरयिह ऐसा प्रयोग सिद्ध होता हैं। अत: इस इकाई के अध्ययन से आप इसमें सीखे हुये प्रयोगों को सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्ध कर सकेगें।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
गोअग्रम्	गाय का अग्र भाग
गौः	गाय का
गवेन्द्रः	सांड़ , बड़ा बैल
हरी एतौ	ये दोनों हरि, घोड़े, बन्दर है
विष्णू इमौ	ये दोनों विष्णु हैं
अमी ईशाः	ये दोनों स्वामी हैं
रामकृष्णावमू आसाते	राम कृष्ण दोनों बैठे हैं।
इ इन्द्रः	यह इन्द्र है
उ उमेशः	यह शिव है
आ एवं नु मन्यसे	तुम ऐसा मानते हो
आ एवं किल तत्	हाँ यह ऐसा ही था
ओष्णम्	कुछ गरम कुछ ठण्डा
अहो ईशाः	अहो ये स्वामी हैं
किम्वुक्तम्	क्या कहा
चक्रि अत्र	विष्णु यहाँ है
वाप्यश्वः	बावड़ी में घोड़ा

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (सर्वत्र विभाषा गोः)
2. (त्रिमात्रिक को प्लुत कहते है)
3. (इदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्)
4. (प्रगृह्य संज्ञा)
5. संज्ञा
6. (प्रगृह्य संज्ञा)
7. (प्रगृह्य संज्ञा)
8. (क्रिमेंड्)
9. (ह्रस्व)
10. (स्वर सन्धि)
11. (इकोऽसवर्णेकल्यस्य ह्स्वश्च)
12. (पदान्त न होने से)
13. (द्वित्व)
14. (समास में)
15. (ह्रस्व)

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (ग)

3.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र एवं डॉ देवेश कुमार मिश्र प्राच्य भारती प्रकाशन गोरखपुर

3.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. तपरस्तत्कालस्य सूत्र की व्याख्या कीजिये।
2. लोपविधायक विधि सूत्र को समझाइये।
3. र् प्रत्याहार को उदाहरण सहित बताइये।
4. गुण संज्ञा की परिभाषा करते हुये नायक: प्रयोग की सिद्धि कीजिये।

इकाई-4 वृद्धि एवं दीर्घ सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 वृद्धि एवं दीर्घ सन्धि

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने अयादेश और अवादेश आदि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आप वृद्धि संधि एवं दीर्घ सन्धि से सम्बद्ध सूत्रों व उनसे जुड़े हुये प्रयोगों की सिद्धि सीखेंगे।

आ ऐ औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते है। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र संज्ञक होते है। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र के द्वारा भी वृद्धि करना हो तो वहां पर आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि के रूप में उपस्थित होते हैं। इस इकाई में क्रियावाची भू आदि धातु में की संज्ञा वाचकता व टि संज्ञा के विधायक विधि सूत्र का वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

अत: इस इकाई के अध्ययन से आप वृद्धि, पररूप, सवर्ण दीर्घ, पूर्व रूप सन्धियों को समझाते हुये उनमें आये हुए प्रयोगों को सिद्ध करेंगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- वृद्धि सन्धि के विषय में बताये गये नियमों को समझायेंगे।
- उपसर्गों का वर्णन कर सकेंगे।
- पररूप सन्धि के विषय में अवगत करायेंगे।
- टि संज्ञा का परिचय दे सकेंगे।
- दीर्घ सन्धि के सूत्रों की व्याख्या करेंगे।
- पूर्वरूप सन्धि के नियमों को बतायेंगे।

4.3 वृद्धि सन्धि

वृद्धिरादैच् 1 । 1 । 1 ।। आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ।।

अर्थ - आ ऐ औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते है। अन्यत्र भी अन्य सूत्र वृद्धि संज्ञक होते है। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र के द्वारा भी वृद्धि करना हो तो वहां पर आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि के रूप में उपस्थित होते है। अर्थात् जहां कहीं भी वृद्धि शब्द का उच्चारण करना हो तो, उससे आ ऐ औ ही समझे जायेंगे। वृद्धिरादौच यह सूत्र पाणिनि अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र है अर्थात् पहले अध्याय के पहले पाद का पहला सूत्र है। जिस प्रकार गुण शब्द से अ, ए, ओ तीन वर्ण ग्रहण होते हैं उसी प्रकार वृद्धि शब्द से आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण ग्रहण किये जायेगें। इस वृद्धि संज्ञक वर्ण का फल अगले सूत्र में दिखाते हैं।

वृद्धिरेचि 6 । 1 । 88 ।।आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् । गंगौघः देवैश्वेर्यम्। कृष्णौत्कण्ठ्यम ।।

अर्थ - अवर्ण से एच् प्रत्याहार ए, ओ, ऐ, औ का वर्ण पर (बाद में) हो तो, पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है। यह सूत्र पूर्ण और पर दो वर्णो के स्थान पर एक ही वर्ण आदेश

होने का विधान करता है पूर्व में अवर्ण हो और पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो पूर्व और पर दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक आ, ऐ, औ ये तीनों वर्ण एक साथ प्राप्त होता है। यह सूत्र आद गुणः का बाधक है। आद्गुण सूत्र अधिक वर्ण को मानकर गुण करता है। अर्थात् अच् प्रत्याहार को मानकर गुण करता है और वृद्धि रेचि सूत्र कर्म वर्ण को मानकर गुण करता है अर्थात् एच् प्रत्याहार मानकर वृद्धि करता है। अच् प्रत्याहार का वर्ण है अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ तथा एच् प्रत्याहार का वर्ण है ए, ओ, ऐ, औ अतः अच् प्रत्याहार में एच् प्रत्याहार का वर्ण समाहित है अर्थात् अच् प्रत्याहार में एच् प्रत्याहार स्वयं पढ़ा गया है। इसलिए जहां वृद्धि होगी वहां अपने आप आद गुणः सूत्र पहले से प्राप्त है उसका बोधकर वृद्धि रेचि से वृद्धि होती है क्योंकि दोनों सूत्रों में बाध्य बाधक भाव सम्बन्ध है। अर्थात् जो अधिक में कहा गया है वह बाध्य है और जो कम में कहा गया है वह बाधक है तो बाध्य हो गया आद्गुणः और बाधक हो गया वृद्धि रेचि सूत्र ।

कृष्णैकत्वम् - कृष्ण + एकत्वम् यहां पर अवर्ण से अच् परे होने के कारण आद् गुणः से गुण की प्राप्ति हुई तो उस गुण को बाधक वृद्धि रेचि यह सूत्र लगा। यहां अवर्ण है कृष्ण में ण में अ तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण है एकत्वम् का ए ! अ + ए इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि संज्ञक आदेश वाले वर्ण आ, ए, औ, ये तीनों एक साथ प्राप्त हुए। इसलिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र द्वारा स्थान मिलाने पर कृष्ण में णकार में जो अकार है उसका स्थान कष्ठ है तथा पर मे एकत्वम् का जो एकार है उसका स्थान कण्ठतालु है स्थानी ओ अ और ए है इन दोनों का स्थान कण्ठातालु है अब आदेश वाला वर्ण्र तीन आ, ऐ, औ है उसमें कौन सा वर्ण कण्ठतालु वाला है? खोजा गया तो इन तीनों वर्णो में से ऐ कण्ठतालु वाला वर्ण है अत ऐ आदेश हुआ। कृष्ण में ण में अकार तथा एकत्वम के एकार इन दोनों के स्थान पर ए आदेश होकर कृष्ण् + ऐ + कत्वम् बना। वर्ण सम्मेलन होने पर ण में ए जाकर मिल गया तो कृष्ण कत्वम् प्रयोग सिद्ध होता है। यह तो एच् प्रत्याहार में से केवल ए का उदाहरण दिया गया। अब औकार का उदाहरण क्या होगा? आगे देखे।

गंगौधः- गंगा+ओधः यहाँ पर पूर्व के समान प्रक्रिया होनी है। यहां अवर्ण है गंगा में आकार और पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण है ओधः का ओ। आकार का स्थान कण्ठ है तथा ओकार का स्थान ओष्ठ है अब यहां तीनों वर्णो से कण्ठ ओष्ठ वाला वर्ण औ है इसलिए आ तथा ओ इन दोनों वर्णो के स्थान पर औ आदेश होता है। गंगा+ औ + ध् अतः ग्ड. में और मिलकर गंगौधः प्रयोग सिद्ध होता है। ऐ परे होने का उदाहरण आगे देखे।

देवैश्वर्यम् - देव + ऐश्वर्यम् यहां पर पूर्व में अकार तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण ऐश्वर्यम् का ऐ परे होने के कारण अ + ए दोनों के स्थान पर कण्ठ तालु वाला वर्ण वृद्धि रेचि सूत्र से वृद्धि संज्ञक वर्ण ऐ आदेश होता है। देव् + ऐ + श्वर्यम् अब यहां पर वकार में ऐकार मिलकर देवैश्वर्यम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

कृष्णौत्कण्ठयम्:- कृष्ण +औत्कण्ठयम् में पूर्व में अकार तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण औंकार है दोनों का स्थान कण्ठ-ओष्ठ है यहां पर भी आद्गुणः से गुण की प्राप्ति थी उसको बांधकर वृद्धि रेचि सूत्र द्वारा अ तथा और के स्थान पर कण्ठ औष्ठ स्थान वाला वर्ण औ आदेश होकर कृष्णोत्कष्ठयम् प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार एच् प्रत्याहार के चारों वर्णो का उदाहरण दिया गया।

एत्येधत्यूठ्सू 6 । 1 । 89 ।।

अवर्णादिजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिकारेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवाद: उपैति। उपैधते। प्रष्ठोहः। एजाद्योः किम् ? उपेतः । मा भवान्प्रेदिधत्

अर्थ - अवर्ण से एच् प्रत्याहार का वर्ण हो जिसके आदि में ऐसे इण् धातु या एध् धातु अथवा उठ के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान वृद्धि संज्ञक एक आदेश होता है यह सूत्र एङिपररूपम् तथा आद् गुणः का बाधक है ।

उपैति - उप + एति ('एति' यह पद इण् गतौः धातु के लट् लकार के प्रथम पुरूष एक वचन का रूप है। यहां उप में प में जो अकार है वह अवर्ण है उस अवर्ण से परे एच् प्रत्याहार का वर्ण आदि में है। इण् गतौ धातु का है। एति का एकार। पूर्व में अकार पर में एकार होने से इस सूत्र से दोनों वर्णो के स्थान वृद्धि संज्ञक तीनों वर्ण प्राप्त है। स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से कण्ठ और तालु स्थान वाला वर्ण ऐ होता है क्योंकि प में जो अकार है उसका स्थान कण्ठ है तथा एति का जो एकार है उसका स्थान तालु है इसलिए उप में प अ तथा एति का ए इन दोनों के स्थान में ऐ वृद्धि रूप का एकादेश होकर उप् + ऐ + ति बना। प में ऐ मिलाने से उपैति प्रयोग सिद्ध होता है।

उपैधते - उप + एधते यह पद् एध् वृद्धौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरूष एक वचन का रूप है। यहां पर उप में प में अ वर्ण से परे एध् धातु का एच् प्रत्याहार का आदि में वर्ण है एध का ए इसलिए पूर्व में अकार तथा पर में एकार इन दोनों वर्णो के स्थान वृद्धि संज्ञक वर्ण ऐ होकर उप् ऐ +धते बना। प में ऐ के मिलने से उपैधते प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रष्ठौहः - प्रष्ठ + ऊह (यहां पर उठ् है। यह कैसे है? यह हलन्तपुलिंग प्रकरण में वाह उठ सूत्र को देखे) यहां पर सूत्र लगा एत्येधत्यूठ्सु यह सूत्र कहता है कि अ वर्ण से उठ् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि संज्ञक वर्ण एक आदेश होता है अवर्ण है पूर्व में प्रष्ठ में ठ में अ पर में उहः यह उठ संज्ञक वर्ण है। अतः पूर्व में अ पर में उकार है। अ: उ दोनों वर्णो के स्थान पर स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से वृद्धि संज्ञक वर्ण औ आदेश होता है अ + उ = औ होकर प्रष्ठ् + औ + हः बना। ठ् में औ के मिलने से प्रष्ठौहः प्रयोग सिद्ध होता है।

एजाद्यौः किम् ? - अब यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सूत्र में इण और एध् धातु में एजादि क्यों कहा गया? अर्थात् एजादि अर्थात् एजादि नहीं कहते तो कौन सी हानि हो जाती? इसका उत्तर यह है कि एजादि नहीं कहते तो उपेतः और प्रेधित् प्रयोगों में वृद्धि हो जाती ।अनिष्ट होने लगता है यथा+ उपेतः (वे दोनो पास जाते है) उप+इतः (इतः यह पद इण् गतौ धातु का क्तान्त रूप है अथवा लट् लकार के प्रथम पुरूष द्विवचन का रूप है।) यहाँ अवर्ण से परे इण् धातु तो है, पर एच् प्रत्याहार का वर्ण आदि में नही है । अतः एत्येधत्यूठ्सू सूत्र से वृद्धि नही होगा, तो आद्गुणः से गुण होकर उपेतः यह प्रयोग सिद्ध होता है । इसी प्रकार प्रेदिधत प्र + इदिधत (आप अधिक न बढ़ावे) इदिधत यह णिजन्त एध्धातु के लड़् लकार के प्रथम पुरूष एकवचन का रूप है। यहाँ पर अवर्ण से परे एध् धातु तो है, पर एच् प्रत्याहार का वर्ण पर में न होने से इस सूत्र से वृद्धि नहीं होती है। अतः आद् गुण से गुण होकर प्रेदिधत यह प्रयोग स्पष्ट रुप से सिद्ध किया जाता है।

सूत्र में एति और एधति से इण् और एध धातु का ही ग्रहण समझना चाहिये। ये दोनों उदाहरण एत्येधत्यूठ्सु सूत्र का प्रत्युदाहरण है। विपरीत उदाहरणो को प्रत्युदाहरण कहते हैं।

वा ४- अक्षादुहिन्यामुपसंख्यानम् ।। अक्षौहिणी सेना ।।

अर्थ -अक्ष शब्द के अन्त्य अवर्ण से 'ऊहिनी' शब्द का आदि ऊकारे के परे होने से पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि रुप एकादेश होता है। ऐसा अधिक वचन बोलना चाहिये।

अक्ष+ऊहिनी यहाँ पर अवर्ण है अक्ष के अ, पर मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है ऊहिनी का ऊकार, पूर्व और पर इन दोनों के स्थान में आदु णः से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द परे होने के कारण अक्ष में अ, तथा ऊहिनी का ऊकार, इन दोनो के स्थान पर वृद्धि रुप एकादेश औ होकर अक्ष्, औ+हिनी बना। वर्ण सम्मेलन होकर अक्षौहिनी प्रयोग बना। तथा **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** इस सूत्र से नकार को णकार करने पर अक्षौहिणी प्रयोग सिद्ध होता है।

५ - प्रादूहोढोढयेषैष्येषु।

प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। पैष्यः॥

अर्थ -प्र शब्द के अकार से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष तथा एष्य शब्दों के आदि में अच् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश रूप होता है।

प्रौहः प्र+ऊहः। यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर प्र शब्द का अकार प्र में अ तथा पर में ऊह शब्द परे होने पर अर्थात् पूर्ण में प्र में अ तथा पर ऊहः अ + ऊ दोनों के स्थान पर वृद्धि रुप एकादेश होकर प्र+औ+हः वर्ण सम्मेलन होकर प्रौहः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रौढः प्र + ऊढः। यहाँ पर भी आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर प्र शब्द का अकार से परे ऊढ परे होने के कारण पूर्व में अकार तथा पर में ऊढ का ऊकार अर्थात अ+ऊ इन दोनो के स्थान पर इस वार्तिक द्वारा वृद्धि औ होकर प्र+औ+ढः बना। वर्ण सम्मेलन करने के बाद प्रौढः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रैषः प्र + एष + यहाँ पर एङि' पररुपम् सूत्र से पररुप प्राप्त होता है उस पररुप को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा प्र में अ तथा पर में एषः का एकार होने के कारण अ तथा एकार दोनों के स्थान में वृद्धिरुप एकादेश होकर प्र्+ऐ+षः बना। तथा वर्ण सम्मेलन होकर प्रैषः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रैष्यः- प्र + एष्यः यहाँ पर एङि पररुपम् सूत्र से पररुप प्राप्त है। इस पररुप को बाधकर इस वार्तिक द्वारा यहाँ पर प्र मे जो अकारं है उस अकार से एष्य का एकार पर में होने के कारण पूर्व में अ पर में ए, इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि एकादेश होकर प्र्+ऐ+ष्यः बना। वर्ण सम्मेलन होने के बाद प्रैष्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक- ऋते च तृतीया समासे, सुखेन ऋतः सुखार्तः तृतीयेति किम्? परमर्तः

अर्थः - अवर्ण से ऋत शब्द के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है। तृतीया समास में।

सुखार्तः सुखेन+ऋतः इस विग्रह में तृतीया तत्पुरुष समास होकर सुख+ऋतः बना। अब यहाँ आद् गुण से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर अवर्ण है सुख में अकार में अकार तथा पर में ऋतः का ऋट होने के कारण अकार तथा ऋकार दोनों के स्थान पर उरण रपरः की सहायता से आर वृद्धि होकर सुख्+आर्+तः बना। सुख में ख में आर का आ मिल कर सुखार्+तःबना। तके उपर रकार का उर्ध्व गमन हो जाने के कारण सुखार्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

अब विचार यहाँ यह अपस्थित होता है कि अवर्ण से ऋत परे होने पर वृद्धि विधान समास में ही करना चाहिये। क्योंकि सुखेन ऋतः यहाँ पर लौकिक विग्रह में वृद्धि न होकर गुण एकादेश होने से सुखेनर्तः प्रयोग बनना चाहिए। परन्तु तृतीया का ही समास हो अन्य विभक्तियों का समास न हो इस कथन से क्या प्रयोजन है? क्योंकि समास मात्र में ही वृद्धि का विधान न कर दिये जाये इसका उत्तर यह है कि यदि तृतीया न कहेंगे तो समास मात्र में ही वृद्धि का विधान करेंगे तो परमश्चासौ+ऋतः = परम+ऋतः यहाँ पर गुण न होकर वृद्धि हो जायेगी, क्योंकि समास तो यहाँ भी हुआ। किन्तु समास तो हुआ, पर तृतीया तत्पुरुष समास नहीं हुआ है। इस लिए अकार ऋकर दोनों के स्थान में गुण एकादेश होकर परमर्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

वा 6 प्र-वत्सतर- कम्बल- वसनार्ण दशानाम ऋणे।। प्रार्णम् । वत्सतरार्णम् इत्यादि ।।

अर्थ - प्र,वत्सतर,-कम्बल,-वसनार्व ऋण तथा दश, इन शब्दों के अन्त्य अवर्ण से परे ऋण शब्दो के आदि में ऋवर्ण परे हो तो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है।

प्रार्णम् - प्र+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था, उस गुण को बाधकर प्रवत्सरकम्बलवसनार्णदशानामृणे इस वार्तिक द्वारा पूर्व में प्र में अकार तथा पर में ऋणम् का ऋटकार अर्थात् अ+ऋ+इन दोनों वर्णो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर प्र्+आर्+णम् बना। प्र में आर् का आकार तथा र् का ण के उपर चले जाने से प्रार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वत्सतरार्णम् - वत्सतर+ऋणम् यहाँ पर आद गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बांधकर प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा वत्सतर का अकार तथा ऋटणम् के ऋकार अर्थात् अ+ऋ इन दोनों वर्णो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर वत्सतर्+आर +णम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर वत्सतरार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

कम्बलार्णम्: कम्बल+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणःसे गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर प्रवत्सरकम्बलवसनाणदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा यहाँ कम्बल में ल में अकार तथा पर मे ऋणम् के ऋकार अर्थात दोनों वर्णो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर कम्बल आर्णम् बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर कम्बलावर्णम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

वसनार्णम् - वसन+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणःसे गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर प्रवत्सतर कम्बल-वसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा वसन मे न मे अकार तथा पर मे ऋणम् का ऋ अर्थात् अ+ऋ दोनों के स्थान पर वृद्धि आर् होकर वसन्+आर+णम बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर वसनार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋणार्णम् – ऋण ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर प्रवत्सतर कम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा ऋण मे ण मे जो अकार तथा पर मे ऋणम का ऋकार होने के कारण अर्थात् अ ऋ इन दोनो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर ऋण आर् णम बना वर्णसम्मेलन होकर ऋणार्णम प्रयोग सिद्ध होता है।

दशार्णम् दश + ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक द्वारा यहाँ पर पूर्व मे दश मे शकार में जो अकार, तथा पर मे ऋणम् का ऋकार होने के कारण वृद्धि रुप एकादेश होकर दश+आर्+णम् बना । उसके बाद वर्णसम्मेलन होकर दशार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

वृद्धि सन्धि का उदाहरण-

विग्रह	आदेश	सन्धि

कृष्ण+एकत्वम्	कृष्ण् ऐकत्वम	कृष्णैकत्वम
गंगा+ओघः	गंग+औ+घः	गंगौघः
देव+ऐश्वर्यम्	देव्+ऐ+श्वर्यम्	देवैश्वर्यम्
कृष्ण+औत्काण्ठ्यम	कृष्ण्+औ+त्कण्ठ्यम	कृष्णौत्कण्ठ्यम्
दश+एते	दश्+ऐ+ते	दशैते
जन+एकता	जन्+ऐ+कता	जनैकता
यथा+एव	यथ्+ऐ+व	यथैव
तथा+एव	तथ्+ऐ+व	तथैव
तण्डुल+ओदन	तण्डुल्+औ+दनः	तण्डुलौदनः
राम+एव	राम्+ऐ+व	रामैव
कृष्ण+औत्सुक्यम	कृष्ण्+औ+त्सुक्यम्	कृष्णौत्सुक्यम्
नृप+एश्वर्यम्	नृपर्+ऐ+श्वयम्	नृपैश्वर्यम्
महा+औषधम	मह्+औ+षधम्	महौषधम्
राजा+एषः	राज+ऐ+षः	राजैषः
वीर+एक	वीर्+ऐ+कः	वीरैकः
एक+एव	एक्+ऐ+व	एकैव
तदा+एवम्	तद्+ऐ+वम्	तदैवम्
अत+एकम्त्यम्	अत्+ऐ+कमत्यम्	अतैकमत्यम्
बाल+एषा	बाल्+ऐ+षा	बालैषा
महा+ओजसः	महा+औ+जसः	महौजसः
दीर्घ+एकारः	दीर्घ+ऐ+कारः	दीर्घैकारः
मा+एवम्	म्+ऐ+वम्	मैवम्
चित्+एकाग्रम्	चित्+ऐ+काग्रम्	चितैकाग्रम्
प्लुत+ओकारः	प्लत्+औ+कारः	प्लुतौकारः
एक+एकम्	एक+ऐ+कम्	एकैकम्
तव+ओकः	तव+औ+कः	तवौकः
विम्ब+ओष्ठी	विम्ब+औ+ष्ठीः	विम्बौष्ठीः
पुत्र+एकः	पुत्र+ऐ+कः	पुत्रैकः
मया+एव	मय्+ऐ+व	मयैव
अत्य+एव	अत्य् ऐ+व	अत्यैव

वृद्धि सन्धि में एत्येधत्युठसु सूत्र का उदाहरण

प्र+ऊह	प्र+औ+हः	प्रौहः
प्र ऊ ढः	प्र्+औ+ढः	प्रौढः
प्र+ऊढि	प्र्+औ+ढिः	प्रौढिः
प्र+एष्य	प्र्+ऐ+ष्य	प्रैष्यः
उप+ति	उप्+ऐ+ति	उपैति
उप्+एधते	उप्+ऐ+धते	उपैधते

प्रष्ठ+उहः	प्रष्ठ्+औ+हः	प्रष्ठौहः
अक्ष+उहिनी	अक्ष्+औ+हिनी	अक्षौहिनी
सुख+ऋतः	सुख्+आर्+तः	सुखार्तः
दश्+ऋणः	दश्+आर्+णः	दशार्णः
तव+एति	तव्+ऐ+ति	तवैतिः
अव+एधते	अव्+ऐ+धते	अवैधते
सम+एति	सम्+ऐ+ति	समैति

उपसर्ग संज्ञा का करने वाला सूत्र

उपसर्गाः क्रिया योगे 11/4/59।।

प्रादयः क्रिया योगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

प्र,परा,अप,सम्,अनु,अव,निस,निर,दुस,दुर,वि,आङ्,नि,अधि,अपि,अति,सु,उत्,अभि,प्रति,परि,उप् , प्र, एते, प्रादयः।

अर्थ- क्रिया के साथ योग होने पर प्र आदि जो बाईस उपसर्ग है। उनकी उपसर्ग संज्ञा होती है। अर्थात वे उपसर्ग कहलाते है। ये जो 1.प्र ।/ 2.परा।/3.अप/4.सम/5.अनु/6.अव/7.निस्/8.निर/9.दु/10.दुर्/11.वि/12आड्./13.नि/14.अधि/15.अपि/16.अति/17.सु/18.उद्/19.अभि/20.प्रति/21.परि/22.उप ये बाईस उपसर्ग है। इन उपसर्गा का अर्थ नहीं होता है। फिर भी धातु के साथ इनका योग कर दिया जाता है तो भिन्न भिन्न अर्थो को निकालते है। अर्थात् ये अर्थो के वाचक न होते हुए भी द्योतक होते है। स्वतन्त्र रुप से इनकी निपात संज्ञा होती है। और क्रिया के साथ योग होने पर उपसर्ग संज्ञा भी होती है। और इनको गतिश्च सूत्र से गति संज्ञा भी होती है। इस लिये इनकी उपसर्ग संज्ञा और गति संज्ञा दोनों होती है। इनका प्रयोग हमेशा धातु के पहले प्रयोग किया जाता है। जैसे- भवति धातु है उसके पहले प्र उपसर्ग का प्रयोग करके प्रभवति बनता है।

धातु संज्ञा का विधान करने वाला सूत्र -

भूवादयो धातवः 1/3/1।।

क्रिया वाचिनो भ्वादयो धातु संज्ञा स्युः।

अर्थ - क्रिया वाचक भू आदि की धातु संज्ञा होती है।

यह सूत्र भू आदि की धातु संज्ञा करता है। धातु किसे कहते है जो भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि गणों में अर्थ निर्देशन पूर्वक पढें गये हैं और उनका अर्थ क्रिया अर्थात व्यापार हो, उसे धातु कहते है। जैसे- पठति में पठ् धातु है यह भ्वादि गण में पठित भी है, और पढ़ना यह क्रिया वाचकता रुप अर्थ भी है, पठ् यह धातु है और पठति, गच्छति इत्यादि क्रिया रुप व्यापार है

वृद्धि संज्ञा का विधान करने वाला विधि सूत्र है।

उपसर्गादृति धातौ 6/1/ 91//

अवर्णान्ताद्, उपसर्गाद, ऋकारादौ, धातौ परे वृद्धि रेकादेशः स्यात्। प्राच्र्छति

अर्थ - अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकार हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में होतों पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है। यह सूत्र कहता है कि पूर्व में उपसर्ग हो, उस उपसर्ग के अन्त में अ हो तथा पर में ऋकारादि धातु हो अर्थात् पूर्व में अकार तथा पर में ऋकार दोनों के स्थान में वृद्धि रुप एकादेश होता है।

प्राच्छर्ति - प्र+ऋच्छति यहाँ पर आद् गुण से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा उपसर्गादृति धातौ इस सूत्र से यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है। प्र में अ, तथा पर में ऋकारादि धातु है। ऋच्छति का ऋ, अर्थात पूर्व में अ, पर में ऋ, इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि आर् होकर प्र+आर+च्छति बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्राच्र्छति प्रयोग सिद्ध होता है।

वृद्धि सन्धि में उपसर्गा दृति धातौ सूत्र का उदाहरण -

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
प्र+ऋच्छति	प्र्+आर्+च्छति	प्राच्र्छति
अप+ऋच्छति	अप्+आर्+च्छति	अपाच्र्छति
उप+ऋच्छति	उप्+आर्+च्छति	उपाच्र्छति
अव+ऋ´जते	अव्+आर्+´जते	अवार्जते
परा+ऋद्ध्नोति	पर्+आर्+द्ध्नोति	परार्द्ध्नोति

पररूप सन्धि

पररुप विधायक विधि सूत्र

एङि पररुपम् 6/1/94//

आद् उपसर्गाद् एङादौ धातौ परे पररुपमेकादेशः स्यात्/प्रेजते/उपोषति

अर्थ- अवर्णान्त उपसर्ग से एङ् प्रत्याहार हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में पररुप एकादेश होता है। अन्त में अवर्ण हो ऐसा उपसर्ग से परे एङ् (ए, ओ,) प्रत्याहार का वर्ण हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में पररुप अर्थात् पर में जो रुप है वैसा ही रुप पूर्व में हो जाता है।

प्रेजते- प्र+एजते यहाँ पर आद् गुणः सें गुण प्राप्त है उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ।वृद्धिरेचि इस सूत्र सें वृद्धि प्राप्त हुई। उस वृद्धि को बाधकर सूत्र लगा एङिपररुपम् यह कहता है कि अवर्णान्त उपसर्ग से एङादि धातु के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररुप एकादेश होता है। यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है, प्र में अ, तथा पूर्व में एजते(एजृ कम्पने धातु सें लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रुप है) धातु है उस धातु के पूर्व में एङप्रत्याहारका वर्ण है पर में एजते का ए। पूर्व में अ, तथा पर में ए होनें के कारण अर्थात् अ+ए दोनों के वर्णो के स्थान पर पररुप एकादेश हो कर प्र+ए+जते बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्रेजते प्रयोग सिद्ध होता है।

उपोषति- उप+ओषती यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर वृद्धिरेचि इस सूत्र से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे भी बाधकर एङि पररुपम् सूत्र लगा। यहाँ पर अवर्ण उपसर्ग है उप में प में अ, तथा पर में एङादि धातु है(उष् दोहे धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का रुप है) ओषति का ओ अर्थात अ+ओ इन दोनों के स्थान में पूर्व सवर्ण सदृश होकर वर्ण ओ होकर उप् ओ+षति बना, वर्ण सम्मेलन होकर उपोषति प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए। पररुप सन्धि में एङिपररुपम् सूत्र का उदाहरण-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
प्र+एजते	प्र्+ए+जते	प्रेजते
उप+ओषति	उप्+ओ+षति	उपोषति
प्र+एषयति	प्र्+ए+षयति	प्रेषयति
प्र+ओषति	प्र्+ओ+षति	प्रोषति

उप+एहि	उप्+ए+हि	उपेहि

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए।

टि संज्ञा का विधान करने वाला संज्ञा सूत्र

अचोऽन्त्यादि टि 1/1/64//

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टि संज्ञः स्यात् ।

अर्थ- अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् वह है जिसके आदि में उस शब्द समुदाय की टि संज्ञा होती है। टि संज्ञा कहा पर होती है ? इसका उत्तर दे रहे है। जहाँ अनेक अच् हों वहा पर अन्तिम अच् की ही टि संज्ञा होती है। और जहा एक ही अच् हो उसकी भी टि संज्ञा होती है। और जहा कही हल वर्ण के आदि मे अच वर्ण होतो उस हल् वर्ण के साथ अन्तिम अच् की भी टि संज्ञा होती है। जैसे राम शब्द में अन्तिम अच् प्रत्याहार का वर्ण है म में अकार। उस अकार की टि संज्ञा नाम पडता है। इसी प्रकार मनस् शब्द है। अन्तिम हल वर्ण है स् उसके आदि मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है। न् में अ। उस अस की टि संज्ञा नाम पडता है। जहाँ एक ही अच प्रत्याहार का वर्ण हो उसी को आदि, मध्य अन्त्य माना जाता है। टि संज्ञा का फल क्या है उसको अगले सूत्र मे बताया जायेगा।

वार्तिकः- शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम् ।।

तच्च टेः/शकन्धुः/कर्कन्धुः/कुलटा/मनीषा/आकृतिगणोऽयम/मार्तण्ड।।

अर्थः- शकन्धवादि गण मे पढे गये जो शब्द है। उनके टि को पररुप कहना चाहिये।

शकन्धुः - शक + अन्धु यहाँ पर अचोऽन्त्यादिटि सूत्र से टि संज्ञा होती है। जैसे- शक मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है श मे अ, तथा क मे अ यहाँ अन्तिम अच् है। क का अकार वह अन्तिम अकार न किसी के आदि मे है न किसी के अन्त मे, क वह स्वय अपने आदि मे है। उनकी टि संज्ञा हो गयी। इसके बाद आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर अकः स वर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था। उसे भी बाधकर शकन्ध्वादिषु पररुपम् वाच्यम् इस वार्तिक के द्वारा पररुप होता है टि संज्ञा जहाँ पर होती है वहा पर पररुप होता है। शकन्धु शब्द शकन्धु आदि गण में पढ़े गये है। यहाँ पर टि है शक में क में अ, और पर में है अन्धु का अकार। इन दोनों वर्णो के स्थान पर पररुप होगा। पररुप का तात्पर्य है पूर्व और पर के स्थान पर का जैसा वर्ण पूर्व में हो जाना। यहाँ पर पूर्व में भी अकार तथा पर में भी अकार तथा दोनों अकारों के स्थान पर एक ही अकार होकर शक् अ+न्धुः बना। वर्ण सम्मेलन होकर शकन्धुः प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्कन्धुः- कर्क+अन्धुः यहाँ पर पहले अचोऽन्त्यादि टि से टि संज्ञा करते है। जैसे कर्क मे अच् है क का अकार और अन्त्य अच है। द्वितीय क का अकार वह अन्य किसी के आदि मे नही है।इसलिये द्वितीय अकार की टि संज्ञा हो गयी। इसके बाद आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ प्राप्त था। उसे भी बाधकर शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम इस वार्तिक से पररुप होता है।कर्कन्धु शकन्धु आदि गण मे होता है। और टि है क मे अकार और परे मे है। अन्धु का अकार। इन दोनो वर्णो के स्थान पर पररुप होता है। इस पररुप का तात्पर्य है पूर्व मे जो अकार है। वह पर जैसा हो जाना।यहाँ दोनो के स्थान पर अकार होकर कर्क+अ+न्धुः बना। वर्ण सम्मेलन होकर कर्कन्धुः प्रयोग सिद्ध होता है।

मनीषा - मनस् + ईषा यहाँ पर अचोऽन्त्यादि टि इस सूत्र से मनस मे जो अस है उसकी टि संज्ञा हुई। क्योकि अच् प्रत्याहार का वर्ण है। म का अकार, न का अकार, इसमे अन्तिम अच् है न का

अकार वह अस् इस समुदाय के आदि मे है। अतः सकार सहित अकार अर्थात अस की टि संज्ञा हुई। यहाँ पर टि संज्ञा का फल शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम इस वार्तिक से पररुप करना है। अतः टि को लेकर पररुप करना है। पूर्व में टि संज्ञक वर्ण है मनस् में अस्, और पर में ईषा का ईकार है अर्थात् अस+ई इन दोनों के स्थान पर पर जैसा वर्ण ई हो गया। मन्+ई+षा बना। वर्ण सम्मेलन होकर मनीषा प्रयोग सिद्ध होता है।

आकृतिगणोऽयम् । यह जो वाक्य है न तो वार्तिक है न सूत्र ही । यह तो वरदराजाचार्य जी का वाक्य है। यह समझा रहे है कि यह शकन्धु आदि गण है इसमें इतने ही शब्द आते है, ऐसा कोई निश्चित नहीं है। अतः जहाँ जहाँ भी पररुप विधायक सूत्रों की प्राप्ति नहीं हो, किन्तु यदि पररुप हो गया हो तो वहा शकन्धु आदि गण मान लेना चाहिये । यथा- मार्तण्डः शब्द लोक में प्रसिद्ध है। इसमे पररुप हुआ मिलता है । अतः इसे भी शकन्धवादि गण के अन्तर्गत मान लेना चाहिये। मृत+अण्डः यहाँ पर मृत में त में अ तथा पर में अण्डः का अकार होने से अ अ इन दोनों के स्थान पर पररुप एकादेश होकर मृत् अ+ण्डः बना। वर्ण सम्मेलन होकर मृतण्डः प्रयोग सिद्ध होता है मृतण्डः बन जाने के बाद तद्वित प्रत्यय से मृतण्डे भवः मार्तण्डः यहाँ पर मृतण्ड शब्द से तत्र भवः सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होकर मृतण्ड अण् बना। अण् में ण का अनुबन्ध लोप हो जाने पर मृतण्ड+अ बना। उसके बाद तद्धितेश्वचामादेः सूत्र सें आदि शब्द मृतण्ड में जो ऋकार है उस ऋकार के स्थान पर आर वृद्धि होकर म्+आर्+तण्ड+अ् बना। म में आर् का आ तथा र् का त के उपर चले जाने पर मार्तण्ड अ बना। उसके बाद यस्येति च सूत्र सें ड में अकार का लोप होकर मार्तण्ड+अ बना। वर्ण सम्मेलन होकर मार्तण्डः प्रयोग सिद्ध होता है।

ओमाडोश्च 6/1/ 95// पररुप विधायक विधि सूत्र-

ओमि आडि चात्परे पररुपम् एकादेशः स्यात।

शिवायों नमः । शिव एहि ।

अर्थ- अवर्ण से ओम अथवा आङ् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में पररुप एकादेश होता है ।

शिवायों नमः - शिवाय+ओम् नमः यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर वृद्धिरेचि से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे बाधकर ओमाडोश्च सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि अ वर्ण से ओम् अथवा आङ् पर में हों तो पररुप एकादेश होता है। यहाँ पर अवर्ण है। शिवाय मे य मे अ उस अकार के पर मे ओम् शब्द का ओकार है। इस लिये अ+ओ इन दोनो वर्णो के स्थान पर पररुप अर्थात पर जैसा वर्ण पूर्व में ओ होकर शिवाय+ओ+म् बना। वर्ण सम्मेलन होकर शिवायोम् नमः बना। मकार को अनुस्वार होकर शिवायों नमः प्रयोग सिद्ध होता है।

अतिदेश सूत्र

अन्तादिवच्च 6/1/ 85//

योऽयमेकादेशः स पूर्व स्यान्तवत् परस्यादिवत्। शिवेहि।

अर्थ- पूर्व और पर के स्थान में जो यह एकादेश होता है वह पूर्ववर्ती वर्ण समदाय उसके अन्त्य के समान होता है। और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिये उसी के आदि के समान होता है ।

जैसे- एकादेश पूर्व और पर के स्थान में होता है । उस एकादेश को अन्त या आदि के समान मानना पड़े तो कैसे माना जाय क्योंकि एकादेश होकर न पूर्व के समान रहा, न पर के समान, अर्थात अखण्ड है। बलवान होने से आद् गुणः से गुण होकर शिव+एहि बना। एहि का जो एकार

है, वह आ और इ के स्थान पर गुण एकादेश होकर बना हुआ है। उस एकार को अन्तादिवच्च सूत्र से पूर्वान्तवद् भाव हुआ है । अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का आ और पर का आदि वर्ण इ था । अब हम उस ए को आ मानकर ओमाङोश्च सूत्र से पररुप करना हो तो ए को आ भी माना जा सकता है ? और ए को इ भी माना जा सकता है? पूर्वाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया है। आ+इ में अन्त में आ था। आ यह आङ है। उसे मानकर होने वाला पररुप हो गया है। पूर्व रुप पूर्व और पर के स्थान में होता है। शिव+एहि यहाँ पूर्व में अकार तथा पर में एहि का एकार है । अतः दोनों के स्थान में पूर्वरुप एकादेश ए होकर शिव् + ए + हि बना । वर्ण सम्मेलन होकर शिवेहि सिद्ध होता है । यदि अन्तादिवच्च सूत्र न होता तो शिव+एहि में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होकर शिवेहि ऐसा अनिष्ट प्रयोग बनने लगता । पररूप सन्धि का अन्य उदाहरण-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
शक+अन्धुः	शक्+अ+न्धुः	शकन्धुः
कर्क+अन्धुः	कर्क+अ+न्धुः	कर्कन्धुः
कुल+अटा	कुल्+अ+टा	कुलटा
मनस्+ईषा	मन्+ई+षा	मनीषा

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखना चाहिये । पररुप सन्धि समाप्त होती है । अब इसके बाद दीर्घ सन्धि प्रारम्भ होगा ।

दीर्घ सन्धि के सूत्र एवं उदाहरण

सवर्णदीर्घ विधायक विधि सूत्रम्

अकः सवर्णे दीर्घः 6/1/101//

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेशः स्यात। दैत्यारिः /श्रीशः/विष्णूदयः/ होतृकारः।

अर्थ- अक् से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। अक् प्रत्याहार में अ,ई,उ,ऋ,लृ,ये पाँच वर्ण आते हैं। इनसे परे यदि इनका कोई सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो इन दोनों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है। जिस प्रकार अ+अ = आ,इ+इ = इ,उ+उ = ऊ,ऋ+ऋ =ॠ आदि । दीर्घ अच् तो यहाँ पर बहुत है, तथापि स्थानेऽन्तरतम्ः सूत्र की सहायता से वही दीर्घ लिया जाता है जो इन स्थानियों के तुल्य होता है। क्योंकि दीर्घ अच आ,ई,ऊ,ॠ,ए,ऐ,ओ,औ, ये सभि दीर्घ प्राप्त होते है। स्थान से साम्य सवर्ण दीर्घ ही होता है।

दैत्यारिः- दैत्य + अरिः यहाँ पर दैत्य में जो यकार है उस यकार में जो अकार है वह अक् प्रत्याहार का वर्ण है । उस अक् प्रत्याहार सें पर में अच् प्रत्याहार (अ, इ, उ,ऋ,लृ,ए,ओ,ऐ,औ) का वर्ण है । अरिः का अकार, अर्थात अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है, अरिः का अकार । इन दोनों अकार के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर दैत्य् आ रिः बना । वर्ण सम्मेलन होकर दैत्यारिः प्रयोग सिद्ध होता है । ध्यान रहे की यहाँ पर दैत्य्+अरिः में आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ हुआ है ।

श्रीशः- श्री+ईशः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण प्राप्त था। उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घ सूत्र लगा । सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में सवर्णी दीर्घ एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है। श्री में ई तथा पर में सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है ईशः का ईकार। अतः ई+ई दोनों वर्णो के

स्थार पर सवर्णी दीर्घ ई एकादेश होता है होकर श्र् ई+शः बना। वर्ण सम्मेलन होकर श्रीशः प्रयोग सिद्ध होता है।

विष्णुदयः- विष्णु + उदयः यहाँ पर भी इको यणचि सूत्र से इक् प्रत्याहार का वर्ण है, विष्णु में ण् में उ तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदय का उकार अतः इस सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है। विष्णु में उकार तथा पर में सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदय का उकार। अतः ऊ इन दोनों वर्णो के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर विष्ण्+ऊ+दयः बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्ण उदयः प्रयोग सिद्ध होता है।

होतृकार - होतृ + ऋकारः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र लगा। सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व पर के स्थान में सवर्ण दीर्घः एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है होतृ में ऋकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है, ऋकारः का ऋकार, अतः ऋ तथा ऋ इन दोनों वर्णो के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर होत्+ॠ+कारः बना। वर्ण सम्मेलन होकर होतृकारः प्रयोग सिद्ध होता है। अक् प्रत्याहार में अ,इ,उ,ऋ,लृ,इन में पाँच वर्ण आते है इन पाँचों वर्णो में से अ,इ,उ,ऋ,चारों वर्णो का क्रमशः उदाहरण दिया गया किन्तु पाँचवा वर्ण लृ है उसका उदाहरण नहीं दिया गया क्योंकि लृ वर्ण का दीर्घ नहीं होता है। सिद्धान्त कौमुदी में विशेष प्रकार की व्याख्या की गयी है।

दीर्घ सन्धि का उदाहरण

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
दैत्य+अरिः	दैत्य्+आ+रिः	दैत्यारिः
विद्या+आलयः	विद्य्+आ+लयः	विद्यालयः
अत्र+आगच्छति	अत्र्+आ+गच्छति	अत्रागच्द्दति
महा+अवकाश	मह्+आ+वकाशः	महावकाशः
कदा+आगतः	कद्+आ+गतः	कदागतः
तुल्य+आस्य	तुल्य+आस्य	तुल्यास्य
न अस्ति	न अस्ति	नास्ति
दधि+इन्द्रः	दध्+ई+न्द्रः	दधीन्द्रः
कवि+इन्द्रः	कव्+ई+न्द्रः	कवीन्द्रः
महती+इच्छा	महतृ+ई+च्छा	महतीच्छा
सती+ईशः	सत्+ई+शः	सतीशः
विष्णु+उदयः	विष्ण्+ऊ+दयः	विष्णूदयः
भानु+उदयः	भान्+ऊ+दयः	भानुदयः
पशु+उत्सवः	पश्+ऊ+त्सवः	पशूत्सवः
विधु+उदयः	विध्+ऊ+दयः	विधूदयः
कारु+उत्तम	कार्+ऊ+त्तम	कारुत्तम
होतृ+ऋकार	होत्+ॠ+कार	होतृकारः

कर्तृ+ऋद्धि	कर्त्+ऋृ+द्धि	कर्तृद्धि
कर्तृ+ऋणि	कर्त्+ऋ+णि	कर्तृणि

इस प्रकार दीर्घ सन्धि का सूत्र व्याख्या विशेष प्रकार से किया गया है। उसे ध्यान पूर्वक अध्ययन करें, तथा उदाहरण को भी ध्यान पूर्वक स्मरण करे। इस प्रकार दीर्घ सन्धि समाप्त हुआ।

अब यहाँ पर से पूर्व रुप एकादेश सन्धि प्रारम्भ की जा रही है।

पूर्व रुप सन्धि का विधान करने वाला सूत्र

एङ पदान्तादति 6/1/109//

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरुपमेंकादेशः स्यात् / हरेऽव/विष्णोऽवः/

अर्थ- पदान्त एङ् से अकार के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरुप एकादेश होता है। जैसे - एङि पररुपम् यह सूत्र पीछे पढ़ा गया है। यह सूत्र पररुप करता है। दोनो का अर्थ एक ही है। किन्तु पररुप करता है। और एक पूर्वरुप करता है। पररुप का अर्थ होता है। पर जैसा सदृश वर्ण पूर्व में होता है। और पूर्व रुप का अर्थ होता है। पूर्व जैसा वर्ण पर मे हो जाता है। यह सूत्र कहता है। कि पदान्त एड़ प्रत्याहार से ऐ,ओ,से ह्रस्व अकार के परे होने से पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरुप एकादेश होता है। जैसे ए + अ यहाँ पर एड़् प्रत्याहार का वर्ण पूर्व में है ए, तथा ह्रस्व अकार पर में है अ,अतः ए,ओ, के स्थान पर पूर्वरुप एकादेश होता है। अर्थात् ए + अ = ए हो जाता है। इसी विधि को पूर्वरुप विधि कहते है। इसके द्वारा पूर्वरुप होने पर अकार के स्थान पर 'ऽ' इस चिन्ह को लगाने की परम्परा रही है। जिसको हम अवग्रह या खण्ड़ाकार कहते है। यद्यपि इस चिन्ह का विधान किसी सूत्र के द्वारा नही होता है। फिर भी इस चिन्ह को लगाकर अकार का संकेत संस्कृत भाषा मे प्रचलित है। इस चिन्ह को प्रयोग करे या न करे इसकी कोई अनिवार्यता नही है। इस सूत्र को पढ़ने के पहले एड़ि पररुप सूत्र का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। अब सूत्र का उदाहरण देखे।

हरऽव -हरे + अव् (हरे जो शब्द है। वह सम्बोधन एक वचन का रुप है। सम्बोधन होने के कारण यह पदान्त है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा एच् प्रत्याहार का वर्ण ए के स्थान पर अय् आदेश होना चाहिये क्योकि ए के बाद पर मे अच् प्रत्याहार का वर्ण अव का अकार है। अतः एचोऽयवायावः सूत्र को बांधकर सूत्र लगा एड़् पदान्तादति यह सूत्र कहता हैं कि पदान्त एड़् से ह्रस्व अकार के परे रहने पर पूर्व-पर दोनो के स्थान में पूर्वरुप एकादेश होता है। यहाँ पदान्त एड़् है हरे एकार, पर में है अव का अकार, अर्थात ए+अ इन दोनों वर्णो के स्थान पर पूर्वरुप एकादेश होता है। पूर्व जैसा वर्ण पर में होना यहाँ पर पूर्व में जो वर्ण ए है। वही वर्ण पर में हो होकर हर्+ए+व बना। वर्ण सम्मेलन होकर हरेव प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर ध्यान देना है कि परम्परा के अनुसार अकार के स्थान पर ऽ होकर हरेऽव प्रयोग सिद्ध होता है।

विष्णोऽव - यहाँ पर सभी प्रक्रिया हरेऽव के समान होनी हैं केवल अन्तर इतना होता है। कि वहा पर हरेऽव में एकार अकार होने से पूर्व रुप दोनों वर्णो के स्थानों में एकार हुआ। यहाँ पर पूर्वरुप ओकार होता है। किस प्रकार होता है उसको जाने । विष्णो + अव यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश प्राप्त है। इस सूत्र को बांधकर एड़् पदान्तादति सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है। कि पदान्त एड़ से ह्रस्व अकार के परे रहने पर पूर्व पर दोनो के स्थान पर प पर्वरुप एकादेश होता है। यहाँ पर पदान्त एड़् है विष्णो का ओ तथा पर में ह्रस्व अकार है अव का अकार। अतः ओ+अ इन दोनो वर्णो के स्थान पर पूर्वरुप एकादेश होकर विष्ण् ओ+व बना। वर्ण

सम्मेलन होकर विष्णोऽव प्रयोग सिद्ध होता है। तथा अ के स्थान पर परम्परानुसार ऽहोकर विष्णोऽव प्रयोग सिद्ध होता है। हरे!विष्णो!ये दोनो सम्बोधन एकवचन का रुप है। और अव् क्रिया पद है। सुबन्त होने के कारण हरे और विष्णो दोनो पद है। और एकार ओकार दोनो पद के अन्त में है।

पूर्वरुप सन्धि के उदाहरण सहित विग्रह एवं सन्धि।

विग्रह	आदेश	सन्धि
हरे+अव	हर+ए+व	हरेऽव
ते+अत्र	त+ए+त्र	तेऽत्र
वने+अस्मिन्	वन्+ए+स्मिन	वनेऽस्मिन
गृह+अस्ति	गृह+ए+स्ति	गृहेऽस्मिन
स्थाने+अन्तरमः	स्थान्+ए+न्तरतमः	स्थानेऽन्तरतमः
उद्याने+अस्तु	उद्यान्+ए+स्तु	उद्यानेऽस्तु
विष्णो+अव	विष्ण्+ओ+व	विष्णोऽव
नमो+अस्तु	नम्+ओ+स्तु	नमोऽस्तु

इसी प्रकार पूर्व रुप सन्धि का अन्य उदाहरण समझिये। इस प्रकार पूर्वरुप सन्धि सम्पूर्ण हुआ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. वृद्धि संज्ञा किस सूत्र से होती है?
2. वृद्धि संज्ञक कितने वर्ण होते है?
3. कृष्णैकत्वम् में कौन सा विग्रह है?
4. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् इस वार्तिक का उदाहरण क्या है?
5. सुखेन ऋतः में कौन सा समास है?
6. प्रार्णम् में कौन सा विग्रह है?
7. क्रिया के योग में प्र आदि संज्ञक होते है?
8. अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातुं परे हो तो पूर्व पर केस्थान में क्या होता है?
9. टि संज्ञा किस सूत्र से होती है ?
10. मनीषा का विग्रह क्या है ?
11. अवर्ण से ओम् अथवा आङ् पर में हो तो पूर्व पर दोनों को स्थान में क्या आदेश होगा?
12. अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् पर में हो तो पूर्व पर दोनों केस्थान में क्या आदेश होता है?
13. दैत्यारिः किस सूत्र का उदाहरण है?
14. दैत्यारिः का विग्रह क्या होगा ?
15. पूर्वरूप एकादेश किस सूत्र से होता है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. उपैधते में कौन सी सन्धि है:-

(क) वृद्धि (ख) गुण (ग) दीर्घ (घ) पररूप

2. सुखार्तः में कौनसी सन्धि है -

(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) वृद्धि (घ) पूर्वरूप

3. उपसर्ग कितने है -

(क) दश (ख) तीन (ग) बाइस (घ) चार

4. भूवादयोधातवः सूत्र से होती है:-

(क) उपसर्ग संज्ञा (ख) धातु संज्ञा (ग) पररूप संज्ञा (घ) पूर्वरूप संज्ञा

5. एङिपररूपम् सूत्र से होता है:-

(क) दीर्घ (ख) गुण (ग) पररूप (घ) वृद्धि

6. एङिपररूपम् सूत्र का उदाहरण है:-

(क) रमेश (ख) उपैधते (ग) उपैति (घ) प्रेजते

7. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् इस वार्तिक का उदाहरण है:-

(क) शकन्धुः (ख) उपोषति (ग) उपेन्द्रः (घ) उपैति

8. दैत्यारिः में सन्धि हुई है -

(क) गुण (ख) वृद्धि (ग) दीर्घ (घ) पररूप

9. अकः सवर्णेदीर्घः सूत्र का उदाहरण है -

(क) शिवेहिः (ख) कृष्णैकत्वम् (ग) लाकृतिः (घ) श्रीशः

10. एङः पदान्तादति सूत्र का उदाहरण है:-

(क) गंगोदकम् (ख) दैत्यारिः (ग) विष्णुदयः (घ) हरेऽव

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप वृद्धि सन्धि, पररूप सन्धि, दीर्घ सन्धि, पूर्व रूप सन्धि के विषय में भली भांति परिचित हो गये हैं । इसके बाद उपसर्ग बाइस प्रकार के होते है इसके विषय में भली भांति परिचित हुये। इसके साथ भूवादयोधातवः इस सूत्र से धातु संज्ञा होती है।

पूर्व और पर के स्थान में जो यह एकादेश होता है वह पूर्ववर्ती वर्ण समदाय उसके अन्त्य के समान होता है। और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिये उसी के आदि के समान होता है। जैसे- एकादेश पूर्व और पर के स्थान में होता है। उस एकादेश को अन्त या आदि के समान मानना पड़े तो कैसे माना जाय क्योंकि एकादेश होकर न पूर्व के समान रहा, न पर के समान, अर्थात अखण्ड है। बलवान होने से आद् गुणः से गुण होकर शिव+एहि बना। एहि का जो एकार है, वह आ और इ के स्थान पर गुण एकादेश होकर बना हुआ है। उस एकार को अन्तादिवच्च सूत्र से पूर्वान्तवद् भाव हुआ है। अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का आ और पर का आदि वर्ण इ था।

अब हम उस ए को आ मानकर ओमाङोश्च सूत्र से पररुप करना हो तो ए को आ भी माना जा सकता है ? और ए को इ भी माना जा सकता है? पूर्वाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया है। आ+इ में अन्त में आ था। आ यह आङ है। उसे मानकर होने वाला पररुप हो गया है। पूर्व रुप पूर्व और पर के स्थान में होता है। ऐसा करने पर शिवेहि रूप बन जाता है । अत: इस इकाई में सिखे हुये सूत्रोंके आधार पर विभिन्न प्रयोगों की सिद्धियॉ बता सकेंगे ।

4.5 शब्दावली

शब्द **अर्थ**

उपैति	पास जाता है
उपैधते	पास वढ़ता है
प्रष्ठौहः	प्रष्ठवाह का
प्रौहः	उत्तम तर्क या उत्तम तर्क करने वाला
प्रौढः	वढ़ा हुआ या अधेड़
प्रौढ़िः	प्रौढ़ता या शेरवीं
प्रैषः	अच्छा भेजने वाला
प्रैष्यः	भेजने योग्य सेवक
प्रार्णम्	अधिक व उत्तम ऋण
वत्सतरार्णम्	वछड़े के लिए ऋण
कम्बलार्णम्	कम्बल के लिए ऋण
वसनार्णम्	कपड़े का ऋण
ऋणार्णम्	ऋण चुकाने के लिए ऋण
दशार्णः	दश प्रकार के जल वाला देश
सुखार्तः	सुख से प्राप्त
कृष्णैकत्वम्	कृष्ण की एकता
गंगौघः	गंगा का प्रवाह
देवैश्र्यम्	देवों का ऐश्वर्य
कृष्णौत्कठयम्	कृष्ण के विषय में उत्कष्ठा
प्राच्छति	अच्छी तरह से जाता है।
प्रेजते	अत्यन्त चमकता है।
उपोषति	जलता है।
शकन्धुः	शनायक देश कूप
कर्कन्धु	कर्क नामक कोई राजा, उसका कूप
मनीषा	वृद्धि
मार्तण्डः	सूर्य
परमर्तः	मुक्त
शिवायों नमः	शिव जी को नमस्कार है
शिवेहि	हे शिव आइये
दैत्यारिः	दैत्यों का शत्रु भगवान विष्णु
श्रीशः	लक्ष्मी का स्वामी = भगवान विष्णु
विष्णूदयः	विष्णु का उदय
होतृकार	होता का ऋकार
हरदेव	हे हरे रक्षा करो
विष्णोऽव	हे विष्णों रक्षा करो

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. (वृद्धि रादैच्)
2. तीन (आ, ऐ, औ)
3. कृष्ण + एकत्वम्)
4. (अक्षौहिणी सेना)
5. तृतीया तत्पुरूष)
6. प्र + ऋणम्)
7. (उपसर्ग संज्ञक)
8. (वृद्धि संज्ञा)
9. (अचोऽन्त्यादिटि)
10. (मनस् + ईषा)
11. (पररूप)
12. (सवर्णदीर्घ)
13. अकः सवर्णे दीर्घः)
14. दैत्य + अरिः)
15. (एड.: पदान्तादति)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क)
2. (ग)
3. (ग)
4. (ग)
5. (घ)
6. (घ)
7. (क)
8. (ग)
9. (घ)
10. (घ)

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
2. सिद्धान्तकौमुदी

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी.- श्रीधरानन्द शास्त्री

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दीर्घ सन्धि कहाँ पर होती है ? सूत्र उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।
2. उपसर्ग कितने प्रकार के हैं। किन्हीं पॉच उपसर्गों का उल्लेख कर उदाहरणों की सिद्धिकरें।

3. तृतीया विभक्ति के वार्तिक की व्याख्या कीजिये।

4. पूर्वरूप संधि को उदाहरण सहित समझाइये।

इकाई-5 प्रकृति भाव सन्धि व्याख्या एवं प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 प्रकृति भाव सन्धि
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने दीर्घ, पूर्वरूप आदि संधियों के सूत्र व उनके उदाहरणों की सिद्धि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में लौकिक और वैदिक प्रयोगों में प्रकृतिभाव करने के नियम के साथ - साथ सर्वादेश विधान सहित दूर से बुलाने व प्रगृह्य, निपात आदि संज्ञाओं से संबंद्ध सूत्रों व उनके उदाहरणो का वर्णन किया गया है।

अनेक अल् वाला आदेश शित् होकर सम्पूर्ण के स्थान पर होता है। स्फोटायन के मत में अवङ् आदेश होता है। अच् प्रत्याहार के परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृतिभाव हो जाता है। अ सवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण यदि बाद में आता हो तो पदान्त में इक् रहने पर उसी को ह्रस्व हो जाता है। समास में यदि अ सवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण बाद में हो तो पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रकृतिभाव सन्धि को समझते हुए उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे और इस इकाई में आये हुये सूत्रों व उदाहरणों की सिद्धि कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- प्रकृतिभाव संधि की परिभाषा बतायेंगे।
- सर्वत्र विभाषा गोः इस सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है, इसे समझायेंगे ।
- अवङ् स्फोटायनस्य सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है, इसे भी बतायेंगे
- ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र का उपयोग समझायेंगे ?
- निपात संज्ञा कहां पर होती है उसका प्रयोजन क्या है, इसे सिद्ध करेंगे
- ऋत्यकः सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है इसका उदाहरण क्या है,उल्लेख करेंगे

5.3 प्रकृतिभाव-सन्धि

सर्वत्र विभाषा गोः 6/1/122/

लोके वेद चैङ्न्तस्य गोरतिवा प्रकृति भावः पदान्ते। गो अग्रम! गोऽग्रम! एङ्न्तस्य किम्! चित्रग्वग्रम! पदान्ते किम्। गोः।

अर्थः- लौकिक एवं वैदिक प्रयोगो में एडन्त गो शब्द को अत् ह्रस्व अकार परे रहने पर विकल्प से प्रकृति भाव होता है। पदान्त में।

गो अग्रम गो+अग्रम (गवाम्, अग्रम्, ऐसा यहाँ पर षष्ठी तत्पुरुष समास होता है। अतः समास होने के बाद पदत्व विद्यमान रहता है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश प्राप्त था। उसे बांधकर एङः पदान्तादति इस सूत्र से पूर्वरुप प्राप्त था। उस पूर्वरुप को भी बाधकर सूत्र लगा। सर्वत्र विभाषा गोः। गो शब्द गो यह पद है। और पदान्त एङ् (ए + ओ) है गो में ओकार। उस ओकार से परे हस्व अकार है अग्रम का अकार।अतः प्रकृति भाव हुआ। प्रकृति भाव का अर्थ है जिस स्थिति में था वैसा ही रहना। इसी को प्रकृति भाव कहते है। गो अग्रम ज्यो का त्यो रहा।

प्रकृति भाव विकल्प से होता है । अतः प्रकृति भाव जिस पक्ष में नही होगा उस पक्ष में एङ् पदान्तादति सूत्र से पूर्वरुप होकर गोअग्रम् रुप सिद्ध होता है।

एङ्न्तस्य किम् चित्रग्वग्रम्:- यहाँ पर प्रश्न करते है कि सर्वत्र विभाषागोः इस सूत्र के वृद्धि में एङ्न्त क्यो पढ़ा गया न पढ़ते तो क्या हानि होती? यदि सूत्र में एङन्त नही पढ़ते तो सूत्र का अर्थ होता- लोक अथवा वेद में गो शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है। पदान्त में। ऐसा अर्थ होने पर चित्रगु अग्रम् यहाँ पर भी प्रकृतिभाव होने लगता क्योकि चित्रगु में एङ्न्त अर्थात ए ओ नही पढ़ा गया है। इसलिये एङ्न्त गो शब्द को ही प्रकृति भाव होगा। जहा पर एङ्न्त गो शब्द नही है उनका प्रकृति भाव नही होगा। चित्रगुअग्रम् यहाँ पर समास करते है चित्रा गावो यस्य,चित्रा जस् गो जस बहुब्रीहि समास होकर चित्रगो बना। तथा गो को ह्स्व करके चित्रगु बना। अतः यहाँ पर गो शब्द तो है। पर एङ्न्त गो शब्द नही है। यदि सूत्र में एङ्न्त गो शब्द यही पढ़ा गया होता तो चित्रगु अग्रम ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता इसलिये सूत्र में एङ्न्त गो शब्द पढ़ना आवश्यक है । चित्रगु+ अग्रम यहाँ पर इकोयणचि सूत्र से यण् होकर चित्रगव्+अग्रम बना। वर्ण सम्मेलन होकर चित्रग्वग्रम प्रयोग सिद्ध होता है ।

पदान्ते किम् गोः यहाँ पर दूसरा शंका उत्पन होता है। कि सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र में पदान्त क्यो पढ़ा गया । इसकी आवश्यकता क्या थी? यदि सूत्र में पदान्त शब्द को नहीं पढ़ा गया होता तो इसका अर्थ होता-लोक अथवा वेद में एङन्त गो शब्द को विकल्प से प्रकृति भाव हो ऐसा अर्थ होने पर गो शब्द में भी प्रकृति भाव होने लगेगा जिससे अनिष्ट रुप बनने लगता है। गो शब्द के षष्ठी विभक्ति एकवचन की विवक्षा में ङ्स प्रत्यय होकर गो+ङ्स् बना। ङकार की लशक्वतद्धिते सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपःसे लोप होकर गो+अस् बना। जिस शब्द के अन्त में सुप् प्रत्यय हो उसे सुवन्त कहते है । अर्थात प्रकृति प्रत्यय जब दोनो एक साथ मिलते है । तो पदान्त बनते है। यहाँ पर गो शब्द प्रकृति है तथा ङ्स् के स्थान पर जो अस् आया है । वह प्रत्यय है । अतः प्रकृति प्रत्यय जब तक दोनो एक साथ नही मिलते तब तक पदान्त नही बन सकता । अतः यहाँ पर गो शब्द पदान्त नही है । यदि सूत्र मे पदान्त नही पढ़ा गया होता तो गो शब्द को प्रकृति भाव होकर गो अस् ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता । उस अनिष्ट को रोकने के लिए सूत्र में पदान्त शब्द पढ़ा गया। गो + अस् यहाँ पर प्रकृति भाव नही हुआ । अतः यहाँ पर । ङ्सिङ्सोश्च सूत्र से पूर्वरुप होकर गोस् बना । तथा स्कार को रुत्व विसर्ग होकर गोः शब्द की सिद्दि होती है ।

सर्वादेश विधान करने वाला परिभाषा सूत्र।

अनेकाल् शित् सर्वस्य 1/1/55// इति प्राप्ते

अर्थ- अनेक अल् वाला आदेश और शित् सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होते है ।

अनेक+अल्= अनेकाल । जिस आदेश में अनेक अल् अर्थात एक से अधिक अल् हौ उसे अनेकाल कहा जाता है। अल् अर्थात् वर्ण होंता है जिस में स्वर तथा व्यंजन सभी वर्ण आते है । शित् किसे कहते है? जिस आदेश में शकार की इत्संज्ञा हुई हो उसे शित् कहते है। जब किसी अंग आदि के स्थान पर किसी सूत्र से आदेश का विधान किया जाता हैं और उसमें स्पष्ट रुप से यह निर्देश नहीं दिया गया है कि आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो या स्थानी के अन्तिम-वर्ण या आदि वर्ण, के स्थान पर हो। इस नियम को निश्चित करने के लिये यह परिभाषा सूत्र बनाया गया । कि जिस आदेश में अनेक अल् अर्थात् वर्ण हो तो सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो

ता है। इसी प्रकार जिस आदेश में शकार कि इत्संज्ञा हुई हो तो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर आदेश होता है।

अनेकाल आदेश का उदाहरण -

रामैः - राम शब्द से तृतीया विभक्ति बहुवचन विवक्षा में भिस प्रत्यय होकर रामभिस् बना। अतो भिस् 'ऐस' सूत्र से भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है। अब यहाँ पर शंका होती है कि ऐस् जो आदेश करना है वह भिस् के किसी एक वर्ण के स्थान पर हो कि सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर ऐस् हो। इस शंका के निवारण के लिये यह सूत्र बनाया गया है कि जिस आदेश में अनेक अल् हो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। यहाँ पर ऐस् आदेश है वह अनेक अल् (वर्ण) है। इस लिये यह आदेश सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर इस परिभाषा सूत्र के द्वारा आदेश होकर राम+ऐस् बना वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होकर रामैस् बना। तथा संकार को रुत्व विसर्ग होकर रामैः प्रयोग सिद्ध होता है। उसी प्रकार शित् का उदाहरण भी समझना चाहिए।

अन्य आदेश का विधान करने वाला परिभाषा सूत्र-

ङिच्च 1/1/ 53// ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

अर्थ- ङित् आदेश अनेकाल होने पर भी अन्त्य के ही स्थान पर होता है।

यह सूत्र अनेकाल शित् सर्व का बाधक है आदेश अनेकाल भी हो और ङित् भी होतो अर्थात आदेश में ङकार की इत्संज्ञा हुई हो तो भी वह आदेश सभी के स्थान पर न होकर केवल अन्त्य अल् वर्ण के ही स्थान पर होता है। अर्थात् स्थानी के जो अन्त्य वर्ण उसी वर्ण के स्थान पर होता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आदेश अनेकाल हो या न हो यदि ङित् है तो अन्त्य वर्ण के ही स्थान पर होगा इसका अवङ् आदेश विधायक विधि सूत्र

अवङ् स्फोटायनस्य 6/1/123//

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ वाऽचि। गवाग्रम्, गोऽग्रम्। पदान्ते किम्? गवि।,

अर्थ- पदान्त में एङन्त तदन्त गो शब्द इसको अच् परे रहने पर विकल्प से अवङ आदेश होता है।'स्फोटायन' पाणिनि के पूर्ववर्ती व्याकरण के आचार्य होचुके है। कहतें है कि ये वैयाकरणों में प्रसिद्ध स्फोटतत्व के उपज्ञाता थे। इस सूत्र में पाणिनी ने उन के मंत्रो का उल्लेख किया है। यह अवङ आदेश स्फोटायन आचार्य के मत में होता है अन्य आचार्य के मत में नहीं होता है। अतः अवङ आदेश विकल्प से होता है।अवङ् से ङकार की हलन्त्यम्'सूत्र से इत्संज्ञा होती है तथा तस्य लोपः से लोप होता है। केवल अव ही बचता है। ङकार ही उत्सज्ञा होने के कारण यह आदेश ङित् है। ङित् होने से अवङ् आदेश अन्त्य वर्ण गो के ओकार के स्थान पर आदेश होता है।

गवाग्रम- गो ऽग्रम। गवाम् अग्रम लौकिक विग्रह तथा गो+आम् अग्रम् समास होकर तथा विभक्ति का लोप होकर के गो+अग्रम ऐसा प्रयोग बना। यहाँ पर एचोऽयवायावः से अवादेश प्राप्त है। उसको बाधकर एङ पदान्तादति सूत्र से पूर्वरुप प्राप्त है। उसको भी बाधकर सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र से प्रकृति भाव प्राप्त है। उसको भी बाधकर सूत्र लगा- अवङ स्फोटायनस्य। आय विभक्ति का लुप्त होने पर गो का ओकार पदान्त है। अत गो का ओकार पदान्त होने से गों के ओकार के स्थान में अवङ् आदेश विकल्प से होगा। ग् अवङ्+अग्रम् बना। ङकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोप से लोप होकर ग्+अव+अग्रम बना। ग में अकार मिलकर गव+अग्रम बना। अकःसवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ होकर गवाग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। जिस पक्ष में

अवङ आदेश नही होगा। उस पक्ष में एङ पदान्तादति सूत्र में पूर्वरुप होकर गोऽग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। अतः अवङ आदेश पक्ष में गवाग्रम तथा अवङ अभाव पक्ष में गोऽग्रम प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ते किम् ? अब यहाँ पर प्रश्न उत्पन होता है। कि अवङ सपोटायनस्य सूत्र में पदन्त क्यो पढ़ा गया ? उतर देते है। कि पदन्त नही पढ़ा गया होता तो पदान्त अपदान्त दोनो जगह अवङ आदेश होता। पदान्त में अवङ् आदेश करना तो अनिवार्य है। अपदान्त में अवड़ आदेश करना अनिवार्य नहीं है यथा गवि यह सप्तमी विभक्ति एंक वचन का रुप है सप्तमी विभक्ति एक वचन का रुप है सप्तमी में गो शब्द से ड़ि. प्रत्यय होकर तथा ड.कार की इत्संज्ञा होकर गो+ इ बना। गवि यह पुरा पद है। किन्तु गो+इ में यह पुरा पद नही है। क्योकि प्रकृति प्रत्यय जब दोनो एक साथ मिलता है। तो पदान्त बनता है। यहॉ पर गो प्रकृति है। इ प्रत्यय है। अतः गो + इ यह अपदान्त है। अपदान्त होने से अवङ् आदेश नही होगा। जब अवङ् आदेश नही होगा। एचोऽयवायाव सूत्र से गो के स्थान में अव् आदेश होकर ग् + अव् + इ बना। वर्ण सम्मेलन होकर गवि यह प्रयोग सिद्ध होता है। इस लिए पदान्त ग्रहण किया गया।

अवङ् आदेश विधायक विधि सूत्र

इन्द्रे च 6/91/120//

गोरवङ् स्यात इन्द्रे। गवेन्द्र

अर्थ- इन्द्र शब्द परे होने पर एडन्त गो शब्द को अवड आदेश होता है। अवड़ में डकार की हलन्त्यम से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होता है ङित होने के कारण ङिच्च सूत्र की सहायता से अन्तिम् वर्ण पर गो के ओकार के स्थान पर होता है।

गवेन्द्र - गो + इन्द्रः यहाँ पर अवङ् स्फोटायनस्य सूत्र से अवङ आदेश प्राप्त था उसे बाधकर सूत्र लगा। इन्द्रे च। यह सूत्र कहता है कि इन्द्र शब्द पर में हो तो एङन्त गो शब्द को अवङ आदेश होता है। यहाँ पर एङन्त है गो का ओकार पर में इन्द्र शब्द है। इसलिये गो के ओकार, के स्थान में अवङ् आदेश होकर ग् अवङ् इन्द्र बना। ङ्कार की हलन्त्यम् सूत्र में से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर ग् अव+इन्द्र: बना। ग् में अव् का अकार को मिलने से गव +इन्द्रः बना। गव का अकार तथा इन्द्रः का इकार दोनों के स्थान में आद गुणः से गुण होकर गवेन्द्रः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्लुत आदेश विधायक सूत्र

दूराद्धूते च 8/2/ 84//

दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात्॥

अर्थ- दूर से सम्बोधन करने में प्रयुक्त जो वाक्य है। उसके टि को विकल्प से प्लुत होता है सभी प्लुतों को विकल्प से माना जाता है। इस सूत्र में एक मात्रिक ह्रस्व को, द्विमात्रिक को दीर्घ तथा त्रिमात्रिक को प्लुत आदेश होता है। जब लोक में किसी का नाम लेकर पुकारते है तो स्वाभाविक रुप से प्लुत का ही उच्चारण करते है। जैसे- भो देवदत्त। प्लुत का एक प्रयोजन प्रकृति भाव भी होता है। जहाँ पर प्रकृति भाव प्राप्त नहीं है। वहॉ पर केवल उच्चारण काल में भेद होगा। प्लुत हो जाने के बाद उसको समझने के लिये प्रायः तीन का अंक लिखा जाता है। जैसे- हे राम 3। प्लुत करने का फल क्या है। इसका प्रयोजन अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

प्रकृति भाव विधायक सूत्र

प्लुत् प्रगृहया अचि नित्यम् 6/1/125//

एते ऽचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति।

अर्थ- अच् प्रत्याहार के परे होने परे प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृति भाव होता है। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्चरति हे कृष्ण यहाँ पर आओ गाये चर रही है। आगच्छ कृष्ण + अत्र गौश्चरति यहाँ पर कृष्ण को सम्बोधन किया जा रहा है अतः कृष्ण में णकार में जो अकार है वह टि संज्ञक भी है। उसकी दुराद्धूते च सूत्र से टि को प्लुत् हो गया। उसके बाद सूत्र लगा-प्लुत प्रगृह्याचिनित्यम्। यह सूत्र कहता है कि प्लुत और प्रगृहय से अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो प्रकृति भाव होता है। यहाँ पर प्लुत् है कृष्ण में ण में अ तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अत्र का अकार उसको प्रकृति भाव होता है। प्रकृति भाव का तात्पर्य है जिस स्थिति में था उसी स्थिति में रहना आगच्छ कृष्ण अत्र गौश्चरति जैसा था वैसा ही रहेगा।

प्रगृहय संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

इदू देद्द्विवचनं प्रगृह्यम् 1 /1/11//

इदूदेद्न्तं द्विवचन् प्रगृह्य संज्ञं स्यात्। हरी एतौ। विष्णू इमौ। गंङे अमू।

इकारान्त द्विवचनं उकारान्त द्विवचन और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

इकारान्त पुलिंग शब्द के द्विवचन में हरी रुप बनता है। तथा उकारान्त द्विवचन विष्णु शब्द के रुप में विष्णु रूप बनता है और आकारान्त स्त्रीलिंग गंगा शब्द के द्विवचन में गङे बनता है अर्थात् एकारान्त हो जाता है। इनकी प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद आगे अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है स्मरण कि प्लुत संज्ञा वैकल्पिक है। किन्तु प्रगृह्य संज्ञा नित्य है। अतः प्रकृति भाव वाला रुप एक ही बनता है।

हरी एतौ - यहाँ पर हरी शब्द इकारान्त द्विवचन का रुप है इकारान्त द्विवचन होने के कारण हरि शब्द कि इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने का फल यह है कि प्लुत् प्रगृहया अचि नित्यम् से प्रकृति भाव होकर हरी+एतौ यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है हरी में ईकार प्रकृतिभाव सन्धि में इस सूत्र का उदाहरण विग्रह एवं सन्धि करें ।

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
हरी+एतौ	हरी+एतौ	हरी एतौ
विष्णू +इमौ	विष्णू +इमौ	विष्णू इमौ
धने+इमे	धने+इमे	धने इमे
रमे+अत्र	रमे+अत्र	रमे अत्र
कुले+इमे	कुले+इमे	कुले इमे
नत्रे+अमृशति	नेत्रे+अमृशति	नेत्रे अमृशति
बालिके+अधीयाते	बालिके+अधीयाते	बालिके अधीयाते

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखें।

प्रकृति भाव होकर ज्यौ का त्यौ स्थिति रहा अर्थात हरी एतौ ऐसा ही रहा। यदि प्रगृह्य संज्ञा प्रकृति भाव नहीं होता तो इकोयणचि से यण होकर हर्येतौ एसा अनिष्ट प्रयोग बन जाता।

विष्णू इमौ विष्णू +इमौ यहाँ पर इको यणचि से यण् प्राप्त है। उसको बाधकर सूत्र लगा- इदुदेद् द्विवचनम् प्रगृहयम्। इस सूत्र में उकारान्त द्विवचन है। विष्णू में ऊ उसकी प्रगृह्य

संज्ञा हुई। उसके बाद सूत्र लगा प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्। यह सूत्र कहता है जिसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई हो उस प्रगृह्य से पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है। विष्णू इमौ यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है। णू में ऊकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। इमौ का इकार। इस लिये यहाँ पर प्रकृति भाव हुआ अर्थात ज्यों का त्यों रहा कोई संन्धि नहीं हुई। विष्णु इमौ ऐसा ही रहा।

गङ्‌ अमू - गङे+ अमू यहाँ पर एकारान्त द्विवचन है गंगे का ए इसलिये द्विवचन् प्रगृह्यम् से प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद सूत्र लगा प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् यह सूत्र कहता है कि प्रगृह्य संज्ञक वर्ण से पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है। यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है गङे में एकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अम का उकार। अतः इसलिये प्रकृति भाव होकर गङे अम ज्यौ का त्यौ रहा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे।

प्रगृह संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र -

अदसोमात् 1/1/12//

अस्मात् परावीदू तौ प्रगृह्यौ स्तः। अमीईशाः। राम कृष्णा वमूआशते।

मात् किम् ? अमू केऽत्र।

अर्थ- अदस् शब्द के मकार से परे ईकारान्त ऊकारान्त प्रगृहय संज्ञक होते है। अदस् शब्द सर्वनाम है इसका तीनों लिगों में रुप चलता है।

पुलिंग रुप

विभाक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमाः विभाक्ति	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमूम	अमू	अमूः
तृतीया।।	अमु	अमू भ्याम	अमीभिः
चतुर्थी	अमुमै स्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी।।	अमुस्मात्	अमीभ्यः	
षष्ठीः।।	अमुस्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमि	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रीलिंग

प्रथमाः।।	असौ	अमू	अमू
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमू भिः
चतुर्थि।।	अमुष्यौ	अमू भ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी	अमुष्याः	अमू पभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठीः	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमि।।	अमुष्याम्	अमुयोः	अम पषु

नपुसंकलिंग में

प्रथमाः	अदः	अमू	अमू वनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमू पनि

शेष पुलिंग के समान चलता है।

अदस् शब्द के मकार से परे ईकारान्त ऊकारान्त पुलिंग में प्रथमा विभक्ति के बहुवचन तथा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में और स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रथमा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में ही प्राप्त होते है। इन में से स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग वाले इस सूत्र के उदाहरण नहीं मिलते है। क्योंकिं वहा पर इदूदेद्विवचन प्रगृह्यम् सूत्र से ही प्रगृह्य संज्ञा सिद्ध हो जाती है। केवल पुलिंग के अम प, अमी इन दो रुपो के लिये ही यह सूत्र बनाया गया है। उदाहरण यथा- अमी + ईशाः यहाँ पर पुलिंग में अदस् शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन विवक्षा में जस् प्रत्यय करने पर त्यदाघत्व पररुप जस् को शी'आदेश तथा गुण करने के बाद अ बदे। तथा एत् इद् बहुवचने सूत्र से ए को इकार तथा उकार का मकार होकर अमी प्रयोग सिद्ध होता है। इसके आगे ईशाः प्रयोग करने के पर अमी ईशाः बना। यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था। उसको बाधकर अदसो मात् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुतप्रगृह्याचिनित्यम् से प्रकृति भाव होकर ज्यौ का त्यौ रहा कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

रामकृष्णावमूआसाते् यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण् प्राप्त था। उस यण् को बाधकर अदसो मात् सूत्र लगा। यहाँ पर अदस् सम्बन्धी मकार से अकार इसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होता है। प्रकृति भाव अर्थात ज्यौ का त्यौ रहना उसमें कोई परिवर्तन न होना। रामकृष्णावमू आसाते् में कोई परिवर्तन नहीं हुई।

मात् किम् ? अमुकेऽत्र - यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूत्र में मात् अर्थात म से परे ऐसा क्यो कहा गया है? क्योंकि मकार से अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण से परे इकारान्त ऊकारान्त अदस् से तीनों लिंगो में कहीं नहीं पाये जाते। अतः मात् ग्रहण न करने से भी 'अमू, 'अमी' शब्दो की प्रगृह्य संज्ञा होगी। इसका उत्तर यह है कि अमु केऽत्र। अर्थात मात का ग्रहण न करने से अमु केऽत्र प्रयोग में दोष आयेगा। तथाहि अदस् शब्द से परे अकच् प्रत्यय होकर अदकस् बना। तथा अदसोऽसेर्दा दुदोमः सूत्र से मुत्व होकर अम पकस बना। अब प्रथमा के बहुवचन विवक्षा में जस प्रत्यय तथा जस् के स्थान में जसः शी सूत्र द्वारा शी आदेश होकर अदकस्+शी बना। झकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर तथा त्यदाद्यत्व पररुप एवं आद् गुणः णे गुण होकर अम पके प्रयोग सिद्ध होता है। अब इसके आगे अत्र पर लाने से एङः पदान्तादति सूत्र द्वारा पूर्व रुप करने पर अमुकेऽत्र प्रयोग सिद्ध होता है। यदि सूत्र में मात ग्रहण न करते तो यहाँ ककार से परे भी प्रगृहय संज्ञा होकर प्रकृति भाव हो जाता। इससे एङ पदान्तादति की प्रवृति नहीं होती। इसलिये मात ग्रहण किया गया है।

इस सूत्र का उदाहरण तथा विग्रह एवं सन्धि करे-

विग्रह-	**आदेश**	**सन्धि**
अमी ईशाः	अमा ईशाः	अमी+ईशाः
अमी+अश्नन्ति	अमी+अश्नन्ति	अमी+अश्नन्ति

इन सूत्रो का उदाहरण प्रायः कम प्राप्त होता है। निपात की भी प्रगृहय संज्ञा होती है निपात विधायक सूत्र लिखते है-

निपात संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

चादयो ऽसत्वे 1/4/57//

अद्र व्यर्थाश्चादयो निपाताः स्यु

अर्थ- द्रव्य अर्थ न होने पर च आदि की निपात संज्ञा होती है। यैः लिंङ संख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वं जिस शब्द में लिंग और संख्या का अन्वय अर्थात् संबन्ध हो अथवा जिस शब्द में लिंग संख्या हो उसे द्रव्य कहते है। और उससे भिन्न अद्रव्य है जैसे- च, वा, हि, आ, ये शब्द लिंग संख्या से रहित है। अतः ये अद्रव्य है और पश ,मनुष्य, वन आदि द्रव्य है। यह सूत्र से चादि गण में पठित शब्द की निपात संज्ञा होती है। यदि उसमें द्रव्य वाचकता न होतो। निपात संज्ञा के अनेक फल होते है। उन में से एक फल प्रगृहय संज्ञा भी है।

निपात संज्ञा विधायक सूत्र

प्रादयः 1/4/58// एतेऽपि तथा

अर्थ- द्रव्य अर्थ न होने पर प्र आदि की निपात संज्ञा होती है। द्रव्य अर्थ में प्रादियो की निपात संज्ञा नहीं होती जिस प्रकार प्रादि गण में वि शब्द पढ़ा गया है यदि उसका अर्थ पक्षी होगा तो वह द्रव्य वाचक होगा। द्रव्य वाचक होने से उसकी निपात संज्ञा नहीं। होगी निपात न होने से यह अव्यय भी नहीं होगा और अव्यय न होने से सुप् का लुक् भी नहीं होगा। विः, पक्षी, विं, पश्य, इत्यादि। जिसकी निपात संज्ञा होती है। उनकी प्रगृहय संज्ञा और प्रकृति भाव होता है।

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

निपात एकाजनाङ 1/1/14// एकोऽज निपात आङ् वर्जः प्रगृह्य स्यात।

इ इन्द्रः। उमेशः। वाक्यस्मरणयोरिङित्। आ एवं नु मन्यसे। आ एवं किल तत्। अन्यत्र ङित् आ इषदुष्णम् ओष्णम्।

अर्थ- आङ् शब्द को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है। जिसकी पहले निपात् संज्ञा हो चुकी है, और उसमें मात्र केवल एक ही अच् हो, और वह एक अच् भी आङ् वाला न होतो उसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हे जाती है। अनाङ् अर्थात् आङ् को छोड़कर। ऐसा इस लिये कहा गया है कि आङ् में ड.कार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप हो जाने के बाद आ मात्र वचता है। उसकी निपात संज्ञा न हो सके। क्योंकि आङ् को छोड़कर सभी एकाच निपात प्रगृह्य संज्ञक होते है।

उदाहरण- इ इन्द्रः यहाँ पर अद्रव्यार्थ वाचक चादि गण में इ पढा़ गया है। अतः उसकी चादयोऽसत्वे सूत्र से निपात संज्ञा हो गयी। और निपात एकाजनाङ् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृहय संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृह्याचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होकर इ + इन्द्रः ज्यौ का त्यौ रहा अर्थात् उसमे कोई परिवर्तन नही हुआ। यदि निपात संज्ञा नहीं होता तो अकःसवर्णे दीर्घः से सवर्णे दीर्घः होकर ईन्द्रः ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता। इसी प्रकार अगला उदाहरण भी देखें-

उ उमेशः - यहाँ पर अद्रव्यार्थ वाचक चादि गण में पठित शब्द है उ का उकार उस उकार की चादयोऽसत्वे इस सूत्र से निपात संज्ञा हो गयी। निपात संज्ञा होने के बाद निपात एकाजनाङ् इस सूत्र से उकार की प्रगृह् संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत् प्रगृह्य अचि नित्यम् इस सूत्र से प्रकृति भाव होकर उ उमेशः ज्यौ का त्यौ बना रहा। अतः इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि इसकी निपात संज्ञा नहीं होती तो अकः सवर्णे दीर्घ सूत्र से सवर्ण दीर्घः होकर ऊमेशः ऐसा अनिष्ट रुप बनने लगता।

वाक्यस्मरणयोरङित। अन्यत्र ङित्। वाक्य और स्मरण अर्थ में आ अङित होता है। चादि गण में आ पढ़ा गया तथा प्रादि गण में आङ् पढ़ा गया है। इन दोनों को चादयो ऽसत्वे तथा प्रादयः से

निपात संज्ञा होती है इस प्रकार से दो निपात माने गये है। इनमें प्रथम् आ की निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्य संज्ञा होती है। किन्तु सूत्र में अनाङ् कहा गया है अर्थात आङ् की प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है। अब यहाँ पर समस्या यह उत्पन्न होती है कि आङ में ङकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर आ ही बचता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उत्पन्न होता है यह आ चादि गण वाला है। कि प्रादि गण वाला आ। किस जगह अङित आ को माने और किस जगह ङित आ को। इस समस्या के समाधान के लिये सूत्र में लिखा है कि वाक्य स्मरणयोरङित्। अन्यत्र ङित् वाक्य और स्मरण अर्थ में आ को ङित् माना जाय अर्थात चादि गण वाला आ माना जाय और अन्यत्र अङित् माना जाय अर्थात प्रादि गण वाला आङ् माना जाय। इसके उत्तर में भाग्यकार ने स्वयं व्यवस्था दी है।

इषदर्थे क्रिया योगे मर्यादाऽ भिविधौ चयः।
एतमातं ङित विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित्

अर्थात् इषद्= अल्प अर्थ में, क्रिया योगे = क्रिया के साथ योग होने पर, मर्यादा भिविधौ च मर्यादा और अभिविधि अर्थ में अङित् = अर्थात आ मानना चाहिये और अङित् आ कि प्रगृह्य संज्ञा होती है। और ङित् की नहीं होती है। आ एवं नु मन्यसे। (अब तुम ऐसा मानते हो)। यह वाक्य अर्थ में है तथा आ एवं किल तत् हा पर ऐसा ही है। स्मरण अर्थ में आ अङित माना जाये अर्थात चादि गण वाला आ माना जाये। अ ङित अर्थात चादि आ की प्रगृहय संज्ञा होती है। ङित् की प्रगृहय संज्ञा नहीं होती है। इसलिये आ यहाँ पर अङित माना गया है। इसलिये आ की निपात एकाजनाङ इस सूत्र में प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुत प्रगृहया अचि नित्यम् से प्रकृति भाव होकर आ एवं यहाँ पर वृद्धि रेचि से सूत्र से वृद्धि प्राप्त थी। उसको बाधकर प्रकृति भाव हो गया अर्थात उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आ एवं नु मन्यसे तथा आ एवं किल तत् ज्यौ का त्यौ बना रहा। इन दोनों अर्थो से जहा पर भिन्न अर्थ होगा वहा पर प्रकृति भाव नहीं होगा। इषद् आदि अर्थो में ङित होने के कारण प्रगृहय संज्ञा नहीं हुई। तो प्रकृति भाव भी नहीं हुआ। अतः आ का उषाम के उकार के साथ है। अर्थात आ+ उष्णम्। इस अवस्था में आद गुणः सूत्र से गुण होकर आ उ = ओ बना। वर्ण सम्मेलन होकर ओष्णम् प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार इसका अन्य उदाहरण भी देखें-

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

ओत् 1/1/15//

ओदन्तो निपात् प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईशाः।

विग्रह	आदेश	सन्धि
अहो+आश्चर्यम्	अहो+आश्चर्यम्	अहो आश्चर्यम्
अथो+इति	अथो+इति	अथो इति
उताहो+असत्यम्	उताहो+असत्यम्	उताहो असत्यम्

अर्थ- ओकार अन्त वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है।

अहो ईशाः अहो + ईशाः यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अवादेश प्राप्त है। उस अवादेश को बाधकर सूत्र लगा इस चादयोऽसत्वे सूत्र से अहो की निपात संज्ञा हुई। निपात संज्ञा होने के बाद सूत्र लगा- ओत् सूत्र लगा यह सूत्र कहता है कि ओकर अन्त वाला निपात प्रगृहय संज्ञक होता है, वह निपात है। यहाँ पर अहो में जो ओकार है। वह नियात है। ओकारान्त निपात होने से प्रगृह्य

संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृहया अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होता है। अर्थात अहो+ईशाः में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अहो ईशाः ज्यों का त्यों रहा।

इसी प्रकार अथो, नो, आहो, उताहो आदि अन्य उदाहरण भी समझ लेना चाहिये।

घ्यान रहे कि यहाँ पर एक अच् रुप निपात न होने से पूर्व सूत्र द्वारा प्रगुहय संज्ञा नहीं हो सकती है। अतः इस लिये अगला सूत्र अनाया गया।

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे 1/1/16//

सम्बुद्धि-निमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे विष्णो इति। विष्ण- इति। विष्ण विति।

अर्थ-सम्बुद्धि निमितक ओकार से अवेदिक अर्थात वेद में न पाये जाने वाले इति शब्द के परे होने पर विकल्प करके प्रगृहय संज्ञा होती है। उदाहरण यथा -

विष्णो इति- विष्णो + इति (यहाँ पर विष्णो शब्द सम्बोधन एक वचन का रुप है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से विष्णो में ओ के स्थान पर अव् आदेश प्राप्त है उस अवादेश को बाधकर सूत्र लगा। सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। यह सूत्र कहता है कि सम्बुद्धि निमित्तक ओकर से अवैदिक इति शब्द परे होने पर ओकार की प्रगृहय संज्ञा होती है। विकल्प से।

यहाँ पर सम्बुद्धि का ओकार है विष्णो में ओ तथा पर में अवैदिक इति शब्द पर है इति। इसलिये ओकार की प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुत् प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होकर विष्णों इति ज्यौ का त्यौ रहा। अर्थात इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु प्रगृहय संज्ञा विकल्प से होता है। जिस पक्ष में प्रगृहय संज्ञा नहीं होगी उस पक्ष में प्रकृति भाव भी नहीं होगा। अब यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश होकर विष्ण्+अव्+इति बना। णकार में अकार मिलकर विष्णव इति बना। अव् यहाँ पर पदान्त वकार मानकर लोपः शाकल्यस्य सूत्र से विकल्प से व का लोप होकर विष्ण इति सिद्ध होता है (यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण नहीं होता पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र में निर्णय किया गया है।) किन्तु वकार का लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में वकार का लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्णव् इति बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णव विति रुप सिद्ध होता है। इस प्रकार तीन रुप बना - प्रकृति भाव पक्ष में विष्णो इति। अवादेश तथा व का लोप पक्ष में विष्ण इति। व का लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्ण विति। इस प्रकार अन्य उदाहरण भी देखिये।

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
विष्णो इति	विष्णो इति	विष्णो इति
शम्भो इति	शम्भो इति	शम्भो इति
यानो इति	यानो इति	यानो इति

वकारादेश विधायक विधि सूत्रम्

मय उमो वो वा 8/3/33//

मयः परस्य उमो ञो वो वा स्यादचि।

किम्वुक्तम्। किमु उक्तम्॥

अर्थ- मय् प्रत्याहार से परे उ´ निपात को विकल्प करके व आदेश हो जाता है। अच् परे हो तो। यह सूत्र प्रकृतिभाव को बाधकर वकरादेश करने के लिये प्रवृत हुआ है। आदेश न होने के पक्ष में प्रकृतिभाव ही होगा। उ´ में उ ´कार की इत्संज्ञा हो जाने के बाद मात्र ही बचता है।

किम्वुक्तम् किमु उक्तम् किम् + उ´ बना। ´मकार की हलन्त्य सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर किम् + उ बना। वर्ण सम्मेलन होकर किमु + उक्तम् बना। यहाँ पर उ´ का जो उकार

है। वह निपात गण में पढ़ा गया है। निपात गण में पढ़े जाने के कारण निपात एकाजनाङ सूत्र से उ की प्रगृह्य संज्ञा होता है। प्रगृहय संज्ञा होने के बाद प्रकृति भाव प्राप्त था। उस प्रकृति भाव को बाधकर के मय उ वो वा सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि मय् प्रत्याहार से परे उकार के स्थान पर 'व' आदेश होता है। विकल्प से। यहाँ पर मय् प्रत्याहार का वर्ण है। किम् का मकार उस मकार से परे उ्´ का उकार उस उकार के स्थान पर विकल्प से व आदेश होकर किम् + व् + उक्तम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर किम्वुक्तम् प्रयोग सिद्ध होता है। वकार आदेश विकल्प से होता है जिस पक्ष में वकार आदेश नहीं होगा, उस पक्ष प्रकृति भाव होकर किमु उक्तम् ज्यौ का
त्यौ रहा। हस्व समुच्चित प्रकृति भाव विधायक विधि सूत्र

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6/01/127//

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधान सामर्थ्यान्न स्वर संन्धि। चकि अत्र। चक्रयत्र पदान्ता किं गौर्यौ।

अर्थ- असवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त इक् को ह्रस्व होता है। विकल्प से चक्रि अत्र, चक्रयत्र चक्री+अत्र यहाँ पर इकोयणचि सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर सूत्र लगा। इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि पदान्त इक् को ह्रस्व होता है असवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो (सवर्णी असवर्णी स्वर के बारे में दीर्घ सन्धि में विशेष प्रकार से बताया गया है।) यहाँ पर पदान्त इक् प्रत्याहार का वर्ण है चक्री में ई तथा पर में असवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है अत्र का अकार। इस लिये चक्री में जो दीर्घ ईकार है। उसको ह्रस्व होकर चक्रि+अत्र प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर ह्रस्व होने के बाद भी इकोयणचि सूत्र से यण् होना चाहिये किन्तु सूत्र में कहा गया है कि ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वर संन्धिः अर्थात ह्रस्व विधान करने के सामर्थ्य से स्वर सन्धि नहीं होती है। यहाँ पर एक बार ह्रस्व विधान कर दिया गया है इसलिये इको यणचि सूत्र से यण् नहीं होगा। चक्रि अत्र ऐसा ही रहेगा। किन्तु ह्रस्व विकल्प से होता है। जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में यण् होकर चक्र्य्+अत्र बना। वर्ण सम्मेलन न होकर चक्रयत्र प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रुप बना। ह्रस्व पक्ष में चक्रि अत्र ह्रस्व नहीं होगा तो चक्रयत्र प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ताः इति किम् गौर्यौ। सूत्र में कहा गया है कि पदान्त इक् को ही ह्रस्व हो। पदान्त इक् नहीं होगा तो ह्रस्व नहीं होगा, ऐसा क्यों कहा गया? पदान्त इक् इसलिये कहा गया कि गौरी+औ यहाँ पर प्रकृति है गौरी और प्रत्यय है औ। जब तक प्रकृति प्रत्यय नहीं मिलता तब तक पदान्त नहीं बनता यदि पदान्त नहीं कहा गया तो गौरि+औ में ह्रस्व होकर गौरी औ ऐसा अनिष्ठ प्रयोग न बन जाये इसलिये यहाँ पर पदान्त ग्रहण किया गया। इसके बाद इ को यणचि सूत्र से यण् होकर गौर्यौ प्रथमा विभक्ति में बनता है।

इस सूत्र का अन्य उदाहरण -

विग्रह	**आदेश**	**संन्धि**
चक्री+अत्र	चक्रि+अत्र	चक्रि अत्र
योगी+आगच्छति	योगि+आगच्छति	योगि आगच्छति
कुमारी+अत्र	कुमारि+अत्र	कुमारि अत्र
वारि+अत्र	वारि+अत्र	वारि अत्र

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखना चाहिये।

वैकल्पिक द्वित्व विधायक विधि सूत्र

अचोरहाभ्यां द्वे 8/4/46//अच्ः पराम्यां रेफ हकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वास्तः गौर्यौ।

अर्थ- अच् प्रत्याहार से परे जो रेफ और हकार उस रेफ और हकार से परे जो यकार है उसको विकल्प से द्वित्व होता है।

गौर्यौः - पूर्व सूत्र में गौर्यौ बताया गया है। उसमें आगे की विधि को बता रहे है। गौरी+औ इस स्थिति में इको यणचि सूत्र से यण् होने के बाद गौर् य्+औ बना। उसके बाद सूत्र लगा- अचोरहाभ्यां द्वे। यह सूत्र कहता है कि अच् प्रत्याहार से परे रेफ और हकार, और उस रेफ और हकार से परे यर् प्रत्याहार के वर्ण को द्वित्व होता है। यहाँ पर गौर् य्+औ में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। ग् में औ इससे परे रेफ है र् इस रकार से परे यर् प्रत्याहार का वर्ण है यकार, उसको विकल्प से द्वित्व होता है। यहाँ पर य् को द्वित्व होकर गौर् य्+ औ बना। र् को उर्ध्व गमन तथा यकार में और मिलकर गौयर्यौ प्रयोग सिद्ध होता है। द्वित्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा उस पक्ष में गौर्यौ प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बना गार्यौ, गोर्यौ। इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण-

दित्वाभाव

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
अर्+कः	अर्कः	अर्क्कः अर्क्कः
कार्+यम्	कार्यम	कार्+य्+य्र कार् य्यम्

वार्तिक ९ न समासे वाप्यश्वः

समास में असवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर पदान्त इक को ह्रस्व नहीं होता है।

वापी+अश्वः (तालाब में घोडा)

वापप्यामश्वः लौकिक विग्रह हुआ । वापी +ङि+अश्व सु, अलौकिक विग्रह हुआ । सप्तमी तत्पुरूष समास होकर विभक्ति का लुक् करके वापी+अश्व बना। अब यहाँ पर इको'ऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च इस सूत्र से वापी में पी में जो इकार है उसको ह्रस्व होना चाहिए । किन्तु न समासे वाण्यश्वः इस वार्तिक के द्वारा ह्रस्व विधान को निषेध होकर वापी+अश्वः ऐसा ही रहा। अब इको यणचि सूत्र से यण् आदेश होकर वाप्य्+अश्वः बनता है । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर वाण्यस्वः प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

ह्रस्व समुचित प्रकृति भाव विधायक विधि सूत्र

ऋत्यकः 6/1/128//

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा । ब्रह्म+ऋषिः। ब्रह्मर्षि। पदान्ताःकिम्? आर्च्छत्।

अर्थः- ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है । ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। ब्रह्म , ऋषिः यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था । उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ऋत्यकः। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्व ऋकार परे होनें पर अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है । यहाँ पर ह्रस्व ऋकार पदान्त पर में है । ऋषि का ऋकार, उससे पूर्व में पदान्त अक् प्रत्याहार का वर्ण है । ब्रहमा का आकार उस आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है । ह्रस्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में आद् गुणः से गुण होकर ब्रह्म+ अर् +षिः बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बनते है । 1 - व्रह्म ऋषिः तथा 2- ब्रह्मर्षि:

पदान्ता किम् किम आच्र्छत् । यहाँ पर प्रश्न करते है कि ऋत्यकः सूत्र में पदान्ताः नहीं पढ़ा गया होता तो क्या हानी होती ? उत्तर दिया आच्र्छतः प्रयोग की सिद्धि नहीं हो पाती । यथा-आ-ऋच्छत् यहाँ पर ऋच्छ धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रुप है । 'आ' यह यहाँ पर आट् का आगम हुआ है । इसलिए यह जो आ है। वह अपदान्त है। अपरान्त होने से ऋकार पर में होने के बाद भी ह्रस्व नहीं होगा । आटश्च सूत्र से में पूर्व में 'आ' तथा पर में ऋ दोनों के स्थान पर वृद्धि होकर आच्र्छत प्रयोग सिद्ध होता है। अतः इस सूत्र में पदान्त का ग्रहण नहीं किया गया होता तो अ ऋच्छत् ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए पदान्त का ग्रहण किया गया। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखिये -

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**	**ह्रस्वाभाव**
कुमारी + ऋतुमती	कुमार् + इ+ ऋतुमती	कुमारि ऋतुमती	कुमार्यृ तुमती
कन्या + ऋज्वी	कन्य् + अ+ ऋज्वी	कन्य ऋज्वी	कन्र्यज्वीं
महा + ऋषि	मह् + अ + ऋषि	मह ऋषि	महर्षि

इस प्रकार सन्धि प्रकरण सम्पूर्ण हुआ ।

अभ्यास प्रश्न

1. गो अग्रम किस सूत्र का उदाहरण है?
2. प्लुत किसे कहते है?
3. हरी एतौ में कौन सा सूत्र लगा है?
4. अदस् शब्द के मकार से परे इत् ऊत् की क्या होती है?
5. चादियों का द्रव्य अर्थ न हो तो उनकी क्या होती है?
6. आङ् को छोड़कर एक मात्र की क्या होती है?
7. ओकार अन्तवाला निपात की क्या होती है?
8. चक्रि अत्र में यहाँ पर पदान्त इक् है?
9. असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त इक् को क्या होता है ?
10. ह्रस्वं विधान सामर्थ्य से कौनसी सन्धि नहीं होती है?
11. चक्रिअत्र यह किस सूत्र का उदाहरण है?
12. गौरी + औ में यहां पर इकोऽसवर्णे से ह्रस्वं क्यों नहीं हुआ?
13. अच से परे रेफ और हकार ओर उस के रेफ और ह से परे यर को क्या होता है?
14.असवर्ण अच् परे होने पर पदान्त इक् को ह्रस्वं नहीं होता है कहां पर?
15. ऋकार परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से क्या होता है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. गो + अग्रम में सन्धि हुई:-

(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) प्रकृतिभाव (घ) अयादि

2. प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर होता है:-

(क) प्रकृतिभाव (ख) पररूप (ग) पूर्वरूप (घ) गुण

3. इदन्त उदन्त द्विवचन की होती है:-

(क) प्रगृह्य संज्ञा (ख) प्लुत संज्ञा (ग) ह्रस्वं संज्ञा (घ) दीर्घ संज्ञा

4. ब्रह्म ऋषिः किस सूत्र का उदाहरण है:-

(क) आदगुणः (ख) अकः सवर्णेदीर्घः (ग) ऋत्यकः (घ) अनचि च

5. 4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप प्रकृतिभाव सन्धि के विषय में जान गये होंगे। प्रकृतिभाव सन्धि के मुख्य सूत्र है - सर्वत्रविभाषा गोः, प्लुत-प्रगृह्याचिनित्यम्, इदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्, निपात एकाजनाङ, ओत्-आदि। इस इकाई में अनेक सूत्रों का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है। प्रकृतिभाव सन्धि अच् सन्धि के अन्तर्गत है। इसमें जहाँ प्लुत और प्रगृह्य संज्ञक शब्द होंगे वहां पर प्रकृतिभाव सन्धि होती है। आङ् शब्द को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है। जिसकी पहले निपात् संज्ञा हो चुकी है, और उसमें मात्र केवल एक ही अच् हो, और वह एक अच् भी आङ् वाला न होतो उसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हे जाती है। अनाङ् अर्थात् आङ् को छोड़कर। ऐसा इस लिये कहा गया है कि आङ् में ड.कार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप हो जाने के बाद आ मात्र वचता है। उसकी निपात संज्ञा न हो सके। क्योंकि आङ् को छोड़कर सभी एकाच निपात प्रगृह्य संज्ञक होते है। ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। ब्रह्म , ऋषिः यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ऋत्यकः। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्व ऋकार परे होनें पर अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। यहाँ पर ह्रस्व ऋकार पदान्त पर में है। ऋषि का ऋकार, उससे पूर्व में पदान्त अक् प्रत्याहार का वर्ण है। ब्रहमा का आकार उस आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है। ह्रस्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में आद् गुणः से गुण होकर ब्रह्म+अर्+षिः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर ब्रह्मर्षि: प्रयोग सिद्ध होता है।

5.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
गो अग्रम्	गाय का अग्र भाग
गौः	गाय का
गवेन्द्रः	सांड़ बड़ा बैल
हरी एतौ	ये दोनों हरि, घोड़े बन्दर है
विष्णू इमौ	ये दोनों विष्णु हैं
अमी ईशाः	ये दोनों स्वामी हैं
रामकृष्णावमू आसाते	राम कृष्ण दोनों बैठे हैं
इ इन्द्रः	यह इन्द्र है
उ उमेशः	यह शिव है
आ एवं नु मन्यसे	तुम ऐसा मानते हो
आ एवं किल तत्	हाँ यह ऐसा ही था
ओष्णम्	कुछ गरम, कुछ ठण्डा
अहो ईशाः	अहो ये स्वामी है
किम्वुक्तम्	क्या कहा
चक्रि अत्र	विष्णु यहाँ है

वाप्यश्वः बावड़ी में घोड़ा

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सर्वत्र विभाषा गोः
2. त्रिमात्रिक को प्लुत कहते हैं
3. (इदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्)
4. प्रगृह्य संज्ञा
5. (निपात संज्ञा)
6. (प्रगृह्य संज्ञा)
7. (प्रगृह्य संज्ञा)
8. (क्रि मे इ)
9. (ह्रस्व)
10.(स्वर सन्धि)
11.(इकोऽसवर्णेकल्यस्य ह्रस्वश्च)
12. (पदान्त न होने से)
13. (द्वित्व)
14. (समास में)
15.(ह्रस्व)

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (ग)

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
2. सिद्धान्तकौमुदी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी.- श्रीधरानन्दशास्त्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एतन्मुरारिः प्रयोग को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए।
2.सर्वत्र विभाषा गो: सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. निपात संज्ञा को उदाहरण सहित समझाएं।
4. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के आधार पर तीन प्रयोगों की सिद्धि का अभ्यास कीजिए।

खण्ड-तीन (Section-C)
लघुसिद्धान्तकौमुदी : हल् एवं विसर्ग सन्धि

इकाई-1 हल् सन्धि नियम एवं उदाहरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 हल् सन्धि नियम एवं उदाहरण

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्न-उत्तर

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तके

1.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र से सम्बन्धित यह प्रस्तुत खण्ड की पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि हल् सन्धि कहाँ पर होती है ? अतः इस इकाई में मुख्य रूप से हल् सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है। जहाँ पर दो हल् अर्थात् व्यंजन वर्णों को जहाँ पर मेल किया गया हो उसे हल् सन्धि कहते है।

व्याकरण शास्त्र में हल् सन्धि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। शब्द का ज्ञान व्याकरण शास्त्र के बिना सम्भव नहीं है। शब्दों के अर्थो के ज्ञान के लिए व्याकरण शास्त्र का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई के अध्ययन से हल् सन्धि को ज्ञान करते हुए, उसकी महत्ता को आप भली-भाँति समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- हल् सन्धि में अनेक महत्त्वपूर्ण सन्धियों का ज्ञान करेंगे।
- श्चुत्व सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होंगे।
- ष्टुत्व सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होंगे।
- जश्त्व सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होंगे।
- हल् सन्धि में परसवर्ण सन्धि के विषय में भली-भांति परिचित होंगे।
- चर्त्व सन्धि के विषय में आप भली भांति परिचित होंगे।
- छत्व सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होंगे।

1.3 अनुनासिक सन्धि

अनुनासिक आदेश विधायक विधि सूत्र—

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा 8।4।44।।

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽननुनासिको वा स्यात् ।

एतन्मुरारिः एतद् मुरारिः ।

अर्थ:- अनुनासिक वर्ण यदि पर में हो तो पदान्त यर् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान पर अनुनासिक आदेश होता है विकल्प से। जो वर्ण मुख और नासिका दोनों से बोला जाता है। उसे अनुनासिक कहते है। मुखनासिका वचनोऽनुनासिकः यह सूत्र ही प्रमाण है। अनुनासिक अच् और हल् दोनों प्रकार के वर्ण होते हैं। किन्तु पदान्त यर् से परे अनुनासिक वर्ण कहीं नहीं देखा जाता है। अतः यहां पर हल् वर्ण अनुनासिक का ही ग्रहण किया जाता है। अनुनासिक हल् वर्ण पांच है। 1-य्, 2-म, 3-ङ्, 4-ण, 5- न । इन पांच वर्णो में से किसी वर्ण के परे होने पर पदान्त यर् को विकल्प करके अनुनासिक होगा। यर् प्रत्याहार में केवल हकार को छोड़कर सभी हल् वर्ण आते है। स्थानेऽन्तरतमः सूत्र से वहीं वर्ण आदेश होगा जिसका यर् के साथ स्थान तुल्यता हो। यथा कवर्ग के वर्ण को ङ, चवर्ग के वर्ण को, ट वर्ग के वर्ण को ण, टवर्ग के वर्ण को न, तथा पवर्ग के वर्ण स्थान पर म आदेश होता है।

उदाहरण:-

एतन्मुरारिः एतत् + मुरारिः यहाँ पर पहले झलां जशोऽन्ते सूत्र से पदान्त झल् प्रत्याहार का वर्ण है एतत् का तकार, इसको जश्त्व तकार को दकार आदेश होकर एतद् + मुरारिः प्रयोग बना। यहां पर सूत्र लगा - यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा। यह सूत्र कहता है कि अनुनासिक वर्ण यदि पर में हो तो पदान्त पर, प्रत्याहार के वर्ण को विकल्प से अनुनासिक हो जाता है। इसलिए एतद् +मुरारि में अनुनासिक वर्ण पर में है मुरारिः का मकार और पूर्व में पदान्त यर् प्रत्याहार का वर्ण है एतद् का दकार। अब एतद् के दकार के स्थान पर अनुनासिक वर्ण भ, म, ङ, ण, न ये पांचों वर्ण एक साथ प्राप्त होते हैं। एक वर्ण के स्थान पर पांच अनुनासिक वर्णों का प्राप्ति होना अनियम् हुआ। उस अनियम को रोकने के लिए स्थानेऽन्तरतम्: सूत्र से स्थान मिलाने से दन्त स्थान वाला वर्ण द् के स्थान पर दन्त स्थान वाला वर्ण अनुनासिक नकार आदेश होकर एतन् + मुरारिः प्रयोग बना। वर्ण सम्मेलन होकर एतन्मुरारिः प्रयोग सिद्ध होता है। अनुनासिक विकल्प से होता है। जिस पक्ष में अनुनासिक वर्ण नकार नहीं होगा उस पक्ष में एतद् मुरारिः ही प्रयोग सिद्ध होता है। इसके बाद अनुनासिक नित्य होता है।

वार्तिक:- प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रम् । चिन्मयम्।

अर्थ:- अनुनासिक वर्ण आदि में हो, ऐसे प्रत्यय के परे होने पर लौकिक प्रयोगों में पदान्त यर् के स्थान पर नित्य ही अनुनासिक वर्ण आदेश होता है। **उदाहरण:-**

तन्मात्रम् - तत् + मात्रम् यहां सूत्र लगा झलां जशोऽन्ते। इस सूत्र के द्वारा पदान्त झल् प्रत्याहार का वर्ण है तत् का तकार। इस तकार के स्थान पर जश्त्व दकार होकर तद् + मात्रम बना। इसके बाद वार्तिक लगा-प्रत्यये भाषायां नित्यम् यह वार्तिक कहता है कि अनुनासिक वर्ण आदि में हो तो ऐसे प्रत्यय के परे होने पर लौकिक प्रयोगों में पदान्त यर् के स्थान पर नित्य अनुनासिक वर्ण आदेश होता है। तद् + मात्रम् यहां पर प्रत्यय है मात्रम् उसके आदि में अनुनासिक वर्ण है मकार, ऐसे मकार के परे होने परे पदान्त यर् प्रत्याहार का जो वर्ण है तद् का दकार । उस दकार के स्थान पर नित्य अनुनासिक पांचों वर्ण प्राप्त होते हैं। इसलिए एक वर्ण के सथान पर पांच वर्णों की होना अनियम है उस अनियम् को रोकने के लिए स्थानेन्तरमः सूत्र के द्वारा पदान्त यर् प्रत्याहार का वर्ण तद् के दकार के स्थान पर दन्त स्थानिक वर्ण नकार होता है अर्थात् द के स्थान पर नित्य अनुनासिक नकार होकर तन्+मात्रम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर तन्मात्रम् प्रयोग सिद्ध होता है।

चिन्मयम्-उसी प्रकार चित् + मयम् यहां पर झलां जशोऽन्ते सूत्र से चित् के तकार के स्थान पर जश्त्व दकार होकर चिद् + मयम् बना। उसके बाद इस वार्तिक के द्वारा नित्य अनुनासिक नकार होकर चिन् + मयम् बना। तथा वर्ण सम्मेलन होकर चिन्मयम् प्रयोग सिद्ध होता हैं।

अनुनासिक सन्धि का उदाहरण

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
एतद् +मुरारिः	एत्न + मुरारिः	एतन्मुरारिः
अग्निचिद् +नयति	अग्निचिन् + नयति	अग्निचिन्नयतिः
तद् + नः	तन् + नः	तन्नः
दिग् + नागः	दिङ् + नागः	दिङ्नागः
वाग् + मयम्	वाङ् + मयम्	वाङ्मयम्
जगद् + नाथः	जगन् + नाथः	जगन्नाथः

मद् + याता	मन् + याता	मन्याता
किञ्चिद् + मात्रम्	किञ्चिद् + मात्रम्	किञ्चिन्मात्रम्
वाग् + यलम्	वाङ्. + यलम्	वाङ्यलम्
सद् + मार्गः	सन् + मार्गः	सन्मार्ग
इड् + निषेधः	इण् + निषेधः	इण्निषेधः
षड् + मासा	षण् + मासाः	षण्मासाः
चिद् + मात्रम्	चिन् +मात्रम्	चिन्मात्रम्
चिद् + मयम्	चिन् +मयम्	चिन्मयम्

हल् सन्धि में परसवर्ग सन्धि का उदाहरण

परसवर्ण विधायक विधि सूत्रः-

तोर्लि 8 । 4 । 60।।

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्गः स्यात्। तल्लयः ।

विद्वॉल्लिखति। नस्यानुनासिको लः।

अर्थः-लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है।

भाव यह कि तवर्ग से जब लकार परे हो तो तवर्ग के स्थान पर लकार का परसवर्ण आदेश किया जायेगा। लकार का लकार के सिवाय अन्य कोई सवर्ण नहीं होगा। अतः तवर्ग के स्थान पर सवर्ण लकार ही आदेश होगा। लकार दो प्रकार के होते है। 1-अनुनासि (लं), अननुनासिक (ल)। स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से तवर्गस्थ अनुनासिक वर्ण के स्थान पर अनुनासिक लकार तथा दूसरा अननुनासिक वर्ण के स्थान पर अननुनासिक लकार होगा। तवर्ग में नकार के सिवाय दूसरा कोई वर्ण अनुनासिक नहीं है। अतः अनुनासिक लकार हुआ। उदाहरण-

तल्लयः- तद् + लयः यहाँ पर सूत्र लगा-तोर्लि यह कहता है कि तवर्ग से लकार पर में हो तो, तवर्ग के स्थान में परसवर्ग होता है। यहाँ पर तवर्ग का वर्ण है तद् का दकार तथा पर में लयः का लकार होने के कारण दकार के स्थान में परसवर्ण लकार होकर तल् + लयः प्रयोग बना। वर्ण सम्मेलन होकर तल्लयः प्रयोग सिद्ध होता है।

विद्वाँल्लिखतिः-विद्वान् + लिखति इस दशा में तोर्लि सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर परसवर्ग आदेश होता है। यहां पर विद्वान् + लिखति में तवर्ग का वर्ण है अनुनासिक न् तथा पर में वर्ण है लिखति का लकार इसलिए अनुनासिक नकार के स्थान पर परसवर्ण लॅकार होकर विद्वालॅं लिखति बना। तथा वर्ण सम्मेलन विद्वॉल्लिखति प्रयोग सिद्ध होता है।

परसवर्ण सन्धि का उदाहरणः-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
तत् + लयः	तल् + लयः	तल्लयः
कश्चिद्+लभते	कश्चिल् + लभते	कश्चिल्लभते
तद् + लीनः	तल् + लीनः	तल्लीनः
उद् + लेखः	उल् + लेखः	उल्लेखः
यद् + लक्षणम्	यल् + लक्षणम्	यल्लक्षणम्
जगद् + लीयतेः	जगल् +लीयतेः	जगल्लीयते

चिद् + लयः	चिल् + लयः	चिल्लयः
विपद् + लीनः	विपल् + लीनः	विपल्लीनः
कुशान् + लुनाति	कुशालँ + लुनाति	कुशाल्लुँनाति
महान् + लाभः	महालँ + लाभः	महाल्लाँभः
हनुमान + लंकादहति	हनुमालँ + लंकादहति	हनुमाल्लंकादहति
धनवान् + लुनीते	धनवालँ + लुनीते	धनवाल्लुँनीते
विद्युत् + लेखा	विद्युलँ + लेखा	विद्युल्लेँखा

इस प्रकार लकार परसवर्ण सन्धि का अन्य उदाहरण भी देंखे।

पूर्व सवर्ण सन्धि:-

अब हल् सन्धि में पूर्व सवर्ण सन्धि का उदाहरण दिया जा रहा है -

पूर्व सवर्ण विधायक विधि सूत्र -

उदः स्था-स्तम्भोः पूर्वस्य 8 ।4 । 61।।

उदः परयोः स्था-स्तम्भोः पूर्वसवर्णः।।

अर्थः-उद् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण हो।

उदः यहां पर दिग्योग पंचमी है। अर्थात् 'उद्' से किसी दिशा में स्थित में स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण होगा। वर्णो में दो ही दिशा सम्भव हो सकती है एक पर और दूसरा पूर्व। अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या उद् से पूर्वस्थित स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण हो या पर स्थित स्था और स्तम्भ को पूर्व सवर्ण हो? इन समस्याओं के निवृत्ति के लिए अग्रिम परिभाषां सूत्र लिखते है।

नियम कारक परिभाषा सूत्र

तस्मादित्युत्तरस्य1 । 1 । 61।।

पंचमी निर्देशेन क्रियमाणं कार्य वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम्।

अर्थ- पंचम्यन्त पद के निर्देश से किया जाने वाला कार्य अन्य वर्णों के व्यवधान से रहित पर के स्थान पर जानना चाहिए।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य आदि सूत्रों में उदः ऐसा पंचम्यन्त पद उससे निर्दिष्ट कार्य किसी वर्ण के व्यवधान के बिना उत् आदि से परे में स्था, स्तम्भ के स्थान पर पूर्व सवर्ण होता है।

उद्+स्थानम्, उद्+स्तम्भनम् इन दोनों स्थानों पर 'उद्' से परे अव्यवहित स्था और स्तम्भ विद्यमान है। अतः इनके स्थान पर पूर्वसवर्ण करना है। अब स्था और स्तम्भोः के षष्ठयन्त होने से अलोऽन्त्यस्य सूत्र से इनके अन्त्य अल् के स्थान पर पूर्व सवर्ण प्राप्त होता है। इस पर अलोऽन्त्यस्य की अपबाद परिभाषा सूत्र लिखते है-

नियम कारक परिभाषा सूत्र -

आदेः परस्य 1। 1 । 53 ।।

परस्य यद विहितं तत् तस्यादेर्वोध्यम्। इति सस्य थः।

अर्थ- पर के स्थान पर जो कार्य का विधान किया जाता है वह कार्य उस (पर) के आदि वर्ण के स्थान पर समझना चाहिए।

उद् + स्थानम्, उद् + स्तम्भनम् यहां तस्मादित्युत्तरस्य परिभाषा सूत्र की सहायता से 'उदः स्था स्तम्भोः पूर्वस्य' इस सूत्र के द्वारा पहले स्था स्तम्भ को पूर्व सवर्ण होना था। अब इस परिभाषा

सूत्र के द्वारा पर के आदि वर्ण अर्थात् स्था और स्तम्भ के आदि वर्ण स् के स्थान पर पूर्वसवर्ण होगा।

अब यहां पर यह विचार प्रस्तुत करते है कि उद् + स्था और उद् + स्तम्भनम् यहां पर सकार के स्थान पर दकार का सवर्णो का वर्ण कौन सा होगा? क्योंकि पूर्व में जो वर्ण द् है उसका सवर्णो वर्ण पांच है त, थ, द, ध, न। एक वर्ण के स्थान पर एक ही सवर्ण वर्ण होगा पांच सम्भव नहीं है। इस शंका के निवारण के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र आया। यह कहता है कि प्राप्त हुए आदेशों में अत्यन्त सदृश वर्ण आदेश होगा। अब हमें यहां पर त, थ, द, ध, न इन पांच वर्णो में से सकार का अत्यन्त सृदश वर्ण ढूंढना है। यदि स्थान कृत तुल्यता देखते है तो स का स्थान दन्त है तथा त, थ, द, ध, न इन सबका स्थान दन्त है। अतः इस सादृश्यता से काम नहीं चलेगा। अब इसके बाद यत्नकृत सादृश्य देखते है। यत्न दो प्रकार के है यह पहले संज्ञा प्रकरण में बताया गया है। 1 - आभ्यन्तर प्रयत्न 2- वाहय प्रत्यन । अब आभ्यन्तर प्रयत्न में स का सबसे सन्निकट वर्ण कौन सा है? स का आभ्यन्तर प्रयत्न में इषद्विवृत प्रत्यत्न है तथा त ध द ध न इन पांच वर्णो का स्पृष्ट प्रत्यन है। इसलिए सकार के स्थान में इन पांचों वर्णो में से कोई नहीं होगा। अब देखते है स का वाहय प्रयत्न में कौनसा वर्ण सादृश्य है। सकार का बाहय प्रयत्न में विवार, श्वास, अद्योष और महाप्राण वाला कौन सा वर्ण है। उनको निम्न प्रकार से देंखे -

त् का वाह्य प्रयत्न विवार श्वास अघोष और अल्पप्राण

थ का वाह्य प्रयत्न विवार, श्वास, घोष और महाप्राण

द का वाह्य प्रयत्न संवाद, नांद, घोष और महाप्राण

ध का वाह्य प्रयत्न सवार, नांद, घोष और महाप्राण

न का वाह्य प्रयत्न सवार, नांद, घोष और महाप्राण

इससे सिद्ध होता है कि वाह्य प्रयत्नों की दृष्टि से थकार ही सकार के समान है। अतः सकार के स्थान में पूर्व सवर्ण थकार ही होता है। इस प्रकार उद् + थ् + थानम्, उद् + थतम्भनम् बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत होता है।

वैकल्पिक लोप विधायक विधिसूत्र

झरो झरि सवर्णे 8 । 4 । 65 ।।

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि।

अर्थ-हल् से परे झर् का लोप होता है विकल्प से, सवर्ण झर् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो। हल् प्रत्याहार में पुरे व्यंजन वर्ण आते है। इस हल् प्रत्याहार के वर्ण से परे झर् प्रत्याहार (झ, भ, घ, ढ़, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष स) का वर्ण हो तो लोप हो जाता है। सवर्णे झर प्रत्याहार का वर्ण हो तो।

उद् + थ् थानम्, उद् + थ तम्भनम् यहाँ पर हल् प्रत्याहार का वर्ण है, उद् का दकार। उस हल् वर्ण द से परे झर् प्रत्याहार का वर्ण है, थ् थानम् का पूर्व थ् और उस थकार से सवर्णे झर् प्रत्याहार का वर्ण है थानम् का थ् तथा थ तम्भनम् का थ्। इसलिए विकल्प थकार का लोप होकर उद् + थानम् बना। जिस पक्ष में लोप नहीं होगा, उस पक्ष में उद् + थ् थानम् तथा उद् + थ् तम्भनम् बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत हो रहा है-

चर् आदेश विधायक विधि सूत्र

खरि च 8 । 4 । 54 ।।

खरि झलां चरः स्युः। इत्युदोदस्य तः।

उत्थानम्। उत्तम्भनम्

अर्थ:-खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो झल् के स्थान में चर् आदेश होता है।

इत्युदोदस्यः तः इस सूत्र से दकार को तकार हो गया। लोप होने के बाद उद् + थानम् ! उद् + तम्भनम् अब यहाँ पर सूत्र लगा - खरि च यह सूत्र कहता है कि खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो झल् प्रत्याहार के वर्ण के स्थान पर चर् प्रत्याहार का वर्ण होता है। उद् + थानम् उद् तम्भनम् यहाँ पर खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में है, उद् + थानम् में थकार तथा उद् तम्भनम् में तकार! उससे पूर्व झल् प्रत्याहार का वर्ण है उद् में द्। इस दकार के स्थान में चर् प्रत्याहार का वर्ण त् होकर उत् + थानम्। उत् तम्भनम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर उत्थानम् और उत्तम्यनम् प्रयोग सिद्ध होता है और जिस पक्ष में झरो झरि सवर्णे से लोप नहीं होगा, उस पक्ष में उद् + थ् + थानम्, उद् + थ् + तम्भनम् खरि च से चर्त्व तथा वर्ण सम्मेलन उत्थ्यानम्, उत्थ्तम्भनम् प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देंखे -

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
उद् + स्थानम्	उत् + थानम्	उत्थानम्
उद् + स्तम्भनम्	उत् + तम्भनम्	उत्तम्भनम्
उद् + स्थापयति	उत् + थापयति	उत्थापयति
भेद् + तुम	भेत् + तुम	भेत्तुम्
उद् + स्थितः	उत् + थितः	उत्थितः
उद् + स्तम्भते	उत् + तम्भते	उत्तम्भते
लिम् + सा	लिप् + सा	लिप्सा
उद् + स्थातव्यम्	उत् + थात्व्यम्	उत्थातव्यम्
युयुध् + सवः	युयुत् + सवः	युयुत्सवः
तद्व + त्वम्	तत् + त्वम्	तत्त्वम्
त्वद् + तः	त्वत् + तः	त्वत्तः
तद् + तरति	तत् + तरति	तत्तरति
यद् + तनोति	यत् + तनोति	यत्तनोति

अभी तक आपने हल् सन्धि में नित्य पूर्वसवर्ण सन्धि पढ़ा। अब इसके बाद विकल्प से पूर्व सवर्ण होता है। इसके विषय में अध्ययन करेंगे।

वैकल्पिक पूर्वसवर्ण विधायक विधि सूत्र

झयो होऽन्यतरस्याम् 8। 4। 62।।

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः।

नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य तादृशो वर्ग चतुर्थः। वाग्घरिः वाग्हरिः।

अर्थः- झय् से परे हकार के स्थान पर विकल्प से पूर्व सवर्ण होता है। नाद्, पोष संवार और महाप्राण यत्न वाले हकार के स्थान पर वैसा वर्गो का चतुर्थ वर्ण होगा। उदाहरण यथा:-

वाग्धरिः वाक् + हरिः यहाँ पर सर्व प्रथम झलां जशोऽन्ते सूत्र के द्वारा पदान्त झल् प्रत्याहार का वर्ण के स्थान पर जश्त्व ग् होकर वाग् + हरिः बना। अब इसके बाद सूत्र लगा झयो होऽन्तरस्याम्

यह सूत्र कहता है कि पदान्त झय् प्रत्याहार (झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ ध ठ थ च त त क प) को वर्ण से परे हकार के स्थान पर पूर्व सवर्ण अर्थात् गकार का सवर्ण आदेश करना है। गकार का सवर्णे में से हकार के स्थान पर कौन सा, गकार का सवर्णो पांच वर्ण (क ख ग घ ङ.) है। इन पांचों वर्णो में से हकार के स्थान पर कौन सा वर्ण हो? ऐसी शंका उत्पन्न होने पर स्थानेऽन्तरमः सूत्र उपस्थित होकर कहता है कि जो हकार के साथ अत्यन्त सदृश हो वही हकार के स्थान पर आदेश किया जाये। अब यदि स्थान कृत आदेश मिलाते है तो हकार के स्थान पर क वर्ग का पांचों वर्ण प्राप्त होते है। आभ्यन्तर प्रयत्न भी हकार के साथ तुल्य नहीं मिलता है क्योंकि क वर्ग का प्रत्यन है स्पृष्ट तथा हकार का प्रयत्न है इषद्विवृत इसलिए भिन्न होने से ये भी नहीं प्राप्त है। अतः बाह्य प्रयत्न वाला हकार ही है। इसलिए हकार के स्थान पर विकल्प से घकार होकर वाग् + घरिः बना। वर्ण सम्मेलन होकर वाग्घरिः प्रयोग सिद्ध होता है और पूर्व सवर्ण विकल्प पक्ष में वाग्हरिः प्रयोग सिद्ध होता है। इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण है:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
वाक् + हरिः	वाग् + घरिः	वाग्घरिः
तद् + हानिः	तद् + घानि	तद्धानिः
अच् + हीनम्	अज् + झीनम्	अज्झीनम्
मधुलिड् + हसति	मधुलिड् + ढसति	
मधुलिड्ढ़सति		
अच् + ह्स्वः	अज् + झस्वः	अज्झस्वः
दिग् + हस्ती	दिग् + घस्ती	दिग्घस्ती
दूरात् + हूते	दूराद् + घूते	दूराद्धूते
समुद्र + हर्ता	समुद् + धर्ता	समुद्धर्ता
मित्वाद् + ह्रस्वं	मित्वाद् + ध्रस्वः	मित्वाद्ध्रस्वः
सम्पद् + ह्रस्वंः	सम्पद् + ध्रस्वः	सम्पद्ध्रस्वः
वणिग् + हस्ती	वणिग् 4 धस्ती	वणिग्घस्ती
रत्नुड् + हरति	रत्नमुड् + ढरति	रत्नुमुड्ढरतिं

निष्कर्ष:- यह है कि झय् प्रत्याहार क वर्ग से परे हकार घकार च वर्ग से परे हकार को झकार, ट वर्ग से परे हकार को ढकार, त वर्ग से हकार को धकार तथा पवर्ग से परे हकार को भकार विकल्प से होता है। पक्ष में हकार भी रहता है। इस प्रकार पूर्व सवर्ण सन्धि समाप्त होता है।

वैकल्पिक छत्व विधायक विधि सूत्र

शश्छोऽटि 8 । 4 । 6 ।।

झयः परस्य शस्य छो वा अटि। तद् + शिव इत्यत्र

दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः।

तच्छिवः तच्शिवः।

अर्थ:- झय से परे शकार को 1 विकल्प से छकार होता है। अट् परे हो तो।

पूर्व में झय् प्रत्याहार (झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प) का वर्ण हो पर में अट् प्रत्याहार का वर्ण हो और मध्य में शकार हो तो शकार के स्थान में छकार विकल्प से होता है और एक पक्ष में शकार ही रहेगा।

उदाहरण:-

तच्छिवः तच्शिवः तत् + शिवः यहां सबसे पहले झलां जशोऽन्ते सूत्र से तत् के तकार के स्थान पर जशत्व दकार होकर तद् + शिवः बना। यहाँ पर तवर्ग और शकार का योग होने से दकार के स्थान पर स्तोःश्चुना श्चुः सूत्र के द्वारा श्चुत्व जकार होकर तज् + शिवः बना। इसके बाद जकार के स्थान पर खरि च सूत्र से चकार होकर तच् + शिवः बना। इसके बाद यह सूत्र लगा शश्छोऽटि। यह सूत्र कहता है कि झय प्रत्याहार से परे शकार के स्थान पर छकार आदेश विकल्प से होता है। अट् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो यहां पर झय प्रत्याहार का वर्ण है। तच् का चकार इससे परे शकार है, शिव का शकार। उस शकार से परे अट् प्रत्याहार का वर्ण है शि में इकार। अतः इसलिए शकार के स्थान में छकार होकर तच् + छिवः बना। वर्ण सम्मेलन होकर तच्छिवः प्रयोग सिद्ध होता है। शकार के स्थान छकार विकल्प से होता है। जिस पक्ष में शकार स्थान में छकार नहीं होगा, उस पक्ष में तच्शिवः प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार अन्य उदाहरण निम्नानुसार है देंखे:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
तद् + शिवः	तच् + छिवः	तच्छिवः
मत् + शिरः	मच् + छिरः	मच्छिरः
जगत् + शान्तिः	जगच् + छान्तिः	जगच्छान्तिः
यावत् + शक्यम्	यावच् + छक्यम	यावच्छक्यम्
जगत् + शिष्यः	जगच् + छिष्यः	जगच्छिष्यः
वाक् + शेते	वाक् + छेते	वाक्छेते
कश्चित् + शेते	कश्चिच् + छेते	कश्चिच्छेते
प्राक् + शान्तिः	यावच् + छान्तिः	यावच्छान्तिः
मत् + श्वसुरः	मच् + वभुरः	मच्छवशुरः

वार्तिक:-

छत्वममिति वाच्यम् । तच्छलोके।

अर्थ:- पदान्त झय् से परे शकार को विकल्प से छकार आदेश होता है अम् परे हो तो। तच्छलोकेन तद् + श्लोकेन यहाँ स्तोः श्चुना श्चुः इस सूत्र से दकार को श्चुत्व जकार होकर तज् + श्लोकेन बना। उसके बाद खरि च सूत्र से चर्त्व चकार होकर तच् + श्लोकेन बना। अब यहाँ वार्तिक लगा- छत्वमितिवाच्यम् यह कहता है कि पदान्त झय् प्रत्याहार के वर्ण से परे शकार को छकार होता है विकल्प से अम् प्रत्याहार का वर्ण परे हो तो। यहाँ पदान्त झय् प्रत्याहार का वर्ण है तच् में चकार। उससे परे श्लोकेन का शकार है उस शकार से अम् प्रत्याहार का वर्ण लोकेन का ल्। इसलिए शकार के स्थान पर छकार होकर तच् + छलोकेन बना। वर्ण सम्मेलन तच्छलोकेन प्रयोग सिद्ध होता है।

इस वार्तिक का अन्य उदाहरण:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
तद् + श्लोकेन	तच् + छलोकेन	तच्छलोकेन
तद् + श्लिष्टः	तच् + छिलष्टः	तच्छिलष्टः

एतद् + श्मश्रु	एतच् + छमश्रु	एतच्छमश्रु
तद् + श्लक्ष्णः	तच् + छलक्ष्णः	तच्छलक्ष्णः
सकृत् + श्लेष्मा	सकृच् + छेलष्मा	सकृच्छलेष्मा
भूभृत् + श्लाघा	भूभृत् + छलाघा	भू भृच्छलाघा

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हल् सन्धि के विषय में भली-भांति परिचित होंगे। हल् सन्धि में भी अनेक सन्धियां हैं। उनके सन्धियों में सें कुछ सन्धियों का इस इकाई में वर्णन किया है। यथा श्चुत्व सन्धि, श्चुत्व सन्धि का ही निषेध भी किया गया है। ष्टुत्व सन्धि, कही ष्टुत्व सन्धि का निषेध भी किया गया है। पर सवर्ण सन्धि, पूर्व सवर्ण सन्धि, चर्त्व सन्धि, छत्व सन्धि। इन सन्धियों का मुख्य रूप से सूत्र उदाहरण सहित व्याख्या किया गया है। पूर्ण सवर्ण सन्धि, पूर्व सवर्ण सन्धि का व्याख्या अच् सन्धि में की गयी है किन्तु वहां पर अचों की पर सवर्ण, परसवर्ण के विषय में बताया गया है यहां पर हल् अर्थात् व्यजंन वर्णो पर सवर्ण पूर्व सवर्ण के विषय में सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
रामश्शेते	राम सोता है।
रामश्चिनोति	राम चुनता है।
सच्चित	सत् और ज्ञान
शार्ङिग्न्जय	हे विष्णो ! तुम्हारी जय हो
रामण्षष्ठः	राम छठा है
रामष्टीकते	राम जाता है।
पेष्टा	पीसने वाला, पीसेगा
तट्टीका	उसकी टीका अथवा वह टीका
चक्रिष्ढौकसे	हे चक्रधारी तुम जाते हो
षट् सन्तः	छः सज्जन
षट् ते	वे छः
इट्टे	स्तुती करता है
सर्पिष्टमम्	उत्तम घी
षण्णाम्	छः का
षण्णवतिः	छियानवे
षण्णगर्यः	छः नगरिया
षन्षष्ठः	छठा श्रेष्ठ
वागीशः	वृहस्पति
एतन्मुररिः	ये मुरारि है
तन्मात्रम्	उतना ही
चिन्मयम्	चेतन स्वरूप

तल्लयः	उसका नाश
विद्वालँ लिखति	विद्वान लिखता है
वाग्धरिः	वाणी का शेर अर्थात् बोलने में चतुर
ताच्छिवः	वह शिव
तच्छलोकेन	उस श्लोक से

1. 6 अभ्यासार्थ प्रश्न

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न उत्तर

1. व्यजंनों का व्यंजनों के साथ मेल को क्या कहते है ? (हल् सन्धि)
2. रामश्शेते किस सूत्र का उदाहरण है ? (स्तोः श्चुना श्चुः)
3. स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र का उदाहरण क्या है? (सच्चित्)
4. सकार तवर्ग के स्थान पर षकार टवर्ग के साथ होने पर क्या आदेश होता है? (ष्टुत्व)
5. ष्टुना ष्टुः सूत्र का उदाहरण क्या है? (राष्षष्ठः)
6. पेष्टा किस सूत्र का उदाहरण है? (ष्टुनाष्टुः)
7. ष्टुत्व का निषेध करता है? (नपदान्ताटटोरनाम्)
8. षण्णाम् किस वार्तिक का उदाहरण है? (अनाम्नवति नग-रीणामिति वाच्यम्)
9. षन्षष्ठः का विग्रह क्या है? (सन् + षष्ठः)
10. लकार के परे होने पर तवर्ग के स्थान पर क्या होता है? (परसवर्ण)
11. तच्छिवः का विग्रह क्या है? (तद् + शिव)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. सकार और तवर्ग के स्थान, शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर सन्धि होती है-
   (क) प्रकृतिभाव सन्धि (ख) गुण सन्धि
   (ग) श्चुत्व सन्धि (घ) दीर्घ सन्धि
2. विश्नः में श्चुत्व का निषेध होता है:-
   (क) शात् सूत्र से (ख) आद् गुणः सूत्र से
   (ग) इको यणचि सूत्र से (घ) अनचि च सूत्र से
3. शकार से परे तवर्ग के स्थान पर -
   (क) गुण नहीं होता (ख) श्चुत्व नहीं होता है
   (ग) दीर्घ नहीं होता (घ) यण् नहीं होता है
4. ष्टुत्व का विधान करने वाला सूत्र है:-
   (क) ष्टुना ष्टुः (ख) स्तोः श्चुना श्चुः
   (ग) अकः सवर्णे दीर्घः (घ) वृद्धिरेचि

5. तोःषि सूत्र से ष्टुत्व का निषेध कहाँ पर होता है:-
(क) सन्षष्ठः (ख) इट्टे
(ग) वागीशः (घ) रामश्शेते

6. सन्षष्ठः में किस सूत्र से ष्टुत्व प्राप्त है:-
(क) तोःषि (ख) ष्टुनाष्टु
(ग) अदेङ् गुणः (घ) आद् गुणः

7. वागीशः में सन्धि हुई है:-
(क) गुण (ख) दीर्घ
(ग) पररूप (घ)जश्त्व

8. खरि च सूत्र का उदाहरण है -
(क) उत्थानम् (ख) तन्मात्रम्
(ग) तल्लयः (घ) वागीशः

9. वाग्घरिः में सन्धि हुई है:-
(क) जश्त्व (ख) पूर्व सवर्ण
(ग) परसवर्ण (घ) दीर्घ

10. शकार को छकार होता है:-
(क) तोः षि (ख) ष्टुनाष्टुः
(ग) झलां जशोऽन्ते (घ) शश्छोऽटि

उत्तर—

1. (ग) 2. (क) 3. (ख) 4. (क)
5. (क) 6. (ख) 7. (घ) 8. (क)
9. (ख) 10. (घ)

1. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्त कौमुदी, सुरेन्द्र शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी
2. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित,प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तुरवानगर सिगरा वाराणसी
3. महाभाष्यम् पतंजलि चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्त कौमुदी, सुरेन्द्र शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

1.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. रामश्चिनोति इस प्रयोग का सूत्र सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई-2 अनुस्वार सन्धि नियम एवं उदाहरण

इकाई की रूप रेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अनुस्वार सन्धि नियम एवं उदाहरण
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्न-उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तके
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि अनुस्वार सन्धि कहां पर होती है ? इस इकाई में मुख्य रूप से अनुस्वार सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है।

व्याकरणशास्त्र में अनुस्वार सन्धि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है अनुस्वार सन्धि में कुछ अनेक महत्त्वपूर्ण सन्धियों का वर्णन किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अनुस्वार सन्धि को जानते हुए उसकी महत्ता भी समझा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

□इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- अनुस्वार सन्धि के विषय में परिचित होगें।
- □अनुस्वार को पर सवर्ण होता है इसके विषय में जानेंगे।
- □□मकारादेश के विषय में जान सकेंगे।
- □कुक् तुक् आगम के विषय में परिचित होंगे।
- □नकारादेश के विषय में परिचित होंगे।

2.3 अनुस्वार सन्धि

अनुस्वार विधायक विधि सूत्र

मोऽनुस्वार: 8 । 5 । 23।

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि। हरिं वन्दे।

अर्थ:- हल् परे हो तो मकारान्त पद के स्थान पर अनुस्वाद आदेश होता है।

हरिं वन्दे:- हरिम् + वन्दे (यहाँ पर हरिम् शब्द द्वितीया विभक्ति एक वचन का रूप है। इसलिए मकारान्त पद है।) यहां सूत्र लगा- मोऽनुस्वारः। यह सूत्र कहता है कि हल् अर्थात् व्यंजन वर्ण पर में हो तो मकारान्त पद अर्थात मकार हो जिसके अन्त में उस मकार के स्थान में अनुस्वार हो जाता है यहाँ मान्त पद है हरिम् का मकार उस मकार से परे वन्दे का हल् वर्ण वकार होने के कारण मकार के स्थान में अनुस्वार होकर हरिं वन्दे प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखें।

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
मातरम् + वन्दे	मातरं + वन्दे	मातरं वन्दे
पितर्म् + वन्दे	पितरं + वन्दे	पितरं वन्दे
पुस्तकम् + पठति	पुस्तकं + पठति	पुस्तकं पठति
ग्रामम् + गच्छति	ग्रामं + गच्छति	ग्रामं गच्छति
गुरूम् + नमति	गुरूं + नमति	गुरूं नमति
विद्यालयम् + गच्छति	विद्यालयं + गच्छति	विद्यालयं गच्छति
शत्रुम् + जयति	शत्रुं + जयति	शत्रुं जयति

मधुरम् + हसति	मधुरं + हसति	मधुरं हसति

विशेष बात का ध्यान देना होगा कि पदान्त मकार के बाद यदि हल् वर्ण को छोड़कर स्वर वर्ण होगा तो वहां पर अनुस्वार नहीं होगा मकार ही रहेगा और अज्झीन्नं परेण संयोज्यम् अर्थात् स्वर से रहित वर्ण अगले वर्ण के साथ मिल जाता है।

यथा-	सम् + आचारः	समाचारः
	गुरूम् + अनुगच्छति	गुरूमनुगच्छति
	विद्यालयम् + आगच्छति	विद्यालयमागच्छति
	ग्रामम् + आगतः	ग्राममागतः

इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखना चाहिए।

अनुस्वार विधायक विधि सूत्र

नश्चापदान्तस्य झलि 8।3।25।।

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः। यशांसि।

आक्रंस्यते। झलि किम्? मन्यसे।

अर्थः- झल् परे होने पर अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो जाता है।

उदाहरणः-

यशांसिः यशान् + सि (यशांसि यह पुरा पद है केवल यशान् पद नहीं है।) यह सूत्र लगा- नश्चापदान्तस्य झलि। यह सूत्र कहता है कि झल् प्रत्याहार का वर्ण यदि पर में हो तो अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होता है। यहां झल् प्रत्याहार का वर्ण पर में है सि का सकार तथा पूर्व में अपदान्त नकार है यशान् का नकार। अतः उस नकार को अनुस्वार होकर यशां + सि बना। वर्ण सम्मेलन होकर यशांसि प्रयोग सिद्ध होता है।

आक्रंस्यते आक्रम् + स्यते यहाँ पर भी अपदान्त मकार है। आक्रम् का मकार तथा पर में झल् प्रत्याहार का वर्ण है, स्यते का सकार । इसलिए नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र के द्वारा मकार को अनुस्वार होकर आक्रं स्यते बना। तथा वर्ण सम्मेलन होकर आक्रंस्यते प्रयोग सिद्ध होता है।

प्र0. झलि किम् ? मन्यसे इस सूत्र में झलि का ग्रहण क्यों किया ?

उत्तरः- सूत्र में झलि का ग्रहण इसलिए किया गया कि मन् + यसे यहाँ पर अपदान्त नकार तो है पर झल् प्रत्याहार का वर्ण न होने से नकार के स्थान में अनुस्वार नहीं हुआ। यदि सूत्र में झलि नहीं कहे गये होते तो यहाँ पर न को अनुस्वार होकर मंयसे ऐसा अनिष्ट बनने लगता। मन् + यसे नकार को अनुस्वार न होने के कारण मन्यसे ऐसा प्रयोग बना। इसलिए अनिष्ट प्रयोग की निवृत्ति के लिए सूत्र में झलि का ग्रहण किया गया।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण यथा -

विग्रह	आदेश	सन्धि
नम् + स्यति	नं + स्यति	नंस्यति
पयान् + सि	पयां + सि	पयांसि
आयम् + स्यते	आयं + स्यते	आयंस्यते
अनम् + सीत्	अनं + सीत्	अनंसीत्
हन् + सि	हं + सि	हंसि
श्रेयान् + सि	श्रेयां + सि	श्रेयांसि

अनुस्वार पर सवर्ण सन्धि

पर सवर्ण विधायक विधि सूत्र

अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण 8।4।58।।

स्पष्टम्। शान्तः।

अर्थ- यय् प्रत्याहार के परे होने अनुस्वार को पर सवर्ण होता है।

उदाहरण यथा -शान्तः। शाम् + तः यहां पर नश्चापदान्तस्य झलि सूत्र से अपदान्त मकार के स्थान पर अनुस्वार होकर शां + तः बना। अब इसके बाद सूत्र लगा- अनुस्वारस्य ययि पर सवर्णः। यह सूत्र कहता है कि यय् प्रत्याहार का वर्ण परे हो तो अनुस्वार को परसवर्ण होता है। यय् प्रत्याहार का वर्ण है पर में तः का तकार और पूर्व मे अनुस्वार शां। उस अनुस्वार के स्थान में पर वर्ण के सवर्णे प्राप्त हुए। अनुस्वार से परे है तः का तकार और तकार के सवर्णी है त् थ् द् ध् न् अनुस्वार के स्थान पर पांचों वर्ण प्राप्त हुए। अतः यह अनियम हुआ। इस अनियम को रोकने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र आया और स्थान मिलाने पर स्थानी अनुस्वार का नासिका स्थान है और आदेश त् थ् द् ध् न में से नासिका स्थान वाला केवल न् है। अतः अनुस्वार के स्थान पर नकार आदेश होकर शान् + तः बना। वर्ण सम्मेलन होकर शान्तः प्रयोग सिद्ध हुआ। इस सूत्र का कुछ अन्य उदाहरण:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
अन् + कितः	अङ + कितः	अङ्कितः
अन् + चित्	अम् + चित्	अञ्चित्
गम् + ता	गन् + ता	गन्ता
कुन् + ठितः	कुण् + ठितः	कुण्ठितः
दाम् + तः	दाम् + तः	दान्तः
भुन् + क्ते	भुङ + क्ते	भुङ्क्तेः
गुम् + फित	गुम् + फित	गुम्फितः

इसी प्रकार अन्य प्रयोग भी देखें।

वैकल्पिक परसवर्ण विधायक विधि सूत्र।

वा पदान्तस्य 8। 4। 59।

(पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात्)। त्वङ्करोषि । त्वं करोषि।

अर्थ:- यय् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त अनुस्वार को विकल्प से पर सवर्ण होता है।

त्वङ्करोषि, त्वं करोषि। त्वम् + करोषि यहां पर पहले मोऽनुस्वारः सूत्र से त्वम् के मकार के स्थान पर अनुस्वार होकर त्वं + करोषि बना। उसके बाद सूत्र लगा - वा पदान्तस्य। यह सूत्र कहता है कि यय् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त अनुस्वार को विकल्प से पर सवर्ण हो जाता है। यहाँ पर यय् प्रत्याहार का वर्ण पर में है। करोषि का ककार पूर्व में पदान्त अनुस्वार है। त्वं में उपर बिन्दु। उसको पर सवर्ण होता है पर में वर्ण है क उसका सवर्ण क् ख् ग् घ् ङ् ये पांचों वर्ण एक साथ प्राप्त हो रहे है यह अनियम हुआ। उस अनियम को रोकने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र आया। स्थान की तुल्यता मिलाने पर अनुस्वार का नासिका स्थान है और नासिका स्थान वाला कवर्ग का वर्ण ङकार है। इसलिए अनुस्वार के स्थान में पर सवर्ण ङकार होकर त्वङ् + करोषि बना। वर्ण सम्मेलन होकर त्वङक्रोषि प्रयोग सिद्ध होता है। पर सवर्ण विकल्प से होता है

जब पर सवर्ण नहीं होगा उस पक्ष में त्वं करोषि ऐसा ही रहेगा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे:-

मकारादेश विधायक नियम सूत्र

मो राजि समः क्वौ 8 । 3 । 25।।

क्विबन्ते राज तौ परे समो मस्य म एव स्यात्। सम्राट्।

अर्थ:- क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु के परे होने पर सम् के मकार के स्थान पर मकार ही होता है। राज् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर और उस क्विप् प्रत्यय के सभी वर्णो का लोप हो जाता है। केवल राज् धातु ही बचता है। फिर भी वह क्विप् प्रत्ययान्त कहलाता है। इसका वर्ण हलन्त पुलिंग प्रकरण विशेष रूप से किया गया। क्विबन्त राज् धातु से परे होने पर भी सम् के मकार ही रह गया।

सम्राट सम् + राट्। यहाँ सूत्र लगा मोऽनुस्वारः। इसलिए इस सूत्र से मकार को अनुस्वार प्राप्त था उसको बाधकर सूत्र लगा- 'मो राजि समः क्वौ।' यह सूत्र कहता है कि क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु के परे होने पर सम् के मकार के स्थान पर मकार ही होता है। यहां पर क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु है। राट् (राज् धातु से क्विप् प्रत्यय तथा क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर राज् शब्द बना। प्रथमा एक वचन विपक्षा में सु प्रत्यय होकर राज् सु बना। सु में उकार की इत्संज्ञा तथा लोप होकर राज् + स् बना। स् का लोप होकर राज् शब्द बना। जकार जश्त्व तथा चर्त्व होकर राट् शब्द बना) इसलिए सम् के मकार के स्थान परम ही होकर सम् + राट बना। वर्ण सम्मेलन होकर सम्राट् शब्द सिद्ध होता है। इस सूत्र का उदाहरण प्रायः कम प्राप्त होता है।

वैकल्पिक मकारादेश विधायक विधि सूत्र

हेमपरे वा 8।3।26।।

मपरे हकारे परे मस्य मो वा स्यात् । किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति।

अर्थ:- म परक हकार के परे होने पर मकार के स्थान में मकार विकल्प से होता है।

उदाहरण यथा -

किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति। किम् + ह्मलयति यहां पर मोऽनुस्वारः से अनुस्वार प्राप्त था। उसको बाधकर सूत्र लगा हे मपरे वा। यह सूत्र कहता है कि जिस हकार के बाद मकार हो ऐसा हकार परे होने पर किम् के मकार के स्थान पर मकार आदेश होता है विकल्प से। यहाँ म परक हकार पर में है ह्मलयति का हकार। उस हकार के परे होने पर किम् के मकार के स्थान पर विकल्प से मकार आदेश होकर किम् ह्मलयति बना। जिस पक्ष में मकार आदेश नहीं होगा उस पक्ष में अनुस्वार होकर किं ह्मलयति प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक - यवल परे यवला वा। कियँ ह्यः किं ह्यः किवँ लयति, किं ह्वलयति। किलँ ह्लादयतिः किं ह्लादयति।

अर्थ:- यकार, वकार और लकार परक हकार के परे होने पर मकार के स्थान पर यँकार, वँकार और लंकार आदेश विकल्प से होते है।

हकार के बाद यकार हो या वकार हो अथवा लकार हो तो पूर्व में विद्यमान मकार के स्थान पर एक पक्ष में क्रमशः अनुनासिक यंकार, वकार लकार ही आदेश होते हैं विकल्प से। और एक पक्ष में अनुस्वार भी हो जायेगा।

कियँ ह्यः, किं ह्यः । किम् + ह्यः यहाँ पर मकार के स्थान पर मोऽनुस्वारः सूत्र से अनुस्वार प्राप्त था। उसको वाधकर वार्तिक लगा- यवल परे यवला वा। यह वार्तिक कहता है कि यकार, वकार और लकार परक हकार पर में होतो पूर्व में मकार के स्थान में विकल्प से यकार, वकार और लकार आदेश होते है। यहाँ पर यकार परक हकार पर में है। अतः किम् के मकार के स्थान पर अनुनासिक यकार हुआ। क्योंकि मकार भी अनुनासिक है। कियँ ह्यः प्रयोग सिद्ध हुआ। यकार के अभाव पक्ष में अनुस्वार होकर किं ह्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

किवँ ह्वलयति किं ह्वलयति। किम् + ह्लादयति यह मोऽनुस्वारः सूत्र से मकार अनुस्वार प्राप्त था। उसको बाधकर 'यवल' परे यवला वा' इस वार्तिक के द्वारा लकार परक हकार परे होने के कारण कि के मकार के स्थान पर अनुनासिक वकार होकर किवं ह्वलयति प्रयोग सिद्ध होता है और अभाव पक्ष में मकार को अनुस्वार होकर किं ह्वलयति प्रयोग सिद्ध होता हैं इसी प्रकार अन्य प्रयोग भी सिद्ध करें।

किलँ ह्लादयति किं ह्लादयति किम् + ह्लादयति यहाँ पर मोऽनुस्वारः सूत्र से किम् के मकार के स्थान पर अनुस्वार प्राप्त है। उसको बांधकर वार्तिक लगा- यवलपरे यवला वा इस वार्तिक के द्वारा लकार परक हकार परे होने के कारण किम् के मकार के स्थान में विकल्प से लँकार होकर किलँ ह्लादयति प्रयोग सिद्ध होता है। यह लकार आदेश विकल्प से होता है। जिस पक्ष में मकार के स्थान में लकार नहीं होगा उस पक्ष में मकार को अनुस्वार होकर किं ह्लादयति प्रयोग सिद्ध होता है।

वैकल्पिक नकारादेश विधायक विधि सूत्र

नपरे नः 8 । 3 । 27 ॥

नपरे हकारे मस्य नो वा। किन् ह्नुते किं ह्नुते।

अर्थः- नपरक हकार परे होने पर मकार के स्थान पर नकार आदेश विकल्प से होता है। हकार के बाद में नकार हो ऐसा हकार पर में हो तो मकार के स्थान में नकारादेश होता है, विकल्प से। नकार न होने के पक्ष में मोऽनुस्वादः सूत्र से अनुस्वार हो जाता है। उदाहरणः-

किन् ह्नुते किं ह्नुते । किम् + ह्नुते यहां पर मोऽनुस्वार सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार प्राप्त था। उस अनुस्वार को बांधकर सूत्र लगा- नपरे नः। यह सूत्र कहता है कि न परक अर्थात् हकार पर में हो ऐसा हकार के पर में होने के कारण मकार के स्थान में विकल्प से नकारादेश होता है। यहां पर नकार परक हकार है। ह्नुते का हकार इसलिए किम् के मकार के स्थान में नकारादेश होकर किन् ह्नुते प्रयोग सिद्ध होता है। यह नकार आदेश विकल्प से होता है जिस पक्ष में नकार आदेश नहीं होगा, उस पक्ष में मकार को अनुस्वार होकर किं ह्नुते प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप सिद्ध हुआ 1. किन् ह्नुते, 2. किं ह्नुते।

आगम सन्धि

आद्यन्तावयवविधायक परिभाषा सूत्र

आद्यन्तौ टकितौ 1।1।46।।

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमाद्यन्तावयवौ स्तः।

अर्थः- टित् और कित् जिसको कहे गये है वे क्रमशः उसके आदि और अन्त के अवयव होते है।

आगम मित्रवत होता है। जिसको आगम होता है। उसके आदि या अन्त में बैठता है यह सूत्र निर्णय करता है कि जिस आगम में टकार की इत्संज्ञा हुई हो, वह टित् कहलाता है और जिस आगम में ककार की इत्संज्ञा हुई हो वह कित् कहलायेगा अर्थात् उसे कित् कहते है। यदि आगम् टित् होगा तो जिसको आगम हुआ है उसके आदि में जाकर बैठता है। यदि आगम कित् हो तो उसके अन्त में बैठता है। जिस प्रकार छेच सूत्र से हस्व को तुक् का आगम हुआ और तुक में हलन्त्यम् सूत्र से ककार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर तु बचा। तु में उकार की भी उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर त् मात्र बचता है अब यह प्रश्न होता है कि तकार कहाँ बैठे? क्योंकि छेच सूत्र से जो तुक् का आगम हुआ है वह छकार के परे रहते हस्व को होता है। ह्रस्व के स्थान पर तुक का आगम् होगा क्योंकि आगम मित्रवत होता है इसलिए ह्रस्व के आदि में बैठेगा, या अन्त में बैठेगा। तब इस सूत्र को लगाया गया। यह सूत्र कहता है कि टित् होगा तो आदि में बैठेगा और कित् होगा तो अन्त में बैठेगा। इसलिए यहाँ तुक् में कित् होने के कारण अन्त में बैठेगा। इसलिए अगले सूत्र में विशेष प्रकार से इसका वर्णन किया जायेगा।

किसी भी प्रत्यय और आदेश में जिस वर्ण की इत्संज्ञा की जाने वाली है वह अनुबन्ध कहलाता है। इत्संज्ञा योग्यत्वम् अनुबन्धत्वम्। आगम् आदि में लगे हुऐ वर्णो का हलन्त्यम् आदि सूत्रों से जो इत्संज्ञा करके तस्य लोपः से लोप किया जाता है। उसे अनुबन्ध लोप कहते है। इसलिए आगे जहाँ कही भी अनुबन्ध लोप की बात आ जाये तो यही समझना चाहिए कि प्रत्यय आगम आदि को टित्-कित् आदि बनाने के लिए अतिरिक्त वर्ण है वे अनुबन्ध है और उनका लोप होना ही अनुबन्ध लोप है। आगम् और आदेश में अन्तर - शत्रुवदादेशा भवन्ति। मित्रवद् आगमा भवन्ति। आदेश शत्रुवत होते है। जो किसी वर्ण को हटाकर बैठते है और आगम मित्र के समान होते है जो किसी वर्ण के पास आकर बैठते है।

कुक् टुक् आगम विधायक विधि सूत्र

ङणोः कुक् टुक् शरि। 8।3।28।।

वा स्तः !

अर्थ- शर् प्रत्याहार के परे होने पर ङकार णकार को क्रमशः कुक् और टुक् का आगम विकल्प से होताहै।

कुक् और टुक् में हलन्त्यम् सूत्र से दोनों ककारों का हलन्त्यम सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर कु + टु बचा। उकार का उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर क् ट् बचा। ककार की इत्संज्ञा होने के कारण ये दोनों कित् है और आगम है अतः ये आगम होने के कारण किसी के स्थान में नहीं होगें अपितु बगल में जाकर बैठता है यथा संख्य मनुदेशः समानाम के अनुसार यदि ङकार है तो कुक् का आगम होगा और णकार है तो टृक् का आगम होगा ये दोनों आगम् कित् है कित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ सूत्र के नियमानुसार ङकार और णकार के अन्त में जाकर बैठेंगे। उदाहरण यथा -

प्राङ + षष्ठः, सुगण् + षष्ठः यहां परे सूत्र लगा - ङणोः कुक् टुक् शरि। यह सूत्र कहता है कि शर् प्रत्याहार के परे होने पर ङकार को कुक् तथा णकार को टुक् का आगम होता है। यहाँ पर शर् (श ष स) प्रत्याहार का वर्ण है पर में षष्ठः का षकार और पूर्व में ङकार, णकार है प्राङ् का ङ्

तथा सुगण् का ण्। अतः ङकार को कुक् तथा णकार को टुक् का आगम होकर और अनुबन्ध लोप होने के बाद क् तथा ट् मात्र बचा। अब कित् होने के कारण ङ तथा ण के अन्त में बैठता है। प्राङ् क् षष्ठः तथा सुगण् ट् + षष्ठ्: बना। आगम विकल्प से होता है जिस पक्ष में आगम नहीं होगा। उस पक्ष में प्राङ् + षष्ठः, सुगण् + षष्ठः बना।

अब इसके बाद अगला वार्तिक प्रवृत्त हो रहा है:-

वार्तिक:- चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् ।

प्राङ्ख् षष्ठः, प्राङक्षष्ठः, प्राङ् षष्ठः

सुगण्ठ्षष्ठः, सुगण्ट षष्ठः, सुगषष्ठः

अर्थ:- शर् प्रत्याहार के परे होने पर चय् प्रत्याहार के स्थान पर उसी वर्ग का दूसरा वर्ण आदेश होता है। पुष्करसादि आचार्यों के मत में।

आनन्तर्य के कारण वर्ण प्रथम को उसी वर्ग का द्वितीय वर्ण हो जायेगा। भाव यह है कि श् ष् स् के परे होने पर क के स्थान में ख्, च् के स्थान में छ, ट के स्थान में ठ, त् के स्थान में थ्त् था प के स्थान में फ आदेश विकल्प से होते हैं। प्राङक् + षष्ठः, सुगणट् + षष्ठः जो बना है। अब इन दोनों स्थानों पर शर् प्रत्याहार का वर्ण षकार परे होने के कारण ककार और टकार को क्रमशः खकार और ठकार होकर प्राङख् षष्ठः, सुगणठ् षष्ठः बना। किन्तु यह वार्तिक वैकल्पिक है। जिस पक्ष में द्वितीय वर्ण नहीं होंगे उस पक्ष में प्राङक् षष्ठः रहा। अतः क + ष = क्ष होकर प्राङक्षष्ठः बना। और जिस पक्ष में कुक् टुक नहीं होगा उस पक्ष में प्राङ षष्ठः बना। सुगणट षष्ठः सुगण षष्ठः प्रयोग सिद्ध हुआ। अतः इस प्रकार तीन-तीन रूप बने।

इन तीन रूपों को तालिका के माध्यम से देखें-

कुक् पक्ष में (प्राङख् षष्ठः। (पौष्करसादि के मत में)

(पाङ्क्षष्ठः (जब द्वितीय वर्ण नहीं होगा तो क् + ष् = क्ष होता है) कुक् के अभाव पक्ष में - प्राङ षष्ठः बना।

टुक् पक्ष में (सुगणठ् ष्ठः (पौष्करसादि में मत में)

(सुगणट् षष्ठः (जहाँ द्वितीय वर्ण नहीं होगा)

टुक् के अभाव क्ष में सगुण् षष्ठः

इस सूत्र का अन्य उदाहरण देखे:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
प्राङ + षष्ठः	प्राङ्ख् + षष्ठः	प्राङ्खषष्ठः
सुगण् + षष्ठः	सुगण्ठ् + षष्ठः	सुगण्ठ्षष्ठः
प्राङ +षु	प्राङख् + षु	प्राङ्ख्षु
गवाङ् + षु	गवाङ्ख + षु	गवाङ्खषु
तिर्यङ् + स्वपिति	तिर्यङख् + स्वपिति	तिर्यङखस्वपिति

इत्यादि समझना चाहिए।

वैकल्पिक धुडागम विधायक विधि सूत्र

ङः सि धुट् 8 । 3 । 29 ॥

डात्परस्य सस्य धुड् वा । षटत्सन्तः षट् सन्तः ।

अर्थ:- ड से परे सकार को विकल्प से ध्रुट् का आगम होता है। धुट् में टकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् सूत्र से इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर ध् मात्र शेष बचता है। इसको प्रकारान्तर से यह भी कह सकते है कि अनुबन्ध लोप हुआ। अब टकार की इत्संज्ञा होने के कारण यह टित् है। आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा से जिसको भी आगम होगा वह आदि में बैठेगा।

षट्सन्तः, षट् + सन्तः । षट् + सन्त: यहाँ झलां जशोऽन्ते सूत्र के द्वारा टकार के स्थान पर जश्त्व डकार होकर षड् + सन्तः प्रयोग बना। अब सूत्र लगा-डः सि धुट्। यह सूत्र कहता है कि डकार से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है। यहां पर डकार है षड् में ड् तथा सकार पर में है। सन्तः का स् । अतः धुट् का आगम होता है। अतः यहां टित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र के द्वारा सन्त के स् के आदि में बैठेगा। षड् +धुट् + सन्तः बना। अनुबन्ध लोप होने के बाद षड् + ध् + सन्तः बना। खरि च सूत्र के द्वारा खर् प्रत्याहार का वर्ण सन्तः का सकार परे होने के कारण झल् प्रत्याहार का वर्ण ध के स्थान में चर्त्व तकार होकर षड् + त् + सन्तः बना। पुनः खरिच सूत्र के द्वारा षड् + त् + सन्तः में डकार के स्थान में चर्त्व टकार होकर षट् + त् + सन्तः बना। वर्ण सम्मेलन होकर षट्त्सन्तः प्रयोग सिद्ध होता है और जिस पक्ष में धुट् का आगम नहीं होगा उस पक्ष में षट् सन्तः प्रयोग सिद्ध होता है। इसके अन्य उदाहरण:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
लिट् + सु	लिट् + त् + सु	लिट्त्सु
षट् + सुखानि	षट् + त् + सुखानि	षट्त्सुखानि
षट् + सन्निकर्षाः	षट् + त् + सन्निकर्षाः	षट्त्सन्निकर्षाः
षट् + समस्याः	षट् + त् + समस्याः	षट्त्समस्याः
षट् + सन्ततयः	षट् + त + सन्ततयः	षटत्सन्ततयः

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझे।

वैकल्पिक धुडागम विधायक विधि सूत्र

नश्च 8 । 3 । 30 ॥

नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा। सन्त्सः, सन्सः।

अर्थ:- पदान्त नकार से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है।

डः सि धुट्, डकार से परे सकार को धुट् का आगम करता है और यह सूत्र नकार से परे सकार को धुट् का आगम करता है। इतना मात्र अन्तर है शेष सभी डः सि धुट् के सामान हुआ है।

सन्त्सः सन्सः । सन् +सः यहाँ पर नश्च सूत्र से सन् के नकार से परे सः के सकार को धुट् का आगम होकर अनुबन्ध लोप होने के बाद ध् मात्र शेष बचता है। अतः उसके बाद टित् होने के कारण आद्य़न्तौ टकितौ इस परिभाषा सूत्र के द्वारा सकार के आदि मैं जाकर बैठा सन् ध् + सः बना। धकार को खरि च सूत्र के द्वारा धकार को चर्त्व होकर टकार होकर सन् + त् + सः बना। वर्ण सम्मेलन होकर सन्त्सः प्रयोग बनता है। धुट् का आगम विकल्प से होता है जिस पक्ष में धुट् का आगम नहीं होगा उस पक्ष में सन् + सः वर्ण सम्मेलन होकर सन्सः प्रयोग ही रह गया।

इस सूत्र का अन्य उदाहरण भी देखे:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
आस्मिन् + समये	आस्मिन्+ त् + समये	आस्मिन्त्समये

भवान् + सखा	भवान् + त् + सखा	भवान्त्सखा
सन् + सः	सन् + त् + सः	सन्त्सः
पुमान् + स्त्रिया	पुमान् + त् + स्त्रिया	पुमान्त्स्त्रिया
पठन् + साख्यम्	पठन् + त् + सांख्यम्	पठन्त्सांख्यम्
सन् + साधु	सन् + त् + साधु	सन्त्साधु
धनवान् + सहोदरः	धनवान् + त् + सहोदरः	धनवान्त्सहोदरः
विद्वान् + सहते	विद्वान् + त् + सहते	विद्वान्त्सहते
गच्छन् + स्त्रिया	गच्छन् + त् + स्त्रिया	गच्छन्त्स्त्रिया
हसन् + सहते	हसन् + त् + सहते	हसन्त्सहते

2.4 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप अनुस्वार सन्धि के विषय में भली-भांति जानेंगे। अनुस्वार सन्धि अनुस्वार पर सवर्ण सन्धि, अनुस्वार को वैकल्पिक परसवर्ण सन्धि, मकारादेश सन्धि, नकारादेश सन्धि, कुक्टुक् आगम सन्धि, धुडागम आदि सन्धियों का वर्णन मुख्यरूप से इस इकाई में किया गया है।

2.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
हरि वन्दे	हरि को प्रणाम करता हूँ।
यशांसि	बहुत यश
आक्रंस्यते	आक्रमण करेगा उपर चढ़ेगा
मन्यते	मानता है
त्वण्डरोषि	तुम करते हो
सम्राट	चक्रवर्ती राजा
किम् ह्मलंयति	क्या चलता या हिलता है
कियँ ह्यः	कल क्या है
किवँ ह्वलयति	क्या हिलाता है
किलँ ह्लादयति	कौन वस्तु प्रशन्न करती है
किन् ह्नुते	क्या छिपाता है
प्राङख षष्ठः	छठे प्राचीन
सुगण्ठ षष्ठः	छठे गणक (विद्वान)
षट्त्सन्तः	छः सज्जन
सन्त्सः	वह सज्जन

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर

अति लघु उत्तरीय

प्रश्न	**उत्तर**
1. अनुस्वार विधायक विधि सूत्र क्या है?	(मोडनुस्वारः)

2. अपदान्त मकार नकार को अनुस्वार कौन सूत्र करता है?
(नश्चाऽपदान्तस्य झलि)
3. आक्रंस्यते का विग्रह क्या है? (आक्रम् + स्यते)
4. शान्तः किस सूत्र का उदाहरण है? (अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः)
5. किन्ह्नुते किस सूत्र का उदाहरण है? (नपरे नः)
6. षटत्सन्तः किस सूत्र का उदाहरण है? (डःसिधुट्)
7. षटत्सन्तः का विग्रह क्या है? (षड् + सन्तः)

बहुविकल्पीय

प्रश्न **उत्तर**

1. मोऽनुस्वारः इस सूत्र का उदाहरण है:-
(क) हरि वन्द (ख) वाग्धरिः
(ग) तच्छिवः (घ) तच्छलोकेन (क)
2. नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र का उदाहरण है:-
(क) सन्षष्ठः (ख) सर्पिष्टमम्
(ग) प्रश्नः (घ) यशांसि (घ)
3. यय् प्रत्याहार पर में हो तो अनुस्वार को होता है:-
(क) पूर्वसवर्ण (ख) परसवर्ण
(ग) अनुस्वार (घ) दीर्घ (ख)
4. यय् प्रत्याहार पर में हो तो पदान्त अनुस्वार को होता है:-
(क) परसवर्ण (ख) पूर्वसवर्ण
(ग) गुण (घ) दीर्घ (क)
5. मोराजिसमः क्वौ इस सूत्र का उदाहरण है:-
(क) सम्राट (ख) उपेन्द्रः
(ग) रामश्शेते (घ) रामश्चिनोति (क)
6. डसि धुट् से होता है:-
(क) धुट् का आगम (ख) कुक् का आगम
(ग) नृट का आगम (घ) णुट् का आगम (क)
7. डकार से परे सकार का अवयव को आगम होता है:-
(क) कुक् (ख) टुक्
(ग) धुट् (घ) णुट (ग)
8. शर् प्रत्याहार के परे होने पर ङकार को आगम होता हैः-
(क) कुक् (ख) नुट्
(ग) जुट् (घ) धुट् (क)
9. सन्त्सः किस सूत्र का उदाहरण है:-
(क) डःसि धुट् (ख) आद्गुणः
(ग) अकः सवर्णे दीर्घः (घ) नश्च (घ)

2. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

लघुसिद्धान्त कौमुदी सुरेन्द्र शास्त्री चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी ।

2-वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित, प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तुरवानगर सिगरा वाराणसी।

3- महाभाष्यम्, पतंजलि, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- लघुसिद्धान्तकौमुदी, वरदराजाचार्य, चौखम्भा संस्कृत भारती, वाराणसी।

2.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ?

इकाई-3 विसर्ग सन्धि नियम एवं उदाहरण

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विसर्ग सन्धि सम्पूर्ण व्याख्या एवं प्रक्रिया

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्न-उत्तर

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तके

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि विसर्ग सन्धि कहाँ पर होती है। विसर्ग का चिन्ह क्या है ? इन सबका वर्णन इस इकाई में की गयी है। विसर्ग सन्धि के लिए कुछ सूत्र निश्चित किये गये है, जो इस इकाई में पढ़े गये है।

अभी तक आपने संज्ञाप्रकरण प्रकरण अच् सन्धि हल् सन्धि प्रकरणों को जाना। अब आइये विसर्ग सन्धि के विषय में जानते हैं। सामान्यतया विसर्ग वह है जो अक्षरों के बाद दो बिन्दू के रूप में (:) लगता है। उसके विसर्ग कहते हैं। विसर्ग की उत्पत्ति र् से होती है। विसर्ग बनने वाला रेफ प्रायः स् से बनता है। इस प्रकार से स् से र् बनता है और र् से विसर्ग (:) बनता है। अब हमें अध्ययन करना है कि किस स्थिति में स् से र् 'र्' से विसर्ग (:) बनता है ? इस के विषय में सम्यग् रूप से सूत्रों के माध्यम से अध्ययन करेंगे।

पंच सन्धि के अन्तर्गत विसर्ग सन्धि भी आता है जिसका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। विसर्ग सन्धि के माध्यम से हम शब्दों के अर्थों का ज्ञान करते है। इस इकाई के माध्यम से विसर्ग सन्धि के ज्ञान को समझते हुए, उसकी महत्ता को भी बता सकेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- विसर्ग सन्धि के विषय में परिचित होंगे।
- विसर्ग के स्थान पर सकारादेश होता है, इसके विषय में समझ सकेंगे।
- शितुक् सूत्र से तुगागम के विषय में परिचित होंगे।
- सुडागम के विषय में जान सकेंगे।
- पदान्ताद्वा इस सूत्र के विषय में आप परिचित होंगे।
- पदान्त सकार के स्थान रू होता है, इसके विषय में जान सकेंगे।
- रू सम्बंधि र के स्थान में उत्व होता है इसके विषय में परिचित हो सकेंगे।
- रू सम्बन्धि र का लोप होता है इसके विषय में समझ सकेंगे।
- रेफ का लोप होने के बाद पूर्व अण् को दीर्घ होता है, इसके विषय में समझ सकेंगे।
- एतद् तथा तद् के सु का लोप होता है, इसके विषय में समझ सकेगें।

3.3 विसर्ग सन्धि सम्पूर्ण व्याख्या एवं प्रक्रिया

वैकल्पिक तुगागम् विधायक विधि सूत्र

शितुक् 8 । 3 । 31 ।।

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा। सञ्छम्भूः,

सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ्शम्भुः।

अर्थ:- शकार के परे होने पर पदान्त नकार को विकल्प से तुक् का आगम होता है।

डः सि धुट् डकार से परे सकार को धुट् का आगम् होता है केवल अन्तर इतना ही है। शेष सभी विषय डः सि धुट् की तरह ही होता है। टुक में ककार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा और उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर त मात्र शेष बचता है। अतः कित् होने के कारण आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र से अन्त में बैठता है। यहाँ पर शकार के परे रहते नकार को टुक् का आगम हो रहा है। फलतः नकार के अन्त में बैठता है। उदाहरण यथा सन् + शम्भुः यहां सूत्र लगा- शितुक् शकार परे होने पर पदान्त नकार को विकल्प से तुक् का आगम होता है। यहां पर शकर परे है शम्भूः का शकार और पूर्व में पदान्त नकार है सन् का नकार। उसको तुक् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर सन् + त् + शम्भूः बना। स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से तकार को श्चुत्व होकर सन् च् + शम्भूः बना। पुनः स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से नकार को श्चुत्व होकर सञ्च् + शम्भूः बना। अब शश्छोऽटि सूत्र से शकार को छकार होकर शञ्चछम्भुः बना। पुनः झरो झरि सवर्णे सूत्र से चकार को विकल्प से लोप होकर (1) सञ´छम्भूः बना। जहाँ चकार का लोप न हुआ वहाँ पर (2) सञ्च्छम्भुः बना। जहाँ छत्व नहीं हुआ वहाँ पर (3) सञ्च्शम्भुः और जहां तुक ही नहीं हुआ वहाँ पर श्चुत्व होकर (4) सञ्शम्भुः प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार चार प्रकार का रूप सिद्ध किया गया। इस सूत्र के अन्य उदाहरण भी समझे।

ङमुडागम विधायक विधि सूत्र

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण नित्यम् 8 । 3 । 32 ॥

ह्रस्वंत्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ङमुट्।

प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्णीशः, सन्नच्युतः।

अर्थः-ह्रस्वं से परे जो ङम् वह अन्त में है जिसके ऐसा जो पद उससे परे अच् को नित्य से ङमुट् का आगम होता है।

ङम् प्रत्याहार है, जिसमें ङ ण न ये तीन वर्ण आते है। ङमुट् में ङम् प्रत्याहार है। उकार उच्चारणार्थक है तथा ट् की हलन्त्यम सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होता है। ङम् प्रत्याहार का टित् का सम्बन्ध होकर ङुट्, णुट, नुट ये तीन आगम प्राप्त होंगे। यथासंख्यमनुदेश समानाम् सूत्र के अनुसार ङकारान्त पद से परे अच् को ङुट्, णकारान्त पद से परे अच् को णुट् तथा नकारान्त पद से परे अच् को नुट् का आगम होता है। उदाहरण यथा -

प्रत्यङ्ङात्मा । प्रत्यङ् + आत्मा यहां पर सूत्र लगा- ङमोह्रस्वादचि ङ्मुण नित्यम्। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्वं से परे जो ङम् वह अन्त में है। जिसके ऐसा जो पद उससे परे अच् को नित्य से ङमुट् का आगम होता है। यहां पर ह्रस्वं से परे ङम् प्रत्याहार का वर्ण है प्रत्यङ् में ङकार । उस ङकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण है आत्मा का आकार उसको ङमुट् अर्थात् ङुट् का आगम होकर प्रत्यङ् + ङुट् + आत्मा बना। उसके बाद अनुबन्ध लोप होकर प्रत्यङ्+ङ्+ आत्मा बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्रत्यङ्ङात्मा प्रयोग सिद्ध होता है।

सुगण्णीशः सुगण् + ईशः यहां सूत्र लगा- ङमोह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्वं से परे जो ङम् प्रत्याहार का वर्ण वह अन्त में है। जिससे उससे परे अच् को नित्य ङमुट् का आगम होता है। यहाँ पर ह्रस्वं है सुगण् ग में अ उस ह्रस्वं के बाद ङम् प्रत्याहार का वर्ण है ण् वह पदान्त भी है और उससे परे अच् प्रत्याहार का वर्ण है ईशः का ई उस ई को णुट् का

आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर ण् मात्र शेष बचता है। अतः सुगण् ण् + ईशः बना। वर्ण सम्मेलन होकर सुगण्णीशः प्रयोग सिद्ध होता है।

सन् + अच्युतः यहां पर ह्रस्वं वर्ण है सन् में स में अ, उस अकार से परे ङम् प्रत्याहार का वर्ण है न्/वह पदान्त भी है उस पदान्त नकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण है अच्युतः का अकार। इस अकार को नुट् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर न् मात्र बचता है। अतः सन् + न् + अच्युतः बना। वर्ण सम्मेलन होकर सन्नच्युतः प्रयोग सिद्ध होता है। इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहण:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
प्रत्यङ् + आत्मा	प्रत्यङ् + ङ् + आत्मा	प्रत्यङ्ङात्मा
सुगण् + ईशः	सुगण् + ण् + ईशः	सुगण्णीशः
सन् + अच्युत	सन् + न् + अच्युत	सन्नच्युतः
कुर्वन् + आस्ते	कुर्वन् + न् + आस्ते	कुर्वन्नास्ते
तिङ् + अतिङः	तिङ् + ङ् + अतिङः	तिङ्ङतिङः
तस्मिन् + इति	तस्मिन् + न् + इति	तस्मिन्निति
जानन् + अपि	जानन् + न् + अपि	जानन्नपि
आस्मिन् + उद्याने	अस्मिन् + न् + उद्याने	अस्मिन्नुद्याने
गच्छन् + अवदत्	गच्छन् + न् + अवदत्	गच्छन्नवदत्
पठन् + अगच्छत्	पठन् + न् + अगच्छत्	पठन्नगच्छत्
गच्छन् + अवोचत्	गच्छन् + न् + अवोचत्	गच्छन्नवोचत्
सुगण् + आलयः	सुगण् + ण् + आलयः	सुगण्णालयः
सुगण् + अवदत्	सुगण् + ण् + अवदत्	युगण्णवदत्

रूत्व विधायक विधि सूत्र

समः सुटि 8 । 3 । 5 ।

समोरूः सुटि।

अर्थ:- सुट् पर में होने पर सम् के मकार के स्थान पर रू आदेश होता है।

सम् + स्कर्ता (सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से तृच प्रत्यय होकर सम् + कृ + तृच बना। चकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा लोप होकर तृ बचा। गुण अनङ आदि होकर कर्त्ता बना। सम् + कर्त्ता। सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे इस सूत्र से कृ के सुट् का आगम होकर तथा अनुबन्ध लोप होकर सम् स् + कर्त्ता बना। वर्ण सम्मेलन होकर सम् स्कर्त्ता बना) अब यहाँ सूत्र लगा-समः सुटि। यह सूत्र कहता है कि सम् के मकार को रू होता है सुटि पर में हो तो यहां पर सुट् प्रत्यय पर में स्कर्ता का स् इसलिए सम के मकार के स्थान में रू होकर सरू + स्कर्ता बना। उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर सर् + स्कर्ता बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है -

अनुनासिक आदेश विधायक विधि सूत्र

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा 8 । 3 । 2 ॥

अत्र रू प्रकरणे रोः पूर्वस्याऽनुनासिको वा स्यात् ।

अर्थ:- इस रू प्रकरण में रू से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है।

सर् + स्कर्ता यहां सूत्र लगा-अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा। यह सूत्र कहता है कि इस र् प्रकरण में र् से पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है। यहाँ पर र् प्रकरण है सर् में र् उस र् से पूर्व वर्ण है सकार में अकार, उस अकार को विकल्प से अनुनासिक होकर सँर् + स्कर्ता बना। अब जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा, उस पक्ष में अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है -

अनुस्वारागम विधायक विधि सूत्र

अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः 8 । 3 । 4 ।।

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः स्यात्।

अर्थः- जहाँ अनुनासिक होता है उस रूप को छोड़कर अन्य पक्ष वाले रूप में रू से पूर्व जो वर्ण उससे परे अनुस्वार का आगम होता है।

सर् + स्कर्ताः- यहां सूत्र लगा - अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः।यह सूत्र कहता है कि अनुनासिक को छोड़कर अन्य पक्ष वाले रूप में र् से पूर्ण जो वर्ण उसको अनुस्वार होता है। यहाँ पर सर् + स्कर्ता में अनुनासिक से रहित रूप है सर् में र् उस र् से पूर्व वर्ण स में अ को अनुस्वार का आगम होकर संर् + स्कर्ता बना। (1) अनुनासिक पक्ष में सर् + स्कर्ता बना। तथा अनुस्वार पक्ष में सर् + स्कर्ता बना। अब दोनों पक्षों में अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है:-

विसर्ग विधायक विधि सूत्र

खरवसानयोर्विसर्जनीयः9। 3 । 15 ।।

खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः।।

अर्थः- खर् प्रत्याहार और अवसान परे रहने पर पदान्त रेफ को विसर्ग होता है।

सँर + स्कर्ता, संर् + स्कर्ता यहाँ पर सूत्र लगा- खरवसानयो र्विसर्जनीयः। यह सूत्र कहता है कि खरि या अवसान परे हो तो रेफ को विसर्ग होता है यहाँ पर खर् प्रत्याहार वाला वर्ण पर में है स्कर्ता में स् पदान्त रेफ है यहाँ पर सर् में र् उसको विसर्ग होकर सँ स्कर्ता, सँ + स्कर्ता बना। अब यहाँ विसर्ग को सकार करने'' के लिए अगला वार्तिक प्रवृत्त होता है-

वार्तिक = 95 सम्पूङ्कानां सो वक्तव्यः।। सँस्स्कर्ता, संस्स्कर्ता

अर्थः- सम्, पुम्, कान् शब्दों के विसर्ग को सकार आदेश होता है।

सँर + स्कर्ता, सर् + स्कर्ता यहाँ पर वार्तिक लगा- सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः। यह वार्तिक कहता है कि सम्, पुम् तथा कान् शब्दों के विसर्ग के स्थान पर सकार होता है। यहाँ पर सम् के स्थान पर विसर्ग हुआ है उस विसर्ग के स्थान पर स् होकर सँस् + स्कर्ता, संस् + स्कर्ता बना। वर्ण सम्मेलन होकर सँस्स्कर्ता बना। अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुस्वार होकर संस्स्कर्ता प्रयोग सिद्ध होता है। अतः 1- सँस्सकर्ता 2-संस्स्कर्ता ये दो रूप सिद्ध हुए।

रूत्व विधायक विधि सूत्र

पुमः खय्यम्परे 8 । 3 । 6 ।।

अम्परे खयि पुमो रूँ स्यात् । पुँस्कोकिलः पुँस्कोकिलः ।

अर्थः- अम् प्रत्याहार परक खय् प्रत्याहार पर में हो तो पुम् के मकार को रू आदेश होता है।

अम् और खय् दोनों प्रत्याहार है। अम् प्रत्याहार में अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न ये उन्नीस वर्ण आते है और खय् प्रत्याहार में वर्ग के द्वितीय और प्रथम अक्षर आते है। अर्थात् ख फ छ ठ थ च ट त क प ये दश वर्ण खय प्रत्याहार में आते है। खय् प्रत्याहार के बाद

अम् प्रत्याहार परे हो तो और खय् प्रत्याहार से पूर्व पुम् का मकार हो तो उस मकार को रू आदेश होता है।

पुम् + कोकिल: यहाँ सूत्र लगा- पुमः खय्यम्परे। यह सूत्र कहता है कि अम् परक खय् प्रत्याहार पर में हो तो पुम् के मकार के स्थान में रू आदेश ही होता है। यहां पर अम् प्रत्याहार है कोकिलः में क में ओ तथा खय् प्रत्याहार का वर्ण है कोकिलः में को में क । उससे पूर्व वर्ण है पुम् का मकार इस मकार के स्थान में रू आदेश होकर पुरू + कोकिलः बना। रू में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप होकर पुर + कोकिलः बना। इसके बाद अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा इस सूत्र से रू से पूर्व में जो अकार है उस अकार के बाद अनुनासिक का आगम होकर पुँर् + कोकिलः बना। यह अनुनासिक विकल्प से होता है जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा उस पक्ष में अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र अनुस्वार का आगम् होकर पुंर् + कोकिलः बना। उसके बाद खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से रकार को विसर्ग होकर पुँ + कोकिलः, पुं: + कोकिलः ये दो रूप बने। उसके बाद में सम्पुङकाना सो वक्तव्यः इस वार्तिक के द्वारा विसर्ग को सकार होकर पुँस्कोकिलः, पुंस्कोकिलः ये रूप सिद्ध हुए। इस प्रयोग को ज्ञान करने के लिए सँस्कर्ता प्रयोग को अच्छी तरह से अध्ययन करें।

रूत्व विधायक विधि सूत्र

नश्छव्य प्रशान् 8 । 3 । 7 ।।

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रूः, न तु प्रशान् - शब्दस्य।

अर्थः-अम् परक छव् प्रत्याहार के परे होने पर नकारान्त पद को रू आदेश होता है।

किन्तु प्रशान् शब्द के नकार को छोड़कर। अर्थात् प्रशान् शब्द के नकार को रू नहीं होगा।

छव् प्रत्याहार में छ् ठ् थ् च् ट् त् ये छः वर्ण आते है। सम्पूर्ण नकारान्त शब्द को रु आदेश प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में अलोऽन्त्यस्य सूत्र के द्वारा अन्तिम वर्ण नकार के स्थान में रू होता है। उदाहरण यथा -

चक्रिन् + त्रायस्व (यहाँ पर चक्रिन् यह नान्त पद है) यहां सूत्र लगा- नश्छव्य प्रशान्। यह सूत्र कहता है कि छव् प्रत्याहार के बाद अम् प्रत्याहार हो, उस छव् प्रत्याहार से पूर्व नान्त पद हो तो नकार के स्थान में रू आदेश होता है यहां पर नान्त पद का वर्ण है चक्रिन् में नकार। उस नकार से परे छव् प्रत्याहार का वर्ण है त्रायस्व का त्। उस तकार से परे अम् प्रत्याहार का वर्ण है त्रकार में र। इसलिए नकार के स्थान में रू होकर चक्रिरु + त्रायस्वः बना। रु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर चक्रिर् + त्रायस्व बना।

अब इसके बाद सूत्र लगा-'अत्रानुनासिकः पूर्वस्यः तु वा ' इस सूत्र चक्रिर् में र से पूर्व इ के बाद अनुनासिक का आगम होकर चक्रिँर् + त्रायस्व बना। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा उस पक्ष में अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र के द्वारा आगम होकर चक्रिँर + त्रयास्वः बना। इसके बाद खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से चक्रिँर् के स्थान में विसर्ग होकर चक्रिँ: त्रायस्वः और अनुस्वार पक्ष में चक्रिं त्रायस्वः रूप बने। अब विसर्ग को सकार आदेष करने वाला अगला सूत्र प्रयोग किया जाता है:-

सकारादेष विधायक विधि सूत्र

विसर्जनीयस्य सः 8 । 3 । 34 ।।

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात् । चक्रिंस्त्रायस्व, चक्रिंस्त्रायस्व अप्रषासन किम् ? प्रषान् तनोति। पदस्येति किम् ? हन्ति।

अर्थः- खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेष होता है।

खर् प्रत्याहार में ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स ये तेरह वर्ण आते हैं ये वर्ण जिसके बाद में हो तो पूर्व में जो विसर्ग है उसके के स्थान में सकार आदेश होता है।

चूक्रिँ: + त्रायस्व, चुकिः + त्रायस्व यहां पर खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में है त्रायस्व का तकार उसमें पूर्व वर्ण विसर्ग के स्थान में विसर्जनीयस्य सः सूत्र से स् आदेश होकर चक्रिँस्त्रायस्व, अनुस्वार पक्ष में चक्रिंस्त्रायस्व ये दो रूप सिद्ध किये गये।

अप्रशान् किम् ? प्रशान् करोति। अब यहां प्रश्न करते है कि नश्छव्यप्रशान् सूत्र में अप्रशान क्यों कहा? उत्तर देते है कि प्रशान् तनोति में दोष न आवे, इसलिए। क्योंकि अप्रशान् कहकर प्रशान् शब्द को निषेध नहीं करेंगे तो प्रशान् + तनोति में भी नकार को रूत्व होकर प्रशाँस्तनोति ऐसा अनिष्टरूप बनने लगता है। इस अनिष्ट रूप के निवारण के लिए सूत्र में प्रशान् शब्द के रूत्व को निषेध किया गया हैं।

पदस्येति किम् ? हन्ति। अब प्रश्न करते है कि नश्छव्यःप्रशान् सूत्र में पदस्यं शब्द क्यों पढ़ा गया? उत्तर देते है कि हन्ति में दोष न आवे, इसलिए। क्योंकि पदस्य कहने से पदान्त दोनों नकार को ही रूत्व करता है। अपदान्त को नहीं। यदि पदस्य की अनवृत्ति नहीं करेंगे तो यह सूत्र पदान्त या अपदान्त दोनों नकारों में रुत्व होने लगेगा, जिससे हन् + ति यहां पर अपदान्त नकार को भी रुत्व होकर हँस्ति ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगेगा। इस अनिष्ट रूप के निवारण के लिए सूत्र में पदान्तस्य यह पद पढ़ा गया है।

वैकल्पिक रुत्व विधायक विधि सूत्र

नृन् पे 8। 3। 10।।

नृनित्यस्य रुर्वा पे।

अर्थः- पकार के परे होने पर नृन् शब्द के नकार के स्थान पर विकल्प करके रू आदेश होता है। अलोऽन्त्यस्य सूत्र के द्वारा अन्तिम वर्ण नकार के स्थान पर ही रू आदेश होगा। उदाहरण यथा -

नृन् + पाहि । यहां पर सूत्र लगा-नृन् पे। यह सूत्र कहता है कि पकार के परे होने पर नृन के नकार के स्थान पर रु आदेश होता है यहां पर पकार पर में है पाहि का पकार पूर्व में नकार है नृन् का नकार इस नकार के स्थान पर रू आदेश होकर नृ रु + पाहि बना। रु में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोप होकर, नृ र् पाहि बना। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा इस सूत्र से पूर्व अननुासिक होकर नृँ रु के र् + पाहि बना। अनुनासिक विकल्प से होता है जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होगा, उस पक्ष में अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र से अनुस्वार का आगम होकर नृंर + पाहि बना। उसके बाद र् कार को खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से विसर्ग होकर नृँ+पाहि, नृं + पाहि बना। अब यहां विसर्जनीयस्य सः से विसर्ग के स्थान पर सकार प्राप्त था। उसको बांधकर अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है-

जिह्वामूलीयोपध्मानीय विधायक विधि सूत्र

कुप्वोः = क = पौ च 8। 3 । 37 ।।

क वर्गे पवर्गे च परे विसर्गस्य = पौ स्तः। चाद् विसर्गः।

नृँ = पाहि, नृँ: पाहि, नृं = पाहि, नृं: पाहि, नृन्पाहि।

अर्थ:- कवर्ग पवर्ग परे होने पर विसर्ग को क्रमशः जिह्वाम्लीय तथा उपध्मानीय आदेश होते है। सूत्र में चकार पद ग्रहण से पक्ष विसर्ग भी होता है।

नृँ: + पाहि, नृं: पाहि। इस स्थिति में सूत्र लगा - कुप्वोः = क = पौ च इस सूत्र के द्वारा पकार परे होने से विसर्गे को उपध्मानीय होकर = पाहि, नृं = पाहि। विसर्ग पक्ष में नृँ: पाहि, नृं पाहि बना। और जिस पक्ष में नृन् पे सूत्र से विसर्ग नहीं होगा, उस पक्ष में नृन्पाहि इस प्रकार कुल मिलाकर पांच रूप सिद्ध किये गये।

आम्रेडित संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

तस्य परमाम्रेडितम् 8 । 1 । 2 ॥

द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं स्यात् ।

अर्थ:- एक ही शब्द जो दो बार कहा गया है उसमें पर अर्थात् दूसरा शब्द आम्रेडित संज्ञक होता है। वैसे उच्चारण से हो या द्वित्व करके हो, एक ही शब्द का यदि दो बार उच्चारण या लेखन किया गया हो तो, दूसरा जो शब्द है उसकी इस सूत्र से आम्रेडित संज्ञा करता है। उदाहरण यथा -

किम् शब्द के द्वितीया विभक्ति बहुवचन विवक्षा में कान् शब्द बनता है। उसका कान् पद को नित्यविप्सयोः सूत्र से द्वित्व होकर कान् कान् बना। अब यहां एक ही शब्द दो बार कहा गया है। उसमें पर अर्थात् दूसरा जो कान शब्द है उसकी आम्रेडित संज्ञा नाम पड़ गया। आम्रेडित संज्ञा होने का फल क्या है उसका वर्णन सूत्र में करेंगे।

रुत्व विधायक विधि सूत्र

कानाम्रेडिते 8 । 3 । 12 ॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते । काँस्कान्, कांस्कान् ।

अर्थ:- आम्रेडित परे होने पर कान् शब्द के नकार को रु होता है।

कान् + कान् यहां पर सूत्र लगा - कानाम्रेडिते। यह सूत्र कहता है कि आम्रेडित के परे होने पर कान् शब्द के नकार को रू आदेश होता है। यहाँ पर आम्रेडित शब्द पर में है दूसरा कान्। उसके पूर्व में पहला कान् जो शब्द है उस कान शब्द के नकार के स्थान पर रु आदेश होकर कारु + कान् ऐसा बना। उसके उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से रु में उकार इत की संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप हाकर कार् + कान् बना। उसके बाद र् से पूर्व और आकार से परे अनुनासिक होकर काँर् + कान् बना। उसके बाद अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः इस सूत्र से अनुनासिक को छोड़कर अनुस्वारः का आगम होकर कांर् + कान् बना। उसके बाद खरवसानयोर्विसर्जनीयः इस सूत्र से रकार के स्थान पर विसर्ग होकर काँ + कान्, कां + कान् बना। उसके बाद जिह्वामूलीय प्राप्त था उसको बांधकर सम्पुकानां सो वक्तव्यः इस वार्तिक के द्वारा विसर्ग के स्थान पर सकार होकर काँस् + कान्, कांस् + कान् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर काँस्कान्, कांस्कान् ये दो रूप सिद्ध होते है:-

तुगागम विधायक विधि सूत्र

छे च 8 । 3 । 12 ॥

ह्रस्वस्य छे परे तुक्। शिवच्छाया।

अर्थ:- छकार परे हो तो ह्रस्व को तुक् का आगम होता है।

शिव + छाया । शिवस्य छाया इति विग्रह, ऐसा षष्ठी तत्पुरूष समास हुआ है। यहां सूत्र लगा - छेच। यह सूत्र कहता है कि छकार परे होने पर ह्रस्व को तुक् का आगम होता है। यहाँ पर

ह्रस्व है शिव में वकार में अकार इस अकार से छ पर में है। छाया का छकार । इसलिए अकार के स्थान तुक् का आगम होता है अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि तुक् का आगम कहाँ पर होगा ? तुक् में ककार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा तथा दोनों का तस्य लोपः से लोप होकर 'त्' मात्र बचता है। आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र के अनुसार कित् होने के कारण ह्रस्व अकार के बाद ही बैठेगा। ह्रस्व अकार है शिव में वकार में अकार के बाद अ के बैठकर शिव + त् + छाया बना। (आगम कहाँ होता इसका विशेष वर्णन आद्यन्तौ टकितौ सूत्र में किया गया है) उसके बाद 'स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से तकार के स्थान पर श्चुत्व होकर शिव + च् + छाया बना। वर्ण सम्मेलन होकर शिवच्छाया प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखे।

वैकल्पिक तुगागम विधि विधायक सूत्र

पदान्ता द्वा।6 । 1 । 56 ।।

दीर्घात् पदान्ताच्छे परे तुग् वा। लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मी छाया।

अर्थः- पदान्त दीर्घ से छकार परे होने पर दीर्घ को तुक् का आगम होता है विकल्प से।

लक्ष्मी + छाया । यहाँ पर (लक्ष्म्याः छाया इति विग्रहः, षष्ठी तत्पुरूष समासः) सूत्र लगा- पदान्ताद्वा। यह सूत्र कहता है कि पदान्त दीर्घ से छकार का वर्ण बाद में हो तो दीर्घ को तुक् का आगम होता है। यहाँ पर पदान्त दीर्घ है। लक्ष्मी में मी में ईकार है। उसे ई को तुक् का आगम होता है। क्योंकि छकार पर में है छाया का छ। तुक् में क् का हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से सूत्र से इत्संज्ञा तथा दोंनों का तस्य लोपः से लोप होकर 'त्' मात्र बचता है। अब इस त् को कहाँ पर रखा जाय ? इस शंका को निवारण करने के लिए आद्यन्तौ टकितौ परिभाषा सूत्र के द्वारा कित् होने के कारण। पदान्त दीर्घ लक्ष्मी में मकार में ईकार के बाद रखा जायेगा। यह तुक् अन्त में बैठकर लक्ष्मीतुक् + छाया बना। उसके बाद स्तोः श्चुना श्चुः इस सूत्र के द्वारा तकार के स्थान पर श्चुत्व चकार होकर लक्ष्मी च् + छाया बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर लक्ष्मीच्छाया प्रयोग सिद्ध होता है। तुक् का आगम इस सूत्र के द्वारा विकल्प से होता है। जिस पक्ष में तुक् का आगम नहीं होगा। उस पक्ष में लक्ष्मीछाया ज्यौ का त्यौ रहा। इस प्रकार दो रूप सिद्ध किये गये। (1) लक्ष्मीच्छाया, तुक् पक्ष में (2) तुक् अभाव पक्ष में लक्ष्मीछाया ही रहेगा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
लक्ष्मी + छाया	लक्ष्मी + च् + छाया	लक्ष्मीच्छाया
शोध + छात्रः	शोध + च् + छात्रः	शोधच्छात्रः
इ + छति	इ + च् + छति	इच्छति
द्यूत + छलेन	द्यूत + च + छलेन	धूतच्छलेन
दन्त + छदः	दन्त + च + छदः	दन्तच्छदः
वेद + छन्दः	वेद + च् + छन्दः	वेदच्छन्दः
पद + छेदः	पद + च् + छेदः	पदच्छेदः
ग + छति	ग + च् + छति	गच्छति
मंगल + छाया	मंगल + च् + छाया	मंगलच्छाया
नूतन + छात्रः	नूतन + च् + छात्रः	नूतनच्छात्रः

चि + छेद	चि + च् + छेद	चिच्छेद
चित्र + छाया	चित्र + च् + छाया	चित्रच्छाया
यज्ञ + छागः	यज्ञ + च् + छागः	यज्ञच्छायाः
स्व + छन्दः	स्व + च् + छन्दः	स्वच्छन्दः
असि + छिन्नः	असि + च् + छिन्न	असिच्छिन्नः
नव + छिद्राणि	नव + च् + चिद्राणि	नवच्छिद्राणि
प + छति	प + च् + छति	पच्छति
वि + छेदः	वि + च् + छेदः	विच्छेदः
मम + छात्र	मम च् + छात्रः	ममच्छात्रः
तव + छात्र	तव + च् + छात्रः	तवच्छात्रः
गुच्छ + छेदः	गुच्छ + च् + छेदः	गुच्छच्छेदः
वैदिक् + छन्दांति	वैदिक + च् + छन्दांति	वैदिकच्छन्दांति
भूपति + छाया	भूपति + च् + छाया	भूपतिच्छाया
मधु + छन्दस्	मधु + च् + छन्दस	मधुच्छन्दस्
मूषक + छेद	मूषक + च् + छेद	मूषकच्छेद
आ + छिद्यते	आ + च् + छिद्यते	आच्छिद्यते
कुमारी + छेत्स्यति	कुमारी च् + छेत्स्यति	कुमारीच्छेत्स्यति
शीतला + छाया	शीतला + च् + छाया	शीतलाच्छाया
नो + छेदः	नो + च्: छेदः	नोच्छेदः
मा + छित्वा	मा + च् + छित्वा	माच्छित्वा
काले + छिद्यते	काले + च् + छिद्यते	कालेच्छिद्यते
मा + छिदः	मा + च् + छिदः	माच्छिदः
कुटी + छन्ना	कुटी + च् + छन्ना	कुटीच्छन्ना
गुढ़ा + छेकोक्तिः	गुढ़ा + च् + छेकोक्तिः	गुढ़ाच्छेकोक्तिः

इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

सन्धि एक प्रकार का वर्ण विकार है। यदि वह विकार अच् के स्थान पर हो तो अच् सन्धि कहते है। इसी प्रकार विसर्ग के स्थान पर सन्धि हो तो विसर्ग सन्धि कहते है। इस प्रकार अब हल् सन्धि समाप्त हुआ। अब इसके बाद विसर्ग सन्धि का अध्ययन करेंगे। किन्तु एक बात का विशेष ध्यान देना होगा कि जब तक हल् सन्धि का ज्ञान अच्छी प्रकार से नहीं होगा तो विसर्ग सन्धि समझ नहीं आयेगी। इसलिए हल् सन्धि का ज्ञान आवश्यक है।

अतिलघु-उत्तरीय

	प्रश्न	उत्तर
1.	शञ्छम्भूः किस सूत्र का उदाहरण है ?	(शि तुक्)
2.	शितुक सूत्र क्या करता है?	(तुक् का आगम करता है)
3.	प्रत्यङङात्मा किस सूत्र का उदाहरण है?	(ङमोह्रस्वादचि ङमुणनित्यम्)
4.	सुगण्णीशः का विग्रह क्या होगा?	(सुगण् + ईशः)
5.	सुन्नच्युतः का विग्रह क्या है?	(सन् + अच्युटः)

6. अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः सूत्र क्या करता है? (रू से पूर्व अनुस्वार)
7. सम्पुङकानां सो वक्तव्यः क्या करता है? (सम्पुम् कान् शब्दों के विसर्ग को सकार)
8. पुँस्कोकिल किस सूत्र का उदाहरण है? (पुमः खय्यम्परे)
9. चक्रिँस्त्रायस्व किस सूत्र का उदाहरण है? (विसर्जनीयस्य सः)
10. काँस्कान किस सूत्र का उदाहरण है? (कानाम्रेडिते)
11. शिवच्छाया किस सूत्र का उदाहरण है? (छे च)
12. लक्ष्मीच्छाया किस सूत्र का उदाहरण है? (पदान्ताद्वा)

बहुविकल्पात्मक

प्रश्न उत्तर

1. शकार परे होने पर पदान्त नकार को आगम होता है:-
(क) तुक्(ख) टुक्(ग) धुट् (घ) सुट् (क)
2. ङःमोह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् से होता है:-
(क) सुट् (ख) ङमुट (ग) धुट् (घ) नुट् (ख)
3. ह्रस्वं से परे जो ङम् उससे परे अच् को नित्य आगम होता है:-
(क) ङमुट (ख) नुक्(ग) जुट् (घ) धुट् (क)
4. सुट् परे होने पर सम् के मकार को होता है:-
(क) न् को रू (ख) सम् के म को रू
(ग) स् को रू (घ) पुम के मकार को रू ( )
5. रू प्रकरण में रू से पूर्व वर्ण को विकल्प से होता है:-
(क) अनुनासिक (ख) सुडागम (ग) धुडागम (घ) नुडागम (क)
6. खर् और अवसान पर में हो तो पदान्त रेफ के स्थान पर होता है -
(क) अनुनासिक (ख) अनुस्वार (ग) विसर्ग (घ) सुडागम (ग)
7. अम् प्रत्याहार जिससे परे है ऐसा यदि खय परे हो तो पुम शब्द के मकार को होता है-
(क) रू (ख) अनुनासिक (ग) अनुस्वार (घ) नुडागम (क)
8. खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर होता है:-
(क) र् (ख) न् (ग) स् (घ) ह् (ग)
9. एक ही शब्द को दो बार कहे गये पहल को कहते है:-
(क) सार्वधातुक (ख) सर्वनामस्थान (ग) आम्रेडित (घ) अपृक्त (ग)
10. छकार के परे होने पर ह्रस्वं अवयव का आगम होता है:-
(क) तुक्(ख) नुक्(ग) धुट् (घ) णुट् (क)

विसर्ग सन्धि सकारादेश विधायक विधि सूत्र

विसर्जनीयस्य सः 8 । 3 । 34।।

खरि विसर्जनीयस्य सः स्यात्। विष्णुस्त्राता।

अर्थः- खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होता है।

यह सूत्र हल् सन्धि में भी पढ़ा गया है और यहाँ भी पढ़ा गया है। यद्यपि यह सूत्र विसर्ग को सकार करता है अतः इस सूत्र को यही पढ़ा जाना ठीक था, फिर भी प्रसंग वश वहाँ भी पढ़ा गया।

खर् प्रत्याहार में ख्, फ्, छ, ठ, थ, च, ट्, त्, क, प, श, ष, स, ये तेरह वर्ण आते है। इन वर्णो के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हो होता है। इनमें भी क और ख के परे होने पर वैकल्पिक जिह्वामूलीय तथा प और फ के परे होने पर वैकल्पिक उपध्मानीय होता है। च और छ के परे होने पर इनके द्वारा किये गये सकार को स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से स् के स्थान पर श्चुत्व शकार आदेश हो जाता है। तथा ट् और ठ के परे होने पर ष्टुना ष्टुः सूत्र से ष्टुत्व हो जाता है त् और थ के परे होने पर सकार ही रहता है।

विष्णु + त्राता यहां पर सूत्र लगा- विसर्जनीयस्य सः यह सूत्र कहता है कि खर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होता है यहां पर खर् प्रत्याहार का वर्ण पर में है त्राता के तकार और विसर्ग पूर्व में है विष्णुः में (:) विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर विष्णुस् + त्राता बना। वर्ण सम्मेलन करने के बाद विष्णुस्त्राता रूप सिद्ध होता है।

इस सूत्र के कुछ सामान्य उदाहरण:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
रामः + त्रायते	रामस् + त्रायते	रामस्त्रायते
विष्णुः + त्राता	विष्णुस् + त्राता	विष्णुस्त्राता
गौः + चरति	गौस् + चरति	गौश्चरति
निः + छलः	निस् + छलः	निश्छलः

वैकल्पिक सकारादेश विधायक विधि सूत्र

वा शरि 8 । 3 । 36 ॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा। हरिः शेते, हरिश्शेते

अर्थ:- शर् प्रत्याहार के परे होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग आदेश होता है।

शर् प्रत्याहार में श, ष, स ये तीन वर्ण आते है। और शर् प्रत्याहार खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है। अतः विसर्जनीयस्य सः के नित्य प्राप्त होने पर यह सूत्र उसका अपवाद (बाधक) सूत्र है। इस सूत्र का आरम्भ किया जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि खर् प्रत्याहार में से श, ष, स के परे होने पर एक पक्ष में विसर्ग तथा एक पक्ष में सकार तथा शेष खर् के परे होने पर नित्य से विसर्ग के स्थान पर सकार ही होता है।

हरिः + शेते यहां पर सूत्र लगा - विसर्जनीयस्य सः सूत्र से नित्य विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश प्राप्त था। उसको बांधकर सूत्र लगा- वाशरि । यह सूत्र कहता है कि शर् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर विसर्ग के स्थान पर विकल्प से विसर्ग आदेश करता है। यहां पर पर में शर् प्रत्याहार का वर्ण है शेते का शकार उससे पूर्व में विसर्ग है हरिः में विसर्ग (ः) है। इसलिए विसर्ग के स्थान में सकार आदेश विकल्प से होता है हरिस् + शेते बना। अब यहां शकार तथा सकार की योग होने पर स्तोः श्चुना श्चुः सूत्र से सकार के स्थान पर शकार आदेश होकर हरिश् + शेते बना। वर्ण सम्मेलन होकर हरिश्शेते प्रयोग सिद्ध होता है। जब विसर्ग के स्थान में सकार नहीं होगा, उस पक्ष में हरिः शेते प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार हरिश्शेते, हरि शेते दो रूप बना।

रूत्वविधायक विधि सूत्र

ससजुषोरूः 8 । 2 । 66 ॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रूः स्यात् ।

अर्थ:- पदान्त सकार तथा सजुष् शब्द के षकार के स्थान पर रू आदेश होता है।

यह सूत्र विसर्ग की उत्पत्ति में कारण है। पदान्त सकार को जब यह रू आदेश कर देता है तो इकार की इत्संज्ञा होकर र् शेष बचता है। इस रेफ के स्थान में अवसान में तथा खर् प्रत्याहार परे खरवसानयोर्विसर्जनीयः से विसर्ग आदेश हो जाता है। तदनन्तर विसर्ग के स्थान पर यथा योग्य जिह्वमूनीय आदि आदेश होते है।

यदि खर् प्रत्याहार से भिन्न अक्षर र् से परे हो तो रेफ के स्थान पर क्या-क्या आदेश होते है? इसे बतलाने के लिए यह प्रकरण प्रारंभ किया जा रहा है।

रू में उकार अनुनासिक होने से उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र के द्वारा उकार की इत्संज्ञा होती है। उसकी इत्संज्ञा करने का फल आगे कहा जायेगा।

शिवस् + अर्च्य: यहां सुवन्त होने से शिवस् पद है। अतः इस सूत्र से पदान्त सकार को रू पुनः रू के उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर शिवर् + अर्च्यः बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

उत्वविधायक विधि सूत्र

अतो रोरप्लुतादप्लुते 6 । 1 । 113 ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति। शिवोऽर्च्यः ।

अर्थ:- प्लुतभिन्न ह्रस्वं अकार से परे रु सम्बंधी रेफ को उकार आदेश होता है। प्लुत भिन्न ह्रस्वं अकार के परे रहते। इस सूत्र का कार्य यह है कि रु में से शेष वचे रेफ के स्थान पर 'उ' आदेश करना है। किन्तु उस रेफ से पहले भी अप्लुत ह्रस्व अकार हो और बाद में अप्लुत ह्रस्व अकार हो तो। दोनों तरफ अप्लुत ह्रस्वं अकार और बीच में रू का रेफ हो तो उसके स्थान पर उकार अर्थात् उ हो जायेगा।

शिवर् + अर्च्य: यहां पर सूत्र लगा - अतोरोरप्लुतादप्लुते। यह सूत्र कहता है कि प्लुत भिन्न ह्रस्वं अकार से परे रू के र को उत्व अर्थात् उ हो जाता है। उसे प्लुत भिन्न ह्रस्वं अकार पर में हो तो । यहां पर प्लुत भिन्न ह्रस्वं अकार है शिव में वकार में अकार। उस अकार से पर में रू सम्बन्धी र विद्यमान है तथा रू सम्बन्धी र के बाद अप्लुत अकार है अर्च्य का अकार। इसलिए रू सम्बन्धी र् के स्थान में उकार अर्थात् उ होकर शिव + उ + अर्च्यः बना। उसके बाद पुनः शिव में अकार तथा पर में उकार इन दोनों वर्णो के स्थान पर आद्गुण से गुण ओ होकर शिवो + अर्च्यः बना। अब यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अवादेश प्राप्त था, उसको बांधकर एङः पदान्तादति सूत्र से पूर्वरूप हुआ तो ओकार तथा अकार दोनों मिलकर पूर्वरूप ओकार ही होगा, शिवो + र्च्यः बना। अकार के स्थान पर संकेताक्षर ऽ (खण्डाकार) चिन्ह यह अकार के बैठ जाने से शिवोऽर्च्यः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

ध्यान रहे कि यहाँ पर रू के स्थान पर उ नहीं होगा। किन्तु उकार की इत्संज्ञा तथा लोप हो जाने पर शेष बचे र के स्थान पर ही उत् होगा अर्थात् उकार होगा। सूत्र में रू के कथन का तात्पर्य यह है कि रु कर के ही उत्व हो अन्य र को उत्व नहीं होगा। यथा प्रातर + अत्र = पातरत्र, धातर् + अत्र = धातरत्र इत्यादि प्रयोगों में रू सम्बम्धी र न होने से उत्व नहीं होगा अर्थात् उकार नहीं होगा। नहीं तो अनिष्ट प्रयोग बनने लगता।

अब यहाँ विशेष ध्यान यह देना है कि प्लुत अप्लुत क्या है ? इसका संज्ञा प्रकरण ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः सूत्र में विशेष वर्णन किया है। प्लुत = त्रिमात्रिक होता है उससे रहित

अप्लुत अर्थात् एकमात्रिक ह्रस्वं उकार से परे रू सम्बंधी र के स्थान में उ होता है ऐसा सूत्र में कहा गया है। अब विसर्ग सन्धि में इस सूत्र का अन्य उदाहरण यथा -

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
शिवास् + अर्च्यः	शिव + उ + अर्च्य	शिवोऽर्च्यः
बालस् + अत्र	बाल + उ + अत्र	बालोऽत्र
सस् + अपि	स + उ + अपि	सोऽपि
वचनस् + अनुनासिकः	वचन + उ + अनुनासिकः	वचनोऽनुनासिकः
रामस् + अस्ति	राम् + उ + अस्ति	रामोऽस्ति
ततस् + अन्यथा	तत + उ + अन्यथा	ततोऽन्यथा
शान्तस् + अनलः	शान्त + उ + अनलः	शान्तौऽनलः
म् + अनुस्वारः	मनः + उ + अनुस्वारः	मोऽनुस्वारः
शुद्धस् + अहम्	शुद्ध + उ + अहम्	शुद्धोऽहम्
मनषस् + अद्य	मनष + उ + अद्य	मनषोऽद्य
हस्तस् + अस्य	हस्त + उ + अस्य	हस्तोऽस्य
सस् + उपवादः	स + उ + अपवादः	सोऽपवादः
समाचारस् + अन्तिमः	समाचार + उ + अन्तिमः	समाचारोऽन्मिः
ग्रामस् + अस्य	ग्राम + उ + अस्य	ग्रामोऽस्य
न्यूनस् + अस्ति	न्यून + उ + अस्ति	न्यूनोऽस्ति
ग्रामस् + अस्ति	ग्राम + उ + अस्ति	ग्रामोऽस्ति
सुवुधस् + असि	सुवुध + उ + असि	सुवुधोऽसि
श्यामस् + अस्ति	श्याम + उ + अस्ति	श्यामोऽस्ति
कृष्णस् + अस्य	कृष्ण् + उ + अस्य	कृष्णोऽस्य
राज्ञस् + अभिषेकः	राज्ञ + उ + अभिषेकः	राज्ञोऽभिषेकः
उमेशस् + अहम्	उमेश + उ + अहम्	उमेशोऽहम
सुरेशस् + अहम्	सुरेश + उ + अहम्	सुरेशोऽहम्
अवधेशस् + अहम्	अवधेश + उ + अहम्	अवधेशोऽहम्

अभि तक आपने अप्लुत अकार पर में रहे तो रू सम्बन्धी र को उ किया। अब इसके बाद आप हश् प्रत्याहार पर में हो वहां भी रू सम्बन्धी र् के स्थान में उकार होगा। इसके लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है।

उत्व विधायक विधि सूत्र

हशि च 6 । 1 । 114 ॥

तथा। शिवो वन्द्यः ॥

अर्थ:- अप्लुत अर्थात् ह्रस्वं अकार से परे रू सम्बन्धी र के स्थान पर उ होता है। पर में हश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो।

इस सूत्र का काम भी उ करना है किन्तु अतोरोरप्लुतादप्लुते ये सूत्र ह्रस्वं अकार पर में हो तो लगता है और हशि च ह्रस्वं अकार पर में हो तो लगता है। इन दोनों सूत्रों में अन्तर इतना ही है। बॉकी सब में समानता है। अतः ये दोनों सूत्र समानान्तर ही है।

शिवस् + वन्द्यः यहां सबसे पहले सूत्र लगा ससजुषोरूः इस सूत्र के द्वारा पदान्त सकार को रूत्व अर्थात् रू होकर शिव + रू + वन्द्यः बना। उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर र् मात्र बचता है। शिव + र् + वन्द्यः बना। अब इसके बाद सूत्र लगा-हशि च। यह सूत्र कहता है कि अप्लुत अर्थात् ह्रस्वं अकार से परे जो रू सम्बन्धी र् उसको उकार होता है हश् प्रत्याहार (ह, य, व, र, ल, भ, म, ङ्, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) का वर्ण पढ में हो तो। यहां पर अप्लुत अर्थात् ह्रस्वं अकार है शिव में व में अकार उसके पर में रू सम्बन्धी र् के स्थान में उ होता है। उस रू के बाद में हश् प्रत्याहार का वर्ण है वन्द्यः का वकार। इसलिए र् के स्थान में उकार होकर शिव + उ + वन्द्यः बना। उसके बाद शिव में व में अकार तथा पर में उकार का उ इन दोनों वर्णो के स्थान में आद्गुण से गुण ओकार होकर शिव् + ओ + वन्द्यः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर शिवो वन्द्यः प्रयोग सिद्ध होता है। इस सूत्र के अन्य उदाहरण:-

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
रामस् + हसति	राम् + ओ + हसति	रामोहसति
बालस् + याति	बाल् + ओ + याति	बालोयाति
शिवस् + वन्द्यः	शिव + ओ + वन्द्यः	शिवोवन्द्यः
बालस् + रौति	बाल् + ओ + रौति	बालोरौति
वुधस् + लिखति	वुध् + ओ + लिखति	वुधोलिखति
मुखस् + मुह्यति	मुख् + ओ + मुह्यति	मुखोह्यति
कस् + णोपदेशः	क् + ओ + णोपदेश	कोपदेशः
भक्तस् + नमति	भक्त् + ओ + नमति	भक्तो नमति
पर्वतस् + धौतः	पर्वत् + ओ + धौतः	पर्वतो धौतः
अगदस् + ज्वरघ्नः	अगद् + ओ + ज्वरघ्नः	अगदो ज्वरघ्नः
सूर्यस् + भाति	सूयर् + ओ + भाति	सूर्यो भाति
कस् + बालः	क् + ओ + बालः	को बालः
नरस् + गच्छति	नर् + ओ + गच्छति	नरो गच्छति
काकस् + डिडये	काक् + ओ + डिडये	काको डिडये
नृपस् + दास्यति	नृप् + ओ + दास्यति	नृपोदास्यति

अभी तक आप ने रू सम्बन्धी र के स्थान में उकार किया। अब आप रू सम्बन्धी र् के स्थान में यकार करेंगे। यह अगले सूत्र में बताया जायेगा।

य आदेश विधायक विधि सूत्र

भोभगो अघो अपूर्वस्य योऽशि 8 । 3 । 17 ।।

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा इह, देवायिह ।

भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ताः निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते -

अर्थ:- अश् प्रत्याहार के परे होने पर भो भगो अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले रु के स्थान पर यकार आदेश होता है। देवास् + इह यहां पर ससजुषो रूः सूत्र द्वारा पदान्त सकार के स्थान में रू आदेश होकर देवारू + इह बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर देवार् + इह बना। अब यहाँ सूत्र लगा - भो-

भगोऽघोऽपूर्वस्य योऽशि। यह सूत्र कहता है कि अश् प्रत्याहार (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, ´, म, ङ, ण, न झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द) का वर्ण पर में हो तो, भो-भगो अघो तथा अवर्ण पूर्व वाले रु के स्थान पर यकार आदेश होता है। यहाँ पर अश् प्रत्याहार का वर्ण पर में है देवार् + इह में इकार तथा पूर्व में अवर्ण है देवार् में वा में आकार उससे परे र है, उस र् के स्थान में यकार आदेश होकर देवा+य्+ इह बना। उसके बाद लोपः शाकल्यस्य सूत्र से यकार को विकल्प से लोप होकर देवा इह बना और जिस पक्ष में यकार का लोप नहीं होगा उस पक्ष में देवाय् इह में वर्ण सम्मेलन होकर देवायिह प्रयोग सिद्ध हुआ। इस प्रकार देवा इह देवयिह दो रूप सिद्ध हुए। ध्यान रहे कि लोप पक्ष में अर्थात् देवा इह, जिस पक्ष में लोपः शाकल्यस्य से लोप होगा उस पक्ष में आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण नहीं होता है। यह अवर्ण पूर्व का उदाहरण इस सूत्र में दिया गया है।

भो भगोऽघोपूर्वस्य योऽशि इस सूत्र से भो भोस् भगोस् अघो- अपूर्वस्य इन जगहों पर सकार को रूत्व होकर इसी सूत्र से यकारादेश होने पर उसका हलि सर्वेषाम् सूत्र से लोप होकर भो भगो, भगो + अघो, अघो अपूर्वस्य बना। उनमें प्रथम दो रूपों को छोड़कर शेष दो प्रयोगों में एचोऽयवायावः सूत्र से अव् आदेश प्राप्त होता है। किन्तु पूर्वत्रासिद्धम् से त्रिपादी हल् सर्वेषाम् को असिद्ध कर दिये जाने के कारण यकार का लोप एचोऽयवायावः की दृष्टि में असिद्ध हुआ। अर्थात् उसके बीच में यकार ही दिखा। फलतः अव आदेश नहीं हुआ। भो भगोऽघोऽपूर्वस्य ही रह गया।

भोस् भगोस् तथा अघोस् ये सान्त निपात है। ये सब सम्बोधन (सर्व साधारण के सम्बोधन में भोस् भगवान के सम्बोधन में भगोस् तथा पापी के सम्बोधन में अघोष का प्रायः प्रयोग देखा जाता है।) में प्रयोग होते है। भो पूर्वक उदाहरण भोस् + देवा यहाँ पर सबसे पहले सूत्र लगा - ससजुषो रूः इस सूत्र के द्वारा सकार के स्थान में रू आदेश होकर भोरू: देवा बना। उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सत्र से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर भोर् + देवा बना। उसके बाद सूत्र लगा- भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य। यह सूत्र कहता है कि अश् प्रत्याहार के परे होने पर भो, भगो, अघो तथा अपूर्वक रू के स्थान में यकार आदेश होता है। भोर + देवा यहाँ पर अश् प्रत्याहार का वर्ण परे है देवा में द् उससे पूर्व भोर् है उस र से पूर्व भो शब्द है इसलिए रू सम्बन्धी र् के स्थान में य होकर भोय् + देवा बना। अब इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ -

वलोप विधायक विधि सूत्र

हलि सर्वेषाम् 8 । 3 । 22 ॥

भोभगोअघो। अपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि। भो देवाः ।

भगो नमस्ते । अघो याहि।

अर्थ:- हल् परे होने पर भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्वक यकार का लोप होता है।

भोय् + देवा यहाँ पर सूत्र लगा- हलि सर्वेषाम् यह सूत्र कहता है कि हल् परे रहने पर भो, भगो, अघो तथा अवर्ण पूर्वक यकार का लोप होता है यह उदाहरण भो पूर्वक अर्थात् भो पूर्व में हो ऐसे रू सम्बन्धी र् के स्थान में यकार हुआ है। उस यकार का लोप होता है। उस यकार के बाद हल् प्रत्याहार का वर्ण है देवा में द्। इसलिए यकार का लोप होकर भो देवा ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

भगोपूर्वक उदाहरण:-

भगोस् + नमस्ते। यहाँ पर ससजुषोरुः इस सूत्र से सकार के स्थान में रु होकर अघोरु + याहि बना। उसके बाद रु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् - सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर अघोर् + याहि बना। उसके बाद भो भगो-अघोअपूर्वस्य योऽशि सूत्र से रु सम्बन्धी र् के स्थान में यकार होकर भगोय + नमस्ते बना। उसके बाद हलि सर्वेषाम् सूत्र से यकार का लोप होकर भगो नमस्ते प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अघो याहि बनेगा।

विग्रह	**आदेश**	**लोप**	**सन्धि**
देवास् + इह	देवाय + इह	देवा + इह	देवा इह
भोस् + देवा	भोय् + देवा	भो + देवा	भो देवा
भगोस् + नमस्ते	भगोय् + नमस्ते	भगो + नमस्ते	भगो नमस्ते
अधोस् + याहि	अधोय् + याहि	अधो + याहि	अधो याहि
मृगस् + एति	मृगय् + एति	मृग + एति	मृग एति
बालास् + इच्छन्ति	बालाय् + इच्छन्ति	बाला + इच्छन्ति	बाला इच्छन्ति
भोस् + देवस्त	भोय् + देवस्त	भो + देवस्त	भो देवस्त
रामस् + अब्रवीत	रामय् + अब्रवीत	राम + अब्रवीत	राम अब्रवीत
रविस् + उदेति	रविय् + उदेति	रवि + उदेति	रवि उदेति
भोस् + परमात्मन	भोय् + परमात्मन	भो + परमात्मन	भो परमात्मन
तन्नस् + आसुव	तन्नय् + आसुव	तन्न + आसुव	तन्न आसुव

अभी तक आपने विसर्ग सन्धि में यलोप सन्धि का उदाहरण पढ़ा। अब इसके बाद रेफादेश सन्धि के विषय में अध्ययन करेंगे।

रेफादेश विधायक विधि सूत्र

रोऽसुपि 8 । 2 । 69 ॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि। अहरहः अहर्गणः।

अर्थ:- अहन् शब्द के अन्त्य नकार के स्थान पर र् आदेश होता है। परन्तु सुप् परे होने पर नही होता है।

अलोऽन्त्यस्य - परिभाषा के बल पर अहन् के अन्त्य वर्ण के स्थान पर रेफ अर्थात् र आदेश होगा किन्तु उस रेफ से परे सुप् विभक्ति नहीं होनी चाहिए। यह सूत्र अहन् के नकार के स्थान पर र आदेश करने वाले अहन् इस सूत्र का बाधक है। अहन् + अहन् में नित्य वीप्सयोः सूत्र से अहन को द्वित्व हुआ है। और सु का स्वमोर्नपुंसकात सूत्र से लुक भी हुआ है। अब इसके बाद रोऽसुपि से दोनों नकारों के स्थान पर र् आदेश होकर अहर + अहर बना। प्रथम र् के स्थान द्वितीय अहर का अकार मिलकर अहरहर बना। अब द्वितीय रेफ अर्थात् र् को अवसान संज्ञा होने के कारण खरवसानयोर्विसर्जनीयः सूत्र से र् के स्थान पर विसर्ग होकर अहरहः प्रयोग सिद्ध होता है।

अहर्गणः अहन् + गणः में रोऽसुपि इस सूत्र से नकार के स्थान पर र होकर अहर् + गणः बना। रेफ का उर्ध्वगमन होकर अहर्गणः प्रयोग सिद्ध होता है। यहां पर अवसान भी नहीं है। और खर् प्रत्याहार भी पर में नहीं है इसलिए रेफ को विसर्ग नहीं हुआ। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझें।

रेफलोप विधायक सूत्र

रो रि 8 । 2 । 14 ॥

रेफस्य रेफे परे लोपः ।

अर्थ:- रेफ के परे होने पर रकार का लोप होता है। अर्थात् दो रेफ एक साथ हीं नहीं मिलेगें क्योंकिं व दूसरे रेफ के परे होने पर प्रथम रेफ का इस सूत्र से लोप होता है। इस सूत्र का उपयोग आगे सूत्र में दिया जा रहा है।

दीर्घ विधायक विधि सूत्र

ढलोपेपूर्वस्य दीर्घोऽणः 6 । 3 । 111 ।

ढरेफयोर्लोपनिभित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुनारमते।

हरी रम्यः । शम्भू राजते। अणः किम् ? तृढः। वृढः ॥

अर्थ:- ढकार और रेफ अर्थात् र के लोप होने में निमित्त भूत वर्ण रेफ और ढकार के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है।

व्याकरण शास्त्र में दूसरे ढकार के परे होने पर पूर्व ढकार का ढोढे लोपः सूत्र लोप हो जाता है और दूसरे रकार के परे होने पर पूर्व वाले रेफ का रोरि सूत्र के द्वारा लोप हो जाता है। इस तरह ढकार और रेफ के लोप होने में निमित्त बने रेफ और ढकार ही है। उनके परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् अर्थात् अ, इ, उ, को दीर्घ होता है। उदाहरण यथा पुनर + रमते यहां पर रोर सूत्र के द्वारा रमते का र रेफ परे होने के कारण पूर्व रेफ अर्थात् पुनर के रकार का लोप होकर पुन + रमते बना। अब सूत्र लगा - ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः। यह सूत्र कहता है कि ढकार और रेफ के लोप होने के निमित्त भूत वर्ण र और ढ के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है। यहां पर एक रेफ के लोप में दूसरा रेफ निमित्त बना। यदि दूसरा रेफ न होता तो प्रथम रेफ के लोप की प्राप्ति ही नहीं होती। अतः दूसरा रेफ लोप का निमित्त है लोप होने पर रमते बना। द्वितीय रेफ के परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् पुनः के नकार में अकार को दीर्घ पुना रमते प्रयोग सिद्ध होता है।

हरी रम्यः हरिस् + रम्यः यहां पर ससजुषोरूः सूत्र से स् के स्थान पर रूत्व होकर हरिरू + रम्यः बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर हरिर् + रम्यः बना। उसके बाद रोरि सूत्र से रकार परे होने के कारण प्रथम रेफ का लोप होकर हरि + रम्यः बना। उसके बाद सूत्र लगा-ढ्लोपेपूर्वस्य दीर्घोऽणः यह सूत्र कहता है कि ढकार और रेफ के लोप होने में निमित्त भूत वर्ण रेफ और ढकार के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ होता है। द्वितीय रेफ पर में है रमते का रकार, उससे पूर्व रेफ का लोप होकर हरि रम्यः बना। उस र् से पूर्व अण् प्रत्याहार का वर्ण है हरि में रि में इ। उस इ को दीर्घ होकर हरी रम्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

शम्भू राजते: शम्भुस् + राजते सकार के स्थान पर ससजुषोरूः सूत्र से रूत्व होकर शम्भुरू + राजते बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर शम्भुर् + राजते बना। उसके बाद रोरि सूत्र से रेफ के परे होने पर प्रथम र् का लोप होकर शम्भु + राजते बना। उसके बाद द्वितीय रेफ के परे होने पर पूर्व में विद्यमान अण् शम्भु के उकार को ढ्लोपेपूर्वस्य दीर्घोऽणः सूत्र से दीर्घ होने पर शम्भू + राजते प्रयोग सिद्ध होता है। अण् प्रत्याहार अ इ उ ये तीन वर्ण आते है इन तीनों वर्णो का उदाहरण आपने पढ़ लिया।

अण्ः किम् ? तृढः । वृढः। अब प्रश्न करते है कि ढ्रलोपेपूर्वस्य दीर्घोऽण्ः इस सूत्र में अणः पढ़ने की क्या आवश्यकता थी ? ढकार और रेफ के लोप में निमित्त भूत ढकार और रेफ के परे होने पर पूर्व अण् को दीर्घ हो, इतने मात्र कहने से पुनारमते, हरी रम्यः तथा शम्भू राजते आदि प्रयोग सिद्ध हो जाते।

उत्तर दिया कि यदि अणः न कहते हो तो तृढ़ः वृढः इन प्रयोगों में दोषा अर्थात् दीर्घ होने लगता। क्योंकि जब अण् नहीं पढ़ा जायेगा तो सूत्र अण् हो या अण् से भिन्न कोई भी अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो उसको दीर्घ होने लगेगा। फलतः तृह् वृह उद्यमने धातु से क्त प्रत्यय होकर तृह + क्त, वृहः क्त बना। उसके बाद लशक्वतद्धिते सूत्र से क्त में पूर्व क् की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर त मात्र बचता है। अतः तृह् + त्, वृह् + त बना। उसके बाद तकार के स्थान पर धकार होकर तृह + ध , वृह + ध बना। उसके बाद होढः सूत्र से हकार के स्थान पर ढकार होकर तृढ् + ध, वृढ़ + ध बना। उसके बाद धकार को ष्टुना ष्टुः सूत्र से ष्टुत्व होकर तृढ़ + ढ, वृढ़ + ढ़ बना। उसके बाद ढो ढेलोपः सूत्र से पूर्व ढकार का लोप होकर तृ + ढ, वृ + ढ बना। यहां पर ढकार के लोप होने में निमित्तक ढकार परे है। अतः पूर्व में ऋकार को दीर्घ होने लगता जिसके कारण तृद्ध, वृद्ध ऐसा अनिष्ठ रूप बनने लगता। उस अनिष्ठ दोष के निवारणार्थ यहां पर अणः पर पढ़ा गया है। अतः यहां पर तृढ, वृढ शब्द बना। उसके बाद प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा विभक्ति एक वचन विवक्षा में सु प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोपः सकार रूत्व विसर्ग होकर तृढः वृढः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार इस सूत्र का अन्य उदाहरण यथा -

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
पुनर् + रम्यः	पुना + रम्यः	पुनारम्यः
पुनर् + रमते	पुना + रमते	पुनारमते
हरिर् + रम्यः	हरी + रम्यः	हरीरम्यः
शम्भूर् + राजते	शम्भू + राजते	शम्भूराजते
नर् + रम्यः	ना + रम्यः	ना रम्यः
अन्तर् + राष्ट्रियः	अन्ता + राष्ट्रिय	अन्ताराष्ट्रियः
सवितुर् + रश्मयः	सवितू + रश्मयः	सवितू रश्मयः
भूपतिर् + रक्षति	भूपती + रक्षति	भूपती रक्षति
निर + रस	नी + रस	नीरस
निर् + रोग	नी + रोग	नी रोग
लिढ् + ढः	ली + ढः	लीढः
गुरूर् + रम्यः	गुरू रम्यः	गुरू रम्यः
लिढ् + ढाम्	ली + ढाम्	लीढाम्
लिढ् + ढे	ली + ढे	लीढे

विशेषः- पुना + रमते में यहाँ पर पुनस् + रमते यह विग्रह अशुद्ध है, क्योंकि पुनर् - यह अव्यय पद है और रकारान्त है, सकारान्त नहीं। सकारान्त होने पर हशि च से उत्व होकर पुनोरमते ऐसा अनिष्ट प्रयोग बनने लगता। हरिस् + रम्यः, शम्भूस् + राजते ये दोनों पद सकारान्त है। अवर्ण पूर्व

में न होने से हशि च सूत्र से उत्व नहीं होता है। अतः इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझे। अब इसके बाद उत्वसन्धि का कुछ अन्य उदाहरण दिया जा रहा -

मनस् + रथ इत्यत्र रूत्वे कृते हशि च (106)

इत्युत्वे 'रोरि' (111) इति लोपे च प्राप्ते -

अर्थ:- मनस् + रथ यहां पर ससजुषोरूः सूत्र से सकार के स्थान में रु होकर मनरू रथ बना। उसके बाद उपदेशेऽजनुनासिक इत सूत्र से रू में उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर मनर + रथ बना।

शंका:- अब यहाँ पर मनर् + रथ में हशि च सूत्र से उत्व प्राप्त है, तथा रोरि सूत्र से पूर्व रकार को लोप प्राप्त है अतः ये दोनों सूत्र एक साथ प्राप्त होते है। इन दोनों में से पहले कौन सा सूत्र हो? इस शंका के निवृत्ति अर्थात् निवारण के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है -

परिभाषा सूत्र

विप्रतिषेधे परं कार्यम् 1 । 4 । 2 ॥

तुल्य बलविरोधे परं कार्यं स्यात् ।

इति लोपे प्राप्ते 'पूर्वत्रासिद्धम्' इति 'रोरि' इत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव। मनोरथः।

अर्थ:- तुल्य बल वालों का विरोध होने पर, पर कार्य होता है पाणिनि ने सबसे पहले अष्टाध्यायी का निर्माण किया। उसमें आठ अध्याय है। उन आठ अध्यायों के प्रति अध्यायों में चार पाद का निर्माण किया, तथा उन प्रति पादों में सूत्र संख्या का निर्माण किया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन् व्याकरण में अध्याय पाद संख्या के क्रम से अध्ययन करते है और उन सूत्रों के अनुसार प्रयोग का निर्माण किया है- जैसे प्राचीन व्याकरण का ग्रन्थ है काशिकावृत्ति। किन्तु लघुसिद्धान्त कौमुदी जो ग्रन्थ है वह नव्य व्याकरण का है जिसमें वरदराजाचार्य ने प्रयोगों के अनुसार सूत्रों का निर्माण किया। किन्तु जब हम किसी प्रयोग को सिद्ध करते है यदि वहां पर एक ही साथ दो सूत्र जब प्राप्त होते है, तो, अध्याय पाद सूत्र संख्या के अनुसार पूर्वा पर का ज्ञान करते है और उसी से निर्णय भी करते है। इसका उदाहरण आगे दे रहे है -

तुल्य बल वाले दो कार्यो के विरोध को विप्रतिषेध कहते है। पृथक् - पृथक् स्थानों पर चरितार्थ होने वाले सूत्र तुल्यबल वाले कहलाते है। इन तुल्य बल वालों का यदि विरोध हो जाये तो इनमें जो अष्टाध्यायी में पर अर्थात् बाद वाला कहा गया है वही प्रवृत्त होता है यथा हशि च सूत्र 'शिवो वन्द्यः आदि स्थानों पर चरितार्थ हो चुका है इन स्थानों पर रोरि सूत्र प्रवृत्त नहीं हो सकता और रोरि सूत्र हरीरम्यः आदि स्थानों पर चरितार्थ हो चुका है। इन स्थानों पर हशि च सूत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती। तो इस प्रकार हशिच और रोरि तुल्य बल वाले है। अब इन तुल्यबल वालों का मनर् + रथ में विरोध उत्पन्न हो गया है। तो वही कार्य होंगे जो अष्टाध्यायी में पढ़ा गया है।

अष्टाध्यायी में हशिच सूत्र । 6 । 1 । 110 । अर्थात् छठे अध्याय का प्रथम पाद का एक सौ दशवा सूत्र है और रोरि (8. 3. 14) अर्थात् आठवे अध्याय का तीसरे पाद का चौदहवाँ सूत्र है। इस प्रकार पूर्व सूत्र है हशि च तथा पर सूत्र है रोरि। अतः रोरि सूत्र से रेफ अर्थात् र् का लोप प्राप्त होता है किन्तु पूर्व सूत्र और पर सूत्र में दोनों में कौन बलवान है उसको निर्णय करने के लिए पूर्वत्रासिद्धम् (31) सूत्र उपस्थित होता है और कहता है कि सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी सूत्र असिद्ध हो तो अर्थात् सिद्ध नहीं होते है। परन्तु रोरि सूत्र त्रिपादीस्थ होने के कारण हशि च

की दृष्टि में असिद्ध है। सूत्र संख्या 31 पूर्वत्रासिद्धम् को देखे) अतः हशि च की दृष्टि में रोरि सूत्र का अस्तित्व ही नहीं है। इसलिए हशि च सूत्र से र के स्थान में उ होकर मन + उ + रथः बना। उसके बाद आद्गुणः सूत्र से अ + उ = ओ गुण् होकर मन् + ओ +रथः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर मनोरथः प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे -

विग्रह	**आदेश**	**सन्धि**
मनर् + रथः	मन् + उ + रथ	मनोरथः
बालार् + रोदति	बाल् + उ + रोदति	बालोरोदति
रामर् + राज	राम + उ + राज	रामोराज
देवर् + राक्षसः	देव + उ + राक्षसः	देवोराक्षसः
राधवर् + रामः	राधव + उ + राम	राधवो रामः
काकर् + रौति	काक + उ + रौति	काकोरौति
भूयर् + रमते	भूय + उ + रमते	भूयोरमते
ईश्वर् + रमते	ईश्वर + उ + रमते	ईश्वरोरमते
कृष्णर् + रक्षति	कृष्ण + उ + रक्षति	कृष्णो रक्षति
धर्मर् + रक्षति	धर्म + उ + रक्षिति	धर्मो रक्षति
देवर् + राजते	देव + उ + राजते	देवो राजते

अभी तक आपने स् को रूत्व किया। अब उसका लोप करने का विधान किया जा रहा है। इसके लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हो रहा है -

सुलोप विधायक विधि सूत्र

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरञ्समासे हलि 6 । 1 । 132।।

अककारयो रेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्
समासे। एष विष्णुः । स शम्भुः । अकोः किम् ?
एषको रूद्रः अनञ् समासे किम् ? असः शिवः ।
हलि किम् ? एषोऽत्र।

अर्थः- हल् वर्ण के परे रहने पर एतद् और तद् शब्द के बाद आने वाले सु प्रत्यय का लोप हो जाता है किन्तु उन शब्दों में अकच् प्रत्यय न हुआ हो तो।

अकच् प्रत्यय करने वाला सूत्र है - अव्यय सर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः । इस सूत्र से एतद और तद् शब्दों में अकच् प्रत्यय होता है। एतद् और तद् शब्दों के बिना अकच् का रूप एष कृष्णः, स श्यामः है और एतद् और तद् शब्दों के अकच् प्रत्यय वाला रूप एषकः कृष्णः सकः श्यामः है। सु का लोप हल् प्रत्याहार के परे रहने पर ही होता है। जैसे कृष्ण का ककार हल् वर्ण परे है, और स श्याम में श्याम शकार हल् वर्ण परे है। यदि एतद और तद् शब्दों में नञ् समास हुआ हो तो स का लोप नहीं होगा। जेसे - न सः = असः, इसी प्रकार एतद् और तद् शब्दों अकच् प्रत्यय न हुआ हो और न´ समास न हुआ और हल् वर्ण परे हो तो एतद् और तद् के सु का लोप हो जाता है। एष + सु + विष्णुः इसमें सु यह प्रथमा विभक्ति के एक वचव वाला प्रत्यय है। सु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर एषस् + विष्णुः बना। यहाँ पर एष जो शब्द है वह एतद् शब्द का यहां नञ् समास भी नहीं है न

अकच् प्रत्यय भी है और स् के बाद हल् वर्ण परे है विष्णुः का वकार इसलिए इस सूत्र से स का लोप होकर एष विष्णुः प्रयोग सिद्ध होता है।

स शम्भुः सस् + शम्भूः यहाँ पर न अकच प्रत्यय है न नञ् समास है और सु के सकार के बाद शम्भू का शकार हल् वर्ण परे है। इसीलिए स का लोप होकर स शम्भुः प्रयोग सिद्ध होता है। अकोः किम् ? एषको रूद्रः । सूत्र में यदि अकोः अर्थात् अकच् प्रत्यय के ककार से रहित एतद् और तद् शब्द ऐसा अर्थ न करते तो एषको रूद्र में एषकस् सु का लोप हो जाता और एषक रूद्रः ऐसाअनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए इस सूत्र से स् का लोप न होकर ससजुषोरूः सूत्र से स् को रू होकर एषकरू + रूद्र बना। उकार की इत्संज्ञा तथा लोप होने के बाद एषक र् + रूद्रः बना। उसके बाद हशि च सूत्र से र को उत्व होकर एषक् + उ + रूद्रः बना। आद् गुण से गुण होकर एषको रूद्रः प्रयोग सिद्ध होता है।

अनञ् समासे किम् ? असः शिव: । सूत्र में यदि अनञ् समास न कहते तो अस् + स् + शिवः में दोष आ जाता क्योंकि तब सूत्र नञ् समास में भी लगता और अनञ् समास में भी लगता है। असः यहां पर नञ् समास है यहाँ पर भी सु का लोप होकर अस शिवः ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता है। इसलिए यहाँ पर नञ् समास होने के कारण सु को लोप न होकर सकार को रूत्व विसर्ग होकर असः शिवः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

हलि किम् ? एषोऽत्र । सूत्र में यदि हल् न कहते तो अच् परे होने पर भी स् का लोप हो जाता और एष अत्र तथा सवर्ण दीर्घ होकर एषात्र ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए हल् वर्ण परे न होने के कारण एष + स् + अत्र यहाँ पर एतत्तदोः सुलोपोऽ को रनञ् समासे हलि इस सूत्र से स का लोप न होकर एषस् + अत्र यही रहा। उसके बाद ससजुषोरूः सूत्र से सकार को रूत्व होकर एष रू + अत्र बना। उकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर एष् + र् + अत्र बना। यहाँ पर अतोरोरप्लुतादप्लुते सूत्र से र को उकार होकर एष + उ + अत्र बना। उसके बाद आद् गुणः सूत्र से अ + उ = ओ गुण होकर एष् + ओ + अत्र बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर एषो + अत्र बना। उसके बाद एङः पदान्तादति सूत्र से पूर्व रूप होकर एषोऽत्र प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार इस सूत्र का अन्य उदाहरण देखे -

विग्रह	**लोप आदेश**	**सन्धि**
एषस् + विष्णुः	एष + विः	एष विष्णुः
सस् + शिवः	स + शिवः	स शिवः
सस् + हशति	स + हशति	स हशति
एषस् + हसति	एष + हसति	एष हसति
सस् + रमते	स + रमते	स रमते
एषस् + रमते	एष + रमते	एष रमते
सस् + नमति	स + नमति	स नमति
एषस् + नमति	एष + नमति	उष नमति
सस् + घोषः	स + घोषः	स घोषः
एषस् + छादयति	एष + छादयति	एष छादयति
सस् + पठति	स + पठति	स पठति
एषस् + पठति	एष + पठति	एष पठति

सस् + लुनाति	स + लुनाति	स लुनाहि
सस् + ददाति	स + ददाति	स ददाति
एषस् + लुनाति	एष + लुनाति	एष लुनाहि
एषस् + ददाति	एष + ददाति	एष ददाति
सस् + चलति	स + चलति	स चलति
एषस् + करोति	एष + करोति	एष करोति
सस् + शेते	स + शेते	स + शेते
एषस् + शेते	एष + शेते	एष शेते
सस् + सर्पति	स + सर्पति	स सर्पति
एषस् + सर्पति	एष + सर्पति	एष सर्पति
सस् + धावति	स + धावति	स धावति
एषस् + धावति	एष + धावति	एष धावति
सस् + गच्छति	स + गच्छति	स गच्छति
एषस् + गच्छति	एष + गच्छति	एष गच्छति

सुलोप विधायक विधि सूत्र

सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् 3 । 1 । 134 ॥

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत।

सेमामविड्ढि प्रभूतिम् । सैष दाशरथी रामः ।

अर्थ:- यदि केवल लोप होने से ही पाद पुरा होता हो तो अच् प्रत्याहार के परे होने पर तद् शब्द के सु का लोप होता है। श्लोक आदि के एक विशेष भाग के छन्दः शास्त्र में पाद कहते है। उसी का यहाँ ग्रहण समझना चाहिए। उदाहरण यथा -

सेमाविड्ढि प्रभूतिम् (ऋग्वेद 2. 249) यह ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के चौबीसवें सूक्त का प्रथम मन्त्र है। यहां वैदिक जगती छन्द है। वैदिक छन्द के प्रत्येक पाद में बारह अक्षर होते है। सेमामविड्ढ़ि प्रभूति य ईशिषे यह जगती छन्द का एक पाद है। इस में सस् + इमाम् में सु वाले सकार का लोप होकर स इमाम् अर्थात् बारह अक्षर वाला बनता है। यदि लोप नहीं हुआ होता तो स् को रूत्व अर्थात् उ 'डकोय,य को लोप करने पर स इमामविडढि बनता है त्रिपादी होने के कारण यकार का लोप असिद्ध होगा तो स इमाविड्ढि प्रभूति य इशिषे ऐसा बनेगा। अब पाद में बारह अक्षर होने चाहिए थे, तेरह अक्षर हो गये। इस तरह से छन्दों भंग हुआ। यदि सोऽचि लोपेचेत्पादपूरणम् से सकार का लोप करते है तो स + इमा में गुण हो जायेगा, क्योंकि यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी का है। इसके द्वारा सु का लोप होकर पर आद्गुणः की दृष्टि में असिद्ध नहीं होगा। स + इ में दो अक्षरों से एक ही अक्षर (आद्गुणः से गुण होकर) 'से' बनेगा। जिससे पाद में बाहर अक्षर ही रह जायेंगे। इसी तरह पाद की पूर्ति होकर छन्दः ठीक से बैठेगा। अतः सु का लोप इस सूत्र में से हो जाता है, फलतः सेमामविड्ढि प्रभूतिं य इशिषे सिद्ध हो जाता है। यह वैदिक मन्त्र का उदाहरण है। लौकिक मन्त्र का उदाहरण आगे देखिये '-

सैष दाशरथी रामः यह अनुष्टुप-छन्द का एक चरण अर्थात् पाद है। इस छन्द के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते है। सस् + एष दशरथी रामः में सु वाले स् का लोप होने पर आठ अक्षर बनते है और यदि लोप नहीं हुआ तो सकार को रूत्व यत्व करके यकार का लोप करके स + एष

दशरथी रामः बनता है। त्रिपादी होने के कारण यकार का लोप असिद्ध होगा तो सः एष में वृद्धि रेचि च सूत्र से वृद्धि भी नहीं हो सकेगी। अतः स एष दाशरथी रामः ऐसा बनेगा। अब पाद में आठ अक्षर होने चाहिए थे, किन्तु नव अक्षर हो गये। यह छन्दोभंग हो गया। यदि इस सूत्र से सकार का लोप करते है तो एष में वृद्धि हो जायेगी, क्योंकि यह सूत्र सपादसप्ताध्यायी का है। सोऽचि लोपे चेत्पादपुरणम् सूत्र के द्वारा सू का लोप होने पर वृद्धिरेचि के दृष्टि में असिद्ध नहीं होगा। स + एष यहां पर स में अ + एष में ए अर्थात् अ + ए इन दोनों वर्णो के स्थान पर वृद्धि ऐ होकर स् ऐ + ष = सैष बनेगा। जिससे पाद में आठ ही अक्षर रह जायेंगे। पाद की पूर्ति होगी अर्थात् छन्दोभंग नहीं होगा। अतः सु का लोप इस सूत्र से हो जाता है। फलतः सैष दाशरथी रामः प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

सैष दशरथी रामः, यह लौकिक श्लोक का उदाहरण है। इससे सम्बन्धित एक श्लोक प्रसिद्ध है। जिसमें चारों पादों में इस सूत्र के उदाहरण मिलते है -

सैष दाशरथी रामः, सैष राजा युधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबलः ।।

अर्थ - ये वे भगवान दशरथ पुत्र श्रीराम है, ये वे राजा युधिष्ठिर है, ये वे महादानी कर्ण है और ये वे महाबली भीम है। जहाँ लोप करके नहीं अपितु अन्य किसी कारण से पाद पूर्ति हो जाती है वहां पर सोऽचि लोपेचेत्पादपुरणम् सूत्र से सु का लोप नहीं होता है। जैसे - सोऽहमाजन्मशुद्धानाम् भी अनुष्टुप-छन्द का चरण है। यहाँ पर सु का लोप करते है तो स अह् का अ तथा स का अ अर्थात् अ + अ = आ, सोहमाजन्मशुद्धानाम वन जाता है। ऐसा बनने पर छन्दोभंग तो नहीं हो रहा है किन्तु सोऽचि लोपे चेत्पादपुरणम् से सु का लोप न करने पर भी स को रूत्व करके अतोरोरप्लुताप्लुते सूत्र से उत्व होकर स + उ बना। तथा अ + उ मिलकर ओ गुण हो जाता है। स् + ओ बना। स् में ओ मिलकर सो अहम बना। उसके बाद एङः पदान्तादति से पूर्वरूप एकादेश होकर पादपूर्ति होती है, सोऽहमाजन्मशुद्धानाम् बनता है, एक चरण में आठ अक्षर होने चाहिए, आठ ही अक्षर बनते है और छन्दोभंग भी नहीं होता है। अतः अन्य कारणों से पदापूर्ति हो रही है इसलिए सोऽचिलोपे चेत्पादपुरणम् से सु का लोप नहीं होता।

3.4 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आप विसर्ग सन्धि के विषय में भली-भांति परिचित होंगे। हल् सन्धि में अनेक सन्धियाँ है। उन सन्धियों में से कुछ सन्धियों का वर्णन इस इकाई में की गयी है। जैसे शितुँक् सूत्र से तुँक् का आगम कहाँ होता है। इसका वर्णन भाली भांति की गयी है। इसी प्रकार ङमुडागम्, सुडागम, मकार को रू आदेश, रू को अनुनासिक, अनुस्वार, र को विसर्ग सम्, पुम् तथा कान् के स्थान में विसर्ग को स् आदेश नकार को रू, विसर्ग को स् आम्रेडित संज्ञा कान् के नकार को रू आदेश तुगाम् ये आगम तथा आदेश अनेक प्रकार के शब्द इस इकाई में पढ़े गये है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि विसर्ग सन्धि किये कहते है विसर्ग सन्धि का चिन्ह क्या होता है। इन सबका वर्णन मुख्य रूप से इस इकाई में की गयी है। विसर्ग सन्धि में प्रायः विसर्गो की ही सन्धियाँ की गयी है। जिस प्रकार विष्णुः + त्राता है यहां पर विसर्ग

के स्थान पर विसर्जनीयस्य सः इस सूत्र से सकार होकर विष्णुस् + त्राता बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णुस्त्राता प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे ही प्रायः इस सन्धि में प्रयोग देखे जाते है

3.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
विष्णुस्त्राता	विष्णु का रक्षक है
हरिः शेतेभगवान	हरि शयन करते है
शिवोऽर्च्यः	शिव पूजनीय है
शिवो वन्द्यः	शिव वन्दनीय है
भो देवा	हे देवताओं
भगो नमस्ते	भगवान आप को नमस्कार है
अद्यो याहि	हे पापी चले जाओ
अहरः	प्रतिदिन
अहर्गणः	दिनों का समूह
पुना रमते	पुनः रमण करता है
हरी रम्यः	हरि सुन्दर है।
शम्भूराजते	शिव जी शोभित होते है
मनोरथः	मन की इच्छा अभिलाषा
एष विष्णुः	ये विष्णु है।
स शम्भूः	वे शम्भू है।
सैषदाशरथी रामः	ये वे भगवान दशरथ पुत्र श्री राम है।
जीवात्मा	अच्छा गणितज्ञ
सन्नच्युतः	अच्युत भगवान सत्स्वरूप है।
पुँस्कोकिलः	नर कोयल
चक्रिँस्त्रायस्व	हे चक्रधारी ? तुम रक्षा करो
हन्ति	मारता है
काँस्कान	किसको किसको
शिवच्छाया	शिव की छाया
लक्ष्मीच्छाया	लक्ष्मी की छाया

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघु-उत्तरीय प्रश्न

1. सकार आदेश विधायक सूत्र कौन है ? (विसर्जनीयस्य सः)
2. रूत्व विधायक सूत्र कौन है? (स-सजुषोरूः)
3. रू सम्बन्धि र् के स्थान पर उत्व करता है? (अतो रोप्लुतादप्लुते)
4. उत्व विधायक विधि सूत्र कौन सा है? (हाशि च)
5. यादेश विधायक सूत्र कौन है? (भोभगो अद्योअपूर्वस्य योऽशि)
6. अहन् के नकार के स्थान किस सूत्र से रेफ आदेश होता है? (रोऽसुपि)

7. पुनारमते किस सूत्र का उदाहरण है? (ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः)

8. हल् वर्ण के परे होने पर एतद् और तद् शब्द के सु को क्या होता है? (लोप)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. खर प्रत्याहार पर में हो तो विसर्ग के स्थान पर होता है:-
   (क) क् (ख) ह् (ग) स् (घ) न् (ग)
2. प्लुत भिन्न ह्रस्व अकार से परे रू सम्बन्धी रेफ होता है:-
   (क) अकार (ख) उकार (ग) इकार (घ) लृकार (ख)
3. ह्रस्व अकार से परे रू सम्बन्धि र् के स्थान पर होता है:-
   (क) अकार (ख) उकार (ग) एकार (घ) औकार (ख)
4. हलिसर्वेषाम् सूत्र का उदाहरण है:-
   (क) भो देवा (ख) रामःशेते (ग) देवा इह (घ) देवायिह (क)
5. रेफ के परे होने पर रेफ का लोप होता है '-
   (क) रोऽसुपि (ख) हलिसर्वेषाम् (ग) रोरि (घ) आद्गुण (ग)
6. यदि लोप होने पर पाद की पूर्ति हो जाये तो सु का होता है:-
   (क) लोप (ख) विसर्ग (ग) रूत्व (घ) यत्व (क)

3.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1- लघुसिद्धान्त कौमुदी, वरदराजाचार्य, चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

2-वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित, प्रकाशक, शारदा निकेतन, वी, कस्तुरवानगर, सिगरा वाराणसी

3- महाभाष्यम्, पतंजलि, चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- लघुसिद्धान्त कौमुदी, वरदराजाचार्य, चौखम्भा वाराणसी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् सूत्र का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ?
2. पदान्ताद्वा सूत्र का उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ?

इकाई-4 धातु रूप परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 धातु स्वरूप एवं परिचय
4.3.1 लट्लकार
4.3.2 लिट् लकार
4.3.3 लुट् लकार
4.3.4 लृट् लकार
4.3.5 लोट् लकार
4.3.6 लङ् लकार
4.3.7 लिङ् लकार
4.3.8 आशी र्लिङ् लकार
4.3.9 लुङ् लकार
4.3.10 लृङ्लकार
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.8 सहायक सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

संस्कृत व्याकरण से सम्बन्धित तृतीय खण्ड की यह चतुर्थ इकाई है। इस इकाई में हम धातु रूपों के बारे में अध्ययन करेंगे। व्याकरणशास्त्र के महत्त्व को जानते हुए व्याकरण शास्त्र के धातुओं का वाक्य में प्रयोग किया गया है । प्रत्येक वाक्य में क्रिया का मुख्य स्थान होता है । क्रिया के बिना कोई वाक्य पूरा नहीं होता है । सभी पदों का मूल धातु ही होती है । परन्तु सम्भाषण में मूलधातुओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता अपितु सम्भाषण के लिए मूलधातुओं से निर्मित पदों का प्रयोग होता है ।

अतः धातुओं का विस्तृत ज्ञान हम इस अध्याय में प्राप्त करेंगे । व्याकरणशास्त्र के प्रणेताओं ने बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से धातु रूप के बारे में चर्चा की है, कि धातु रूप क्यों पढ़ा लिखा जाता है, तथा धातु रूप की रचना क्यों होती है, प्रस्तुत इकाई में विस्तार से उक्त विषय की चर्चा की गयी है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

- धातुरूप का ज्ञान प्राप्त करेंगे ।
- लकार क्या है , इसकी विशेषता क्या है, इस विषय को बता सकेंगे ।
- वाक्य निर्माण की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- विभक्ति क्या है, इसकी विशेषता क्या है इसे बता सकेंगे।
- वर्तमान काल क्या है, इसकी विशेषता बता सकेंगे ।
- भूत काल क्या है , इसकी विशेषता बता सकेंगे ।
- भविष्य काल क्या है,इसकी विशेषता बता सकेगे ।

4.3 धातु स्वरूप एवं परिचय

क्रिया के मूल रूप को धातु कहते है। दूसरे शब्दों में – धातु क्रियापद के उस अंश को कहते है, जो किसी क्रिया प्रायः सभी रूपों में पाया जाता है। तात्पर्य यह कि जिन मूल अक्षरों से क्रियाएँ बनती है, उन्हें धातु कहते है। पठ्, नम्, खाद्, लिख् आदि।

सभी पदों का मूल ही धातु होती है, यथा – पाठक पाठ को पढ़ता है । इन तीनों ही पदों में 'पठ्' धातु है ।) धातुओं से कालादि के भेद से दस प्रकार के लकार (लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्लृङ् च) होते हैं । सम्भाषण के लिए ये सभी लकार आवश्यक हैं । यहाँ हम उक्त लकारों के विषय में पढेंगे ।

अब सर्वप्रथम काल के बारे में जानना चाहिए। काल तीन प्रकार के होते है। भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों कालों में से वर्तमान काल का वर्णन हो रहा है ।

4.3.1 लट्लकार

वर्तमाने लट् 3/2/123।। वर्तमान क्रिया वृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् ।

वर्तमान काल की क्रिया के वाचक धातु से लट् लकार होता है। वर्तमान काल किसे कहते हैं ? जिस प्रथम क्षण से आरम्भ होकर कोई कार्य जिस अन्तिम क्षण में समाप्त होता है, इस काल का वर्तमान काल कहते हैं यथा- राम गांव जाता है (रामः ग्रामं गच्छति) राम ग्राम चलना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु जबतक पहुँच नहीं जाता है चाहे एक दिन में पहुँचे या एक महीना में , उस समग्र काल को वर्तमान काल कहते है।

पठ् धातु के लट् लकार में रूप

पुरुषाः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथम पुरुष	सः/ सा **पठति** (वह पढ़ता है / वह पढ़ रहा है अथवा वह पढ़ती है /वह पढ़ रही है	तौ/ ते **पठतः** वे दोनों /वे दोनों पढ़ते है) पढ़ रहे हैं अथवा वे दोनों पढ़ती हैंवे दोनों पढ़ रही / (हैं	ते/ ताः **पठन्ति** वे सब /वे सब पढ़ते हैं) पढ़ रहे हैं अथवा वे सब पढ़ती हैं वे/सब पढ़ रही हैं(
मध्यमः पुरुषः	त्वं **पठसि** तुम पढ़ /तुम पढ़ते हो) रहे हो अथवा तुम पढ़ती (तुम पढ़ रही हो /हो	युवां **पठथः** तुम /तुम दोनों पढ़ते हो) दोनों पढ़ रहे हो अथवा तुम /तुम दोनों पढ़ती हो (दोनों पढ़ रही हो	यूयं **पठथ** तुम /तुम सब पढ़ते हो) अथवा सब पढ़ रहे हो तुम सबपढ़ती होतुम / (सब पढ़ रही हो
उत्तमः पुरुषः	अहं **पठामि** मैं पढ़ रहा / मैं पढ़ता हूँ) मैं / हूँ अथवा मैं पढ़ती हूँ (पढ़ रही हूँ	आवां **पठावः** हम / हम दोनों पढ़ते हैं) दोनों पढ़ रहे हैं अथवा हम हम दोनों /दोनों पढ़ती हैं (पढ़ रही हैं	वयं **पठामः** हम /पढ़ते हैं हम सब) सबपढ़ रहे हैं अथवा हम सब पढ़ती हैंहम सब / (पढ़ रही हैं

इसी प्रकार भू धातु , वर्तमान काल का रूप भी चलेंगे।

भू सत्तायाम् (होना)

पुरूष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरूष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरूष	भवामि	भवावः	भवामः

अस् भवि होना अर्थ में प्रयोग होता है।

पुरूष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरूष	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरूष	अस्मि	स्वः	स्मः

डुकृञ् (कृ) धातु

पुरूष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	करोति	कुरूतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरूष	करोसि	कुरूतः	करूथ
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

अनुवाद बनाने के लिए सबसे पहले पुरूष का ज्ञान किया जाता है ये वाक्य प्रथम पुरूष का है कि मध्यम पुरूष या उत्तम पुरूष का है।

प्रथमपुरूष—

जहाँ पर वह, वे दोनों, वे लोग का प्रयोग हुआ हो वहाँ पर प्रथम पुरूष का प्रयोग किया जाता है। यदि कर्ता एकवचन है तो क्रिया एकवचन या कर्ता बहुवचन है तो क्रिया भी बहुवचन रहेगा। **उदाहरण- सः पुस्तकं पठति** यहाँ पर कर्ता "स"? (वह) है। क्रिया पढ़ना है। कर्म पुस्तक है। अतः कर्ता एक वचन है इस लिए क्रिया एकवचन का प्रयोग किया गया है।

मूलधातु	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
लिख् = लिखना	बालः लिखति	बालौ लिखतः	बालाः लिखन्ति
नृत् = नाचना	सा नृत्यति	ते नृत्यतः	ताः नृत्यन्ति
क्रीड् = खेलना	बालिका क्रीडति	बालिके क्रीडतः	बालिकाः क्रीडन्ति
स्मृ = स्मरण करना	माता स्मरति	मातरौ स्मरतः	मातरः स्मरन्ति
भ्रम् = भ्रमण करना	पिता भ्रमति	पितरौ भ्रमतः	पितरः भ्रमन्ति
दा = देना	विक्रेता यच्छति	विक्रेतारौ यच्छतः	विक्रेतारः यच्छन्ति
वद् = बोलना	भवान् वदति	भवन्तौ वदतः	भवन्तः वदन्ति
पा = पीना	भवती पिबति	भवत्यौ पिबतः	भवत्यः पिबन्ति

मध्यम पुरूष—

मध्यम पुरूष का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पर तुम, तुम दोनों, तुम लोग का प्रयोग किया गया है। यथा त्वं भवसि (तुम हो रहे हो) यहाँ पर कर्ता 'त्वं' है। और क्रिया भवसि है और वर्तमान काल एकवचन है इस लिए मध्यम पुरूष का प्रयोग वहाँ पर किया जाता है जहाँ हम, हम दोनों, हम लोग का प्रयोग किया गया हो। **उदाहरण**- अहम् अस्मि (मैं हूँ) यहाँ पर कर्ता 'मैं' और क्रिया 'अस्मि (हूं) है। अतः वर्तमान काल के एक वचन का प्रयोग किया गया है।

मूलधातवः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
रक्ष् = रक्षा करना	त्वं रक्षसि	युवां रक्षथः	यूयं रक्षथ
वस् = रहना	त्वं वससि	युवां वसथः	यूयं वसथ
पत् = गिरना	त्वं पतसि	युवां पतथः	यूयं पतथ
स्पृश् = स्पर्श करना	त्वं स्पृशसि	युवां स्पृशथः	यूयं स्पृशथ
तॄ = तैरना	त्वं तरसि	युवां तरथः	यूयं तरथ
नी = लेकर जाना	त्वं नयसि	युवां नयथः	यूयं नयथ

दृश् = देखना	त्वं पश्यसि	युवां पश्यथः	यूयं पश्यथ
कुप् = क्रोध करना	त्वं कुप्यसि	युवां कुप्यथः	यूयं कुप्यथ
चुर् = चुराना	त्वं चोरयसि	युवां चोरयथः	यूयं चोरयथ
श्रु = सुनना	त्वं शृणोषि	युवां शृणुथः	यूयं शृणुथ

उत्तम पुरूष—

उत्तम पुरूष का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ पर हम, हम दोनों, हम लोग का प्रयोग किया गया है। यथा अहं भवामि (हम हो रहे है) यहाँ पर कर्ता 'अहम्' है और क्रिया भवामि है और वर्तमान काल एकवचन है इसलिए उत्तम पुरूष का प्रयोग यहाँ पर किया गया है।

मूलधातु	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
हस् हँसना =	अहं हसामि	आवां हसावः	वयं हसामः
गम् जाना =	अहं गच्छामि	आवां गच्छावः	वयं गच्छामः
नम् नमस्कार करना =	अहं नमामि	आवां नमावः	वयं नमामः
खाद् खाना =	अहं खादामि	आवां खादावः	वयं खादामः
मिल् मिलना =	अहं मिलामि	आवां मिलावः	वयं मिलामः
धृ धारण करना =	अहं धरामि	आवां धरावः	वयं धरामः
प्रच्छ् पूछना =	अहं पृच्छामि	आवां पृच्छावः	वयं पृच्छामः
चिन्त् सोचना =	अहं चिन्तयामि	आवां चिन्तयावः	वयं चिन्तयामः
क्षल् धोना =	अहं प्रक्षालयामि	आवां प्रक्षालयावः	वयं प्रक्षालयामः
पूज् पूजा करना=	अहं पूजयामि	आवां पूजयावः	वयं पूजयामः
कृ करना =	अहं करोमि	आवां कुर्वः	वयं कुर्मः
आप् करना =	अहं प्राप्नोमि	आवां प्राप्नुवः	वयं प्राप्नुमः
स्था उठना =	अहम् उत्तिष्ठामि	आवाम् उत्तिष्ठावः	वयम् उत्तिष्ठामः

अभ्यास प्रश्न 1

(1) बहुविकल्पात्मक

1. लकार कितने होते हैं-

अ. दश ब. पाँच स. तीन द. सात

2. पुरूष कितने होते हैं

अ. पाँच ब. तीन स. दो द. एक

3. रामः शेते (राम सोता है) सकर्मक है कि अकर्मक है -

अ. सकर्मक ब. अकर्मक स. दोनों द. दोनों नही

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. हम लोग विद्यालय में होते हैं।

2. वे दोनों कहाँ होते हैं।

3. तुम लोग उन कार्यो को करते हो ।
4. हम लोग उन कार्यो को करते हैं।
5. हम लोग हैं।

4.3.2 लिट् लकार

अब लिट् लकार का प्रयोग कहा किया जाय, इसके लिए सर्वप्रथम लिट् लकार का अर्थ सुत्र के द्वारा प्रतिपादन किया जा रहा है।

परोक्षे लिट् 3 /2 /115 ।। भूताऽनद्यतन परोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्।

अनद्यतन परोक्ष भूत अर्थ में स्थित धातु से लिट् लकार होता है। अद्य भवम् अद्यतनम् जो आज का हो उसे अद्यतन कहते है। न अद्यतनम् अनद्यतनम् आज न होने वाले को अनद्यतन कहते हैं। लिट् लकार का ऐसे में प्रयोग किया जाता है जो आज का न हो। **देवदत्त ने आज प्रातः भोजन किया**- यहाँ भूतकाल तो है पर वह भूतकाल आज का होने से अद्यतन है, अनद्यतन नहीं हैं अतः इसमें लिट् लकार का प्रयोग नहीं होगा। सामान्य बात यह है कि वक्ता से जो परोक्ष (अक्ष्णः परम् इति परोक्षम्) अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों के ज्ञान से दूर हो उसे परोक्ष कहते हैं, फिर चाहे वह अतीत में कभी हुआ हो।

भूतकाल की क्रिया को प्रगट करने के लिए व्याकरणशास्त्र में लङ्, लिट, और लृङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा - हुआ था, रहा था, किया था के लिए। यथा पपाठ (उसने पढ़ा) श्रीकृष्ण: कंसं जघान (श्री कृष्ण ने कंस को मारा)।

यदि भूत काल का सूचक वाक्य में आज का प्रयोग हुआ हो तो लुङ् लकार का प्रयोग होता है, यथा अद्य दशरथः राजा अभूत् (आज दशरथ राजा हुआ)।

परोक्ष भूत काल में (इन्द्रिय से अगोचर होने पर) लिट् लकार का प्रयोग होता है, यथा नारद उवाच (नारद मुनि बोले) किन्तु उत्तम पुरूष में लिट् लकार का प्रयोग नहीं होता है। यथा अहं वनं जगाम (मैं जंगल गया) यह प्रयोग ठिक नहीं है।

भूतकाल में प्रश्न बोधक जहाँ वाक्य होगा, वहाँ पर बोधक कराने के लिए लङ् और लिट् लकार को बोध होता है यथा अभाषत किम् ? जगाम किम ? (गया क्या ?)

किन्तु विप्रकृष्ट भूतकाल में (जो देर से बीत चुका) उसको बोध कराने के लिए लिट् लकार का प्रयोग किया जाता हैं यथा कंस: जघान किम्? (कंस को मारा क्या) लिट् लकार का रूप एवं **वाक्यादि उदाहरण -**

भू धातु लिट् लकार-

बभूव	बभूवतुः	बभूवु:
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

अस् धातु लिट् लकार-

अस् धातु को लिट् या जितने आर्धधातुक लकार हैं उनके स्थान में भू आदेश होता है।

बभूव	बभूवतुः	बभूवु:
बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
बभूव	बभूविव	बभूविम

डुकृञ् (कृ) धातु लिट् लकार-

चकार	चक्रतुः	चक्रुः
चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
चकारचकर-	चकृव	चकृम

वाक्य में प्रयोग

अयोध्यायाः नृपः रामः बभूव। अयोध्या के राजा राम थे।

दशरथस्य चत्वारः पुत्राः बभूवुः। दशरथ के चार पुत्र हुए।

दुष्यन्तः कार्य चकार। दुष्यन्त ने कार्य किया था।

रामः कार्याणि चकार। राम ने कार्यों को किये।

वानराः लंकायां कार्याणि चक्रुः। वानरों ने लंका में कार्यों को किया।

लवकुशौ कार्यं चक्रतुः। लव कुश ने कार्य किया।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातुः लिट् लकारे मध्यम पुरूषस्य एक वचनस्य रूपमस्ति-

अ. बभूविथ ब. बभूवथुः स. बभूव द. बभूविम

2. अस्धातोः लिट् लकारे उत्तमपुरूषस्य एकवचनस्य रूपस्ति-

अ. बभूव ब. बभूविथ स. बभूविव द. बभूविम

3. कृ धातोः प्रथम पुरूषबहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. चकार ब. चक्रतुः स. चकृव द. चक्रुः

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. सीता के पति राम थे।
2. राम ने लंका में अनेक कार्य किये।
3. रावण ने सीता को चुराया।
4. राम ने रावण को मारा।
5. शकुन्तला के पुत्र भरत हुए।

4.3.3 लुट् लकार

अनद्यतने लुट् 3/3/15 ।। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात्।

अनद्यतन भविष्यति क्रिया में वर्तमान धातु से लुट्लकार होता है। हिन्दी में जहाँ पर गा, गे, गी का प्रयोग होता है वहाँ पर भविष्यत् काल में लृट् लकार का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि लुट् तथा लृट् इन दोनों ही लकारों से भविष्यत् काल का बोध होता है। फिर भी इन दोनों लकारों में भेद है कि दूरवर्ती भविष्यत् के बोध के लिए लुट् लकार का प्रयोग होता है और समीप वर्ती भविष्य के लृट्लकार का प्रयोग होता है।

रूप एवं वाक्यादि उदाहरण-

भू धातु लुट्लकार

भविता	भवितारौ	भवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ

भवितामि	भवितस्वः	भवितास्मः

अस् धातु के रूप को लृट् लकार में भू आदेश होता है।

भविता	भवितारौ	भवितारः
भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थः
भवितामि	भवितस्वः	भवितास्मः

डुकृञ् (कृ) धातु

कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
कर्तासि	कर्तास्थः	कर्तास्थ
कर्तास्मि	कर्तास्वः	कर्तास्मः

रमेशः स्व विद्यालये भविता। रमेश कल विद्यालय में होगा।

युवां स्व विद्यालये भवितास्थः। तुम दोनों कल विद्यालय होंगे

ते स्व विद्यालये भवितारः। वे लोग कल विद्यालय में होगें।

यूयं स्व कार्य कर्तास्थ। तुम लोग कल कार्य करोगें।

आवां स्व कर्तास्वः। हम लोग घर में कार्य करेंगे।

युवां कदा कर्तास्वः। हम दोनों कब करोगे।

युवां कदा कर्तास्थः। तुम दोनों कब करोगे।

यूयं अग्रिमे मासे भवितास्थ। तुम लोग अगले महीने में होगें।

अभ्यास प्रश्न 3

---

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः प्रथम पुरूष एक वचने रूपमस्ति-

अ. भविता ब. भवितारौ स. भवतिस्म द. भवितारः

2. अस् धातोः प्रथम पुरूष एकवचने रूपमस्ति

अ. भवितास्मि ब. भतितास्वः स. भविता द. भवितास्मः

3. कृ धातोः उत्तमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. कर्ता ब. कर्तारौ स. कर्तास्मः द. कर्तारः

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये।

1. दो दिन बाद मैं घर के कार्यों को करूगा।
2. पाच छः दिनों मैं वहा जऊगाँ।
3. तुम लोग कल घर जाओगे।
4. तुम दोनों परसों विद्यालय में होगे।
5. वे लोग कल में होगे।
6. तुम लोग कल घर के कार्य करोगे।
7. कल दो बालक घर के कार्य करोगे।

4.3.4 लृट् लकार

लृट् शेषे च ।। भविष्यतदर्थाद् धातो लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां च।

भविष्यत् अर्थ में धातु से लृट् लकार का प्रयोग होता है। क्रियार्थ चाहे विद्यमान हो या न हो। लृटलकार में बताया गया है कि जहाँ पर गा,गे,गी, रहेगा वहाँ पर लृट् लकार किन्तु जहाँ पर समीपवर्ती भविष्य रहेगा, वहाँ पर लृट् लकार का प्रयोग किया जा रहा है-

भू धातु

भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः
अस् धातु भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यामः
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यथ

डुकृञ् (कृ) धातु

करिष्यति	**करिष्यतः**	**करिष्यन्ति**
करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

तव मातु: दौ पुत्रौ भविष्यतः। (तुम्हारे माता को दो पुत्र होंगे)

ते भविष्यन्ति। वे लोग होगें।

त्वं भविष्यसि। तुम होगे।

युवां वने भविष्यथ। (तुम दोनों विद्यालय में जाकर होंगे)

यूयं वने भविष्यथ। तुम लोग वन में होंगे।

अहं मन्दिरे भविष्यामि। मैं मन्दिर में होऊगाँ।

आवां चिकित्सालये भविष्यावः। हम दोनों चिकित्सालय में होगें।

वयं सर्वे गृहे भविष्यामः। हम सभी लोग घर में होगें।

ते धर्मस्य निर्माणं करिष्यन्ति। वे लोग धर्म का निर्माण करेंगे।

तौ ग्रन्थस्य निर्माणं करिष्यतः। वे दोनों ग्रन्थ का निर्माण करेंगे।

ते सर्वे विद्यालयस्य कार्य करिष्यन्ति। वे सभी विद्यालय का कार्य करेंगे।

त्वं गृह गमिष्यसि। तु घर जाओगे।

युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः तुम दोनों विद्यालय का कार्य करोगे।

युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः। तुम लोग गृह कार्य करोगे।

अहं विद्यालयस्य कार्य करिष्यामि। मै विद्यालय का कार्य करूगा।

आवां गृहस्य कार्यं करिष्यावः हम दोनों गृह कार्य करेंगे।

वयं विद्यालयस्य कार्याणि करिष्यामः। हम सभी विद्यालय के कार्यों को करेंगे।

अभ्यास प्रश्न. 4

1. बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः लृट्लकारस्य प्रथमपुरूष बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. भविष्यति ब. भविष्यन्ति स. भविष्यतः द. भविष्यामि

2. अस् धातोः मध्यम पुरूष एकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. भविष्यसि ब. भविष्यामि स. भविष्यतः द. भविष्यन्ति

3. कृ धातोः लृट् लकारस्य उत्तमपुरूष बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. करिष्यामि ब. करिष्यामः स. करिष्यन्ति द. करिष्यसि

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. तुम लोग घर में होगे।
2. तुम विद्यालय में होगे।
3. तुम घर का कार्य करोगे।
4. तुम दोनों विद्यालय का कार्य करोगे।
5. हम सभी पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ेगें।
6. रमा कार्य नहीं करेगी।
7. लड़कियॉ घर का कार्य करेगी।
8. वे दोनों बालिका वन में जायेगीं।
9. हम दोनों घर में भोजन करेंगे।

4.3.5 लोट्लकार

लोट् च 3/3/162

विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् स्यात् । विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है। अनुमति, निमन्त्रण, आमन्त्रण , अनुरोध, जिज्ञासा और सामर्थ्य अर्थ में लोट्लकार का प्रयोग होता है , यथा- अनुमति अर्थ में - अद्य भवान् अत्र पाठयतु। (आज आप यहाँ पढ़ाइये।)
आमन्त्रण अर्थ में- विद्यालयेऽस्मिन यथेच्छ पठ। (इस विद्यालय में इच्छानुसार पढ़ सकते हो) माम् अस्याः विपदः रक्षतु भवान् (आप इस विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिए) आशीर्वाद अर्थ में मध्यम तथा अन्य पुरूष में लोट्लकार का प्रयोग किया जाता है, यथा - गच्छ विजयी भव (जाओ विजय प्राप्त करो), पन्थानः सन्तु ते शिवा (तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी होवे) 'प्रश्न और सामर्थ्यो 'आदि का बोध होने पर उत्तम पुरूष में लोट्लकार का प्रयोग होता है, यथा- किं करवाणि ते प्रियं देवि। देवि तेरे लिए मैं क्या करूँ। अहं सिन्धुमपि शोषयाणि। मैं समुद्र भी सुखा सकता हूँ।

भू धातु लोट् लकार

भवतु	भवताम्	भवन्तु
भव	भवतम्	भवत्
भवानि	भवाव	भवाम

अस् धातु लोट् लकार

अस्तु	स्ताम्	सन्तु
एधि	स्तम्	स्त
आसानि	आसाव	आसाम

डुकृञ् (कृ) धातु लोट् लकार

करोतु	करूताम्	कुर्वन्तु

कुरू	कुरूतम्	करूत
करवाणि	करवाव	करवाम

ते श्रमशीलाः भवन्तु। वे लोग श्रमशील होंवे।
मेघाः जलदाः भवन्तु। मेघजल देने वाले होंवे।
वयं सत्यवादिन: भवाम। हम लोग सत्यवादी होवें।
सः अस्तु। वह है।
तौ स्ताम्। तुम दोनों हो
मंगलानि सन्तु। मंगल होंवे।
यूयं विद्यालये स्त। तुम सब विद्यालय में होवे।
सः विद्यालयस्य कार्यं करोतु। वह विद्यालय का कार्य करे।
महेशः विद्यालये पाठं स्मरणं करोतु। महेश विद्यालय में पाठस्मरण करे।
तौ विद्यालये ग्रन्थस्य निर्माणं कुरूताम्। वे दोनों विद्यालय में ग्रन्थ का निर्माण करें।
अहं विद्यालयं गत्वा किं करवाणि। मै विद्यालय में जाकर क्या करूँ। वयं गृहं गत्वा किं करवाम। हम लोग घर में जाकर क्या करें। वयं रामायणष्य पाठं करवाम। हम लोग रामायण का पाठ करें

अभ्यास प्रश्न. 5

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातुः लोट्लकारस्य मध्यमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति

अ. भवतु ब. भवताम् स. भवत द. भवन्तु

2. अस् धातो लोट्लकारस्य प्रथम पुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. अस्तु ब. स्ताम् स. सन्तु द. एधि

3 कृ धातोः उत्तमपुरूष बहुवचने रूपमस्ति-

अ. करोतु ब. करवाणि स. करवाव द. करवाम

(2) संस्कृत में अनुवाद बनाइये।

1. वे लड़के अध्ययन शील होवे।
2. उन छात्रों को मंगल होवें।
3. उन लोगों का कल्याण हो।
4. वे सब घर का कार्य करें।
5. वे दोनों पाठ याद करें।
6. वे लोग ग्रन्थ का निर्माण करें।
7. मैं वहाँ जाकर क्या करूँ।
8. हम लोग वहा जाकर कार्य करें।

4.3.6 लङ् लकार

अनद्यतने लङ् 3/2/111।। अनद्यतन भूतार्थ वृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अनद्यतन भूतकाल में धातु से लङ् लकार का प्रयोग होता है। भूतकाल का सूचक वाक्य में यदि ह्य: (विता हुआ) का प्रयोग हो तो लङ् लकार का प्रयोग होता है। **यथा**- ह्य: वृष्टिरभवत्(कल वर्षा हुई थी)।

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

भू धातु लङ् लकार

अभवत्	अभवताम्	अभवन्
अभवः	अभवतम्	अभवत
अभवम्	अभवाव	अभवाम

अस् धातु लड् लङ् लकार-

आसीत्	आस्ताम	आसन्
आसीः	आस्तम्	आस्त
आसम्	आस्व	आस्म

डुकृञ् (कृ) धातु लङ् लकार

अकरोत्	अकरूताम्	अकुर्वन्
अकरो:	अकुरूतम्	अकरूत
अकरवम्	अकरवाव	अकरवाम

रमेशः वैज्ञानिकम् अभवत्। रमेश वैज्ञानिक हुआ।
तौ योग्यम् अभवताम्। वे दोनों योग्य हुए।
ते बालिकाः विदुषी अभवन्। वे लड़किया विदुषी हुई।
त्वं कुत्र अभवः? तुम कहाँ हुए ?
यूयम् अध्यापकाः अभवत। तुम लोग अध्यापक हुए।
आवां छात्रौः अभवाम्। हम दोनों छात्र हुए।
वयं गुरवः अभवाम्। हम लोग गुरू हुए।
महाराणाप्रतापः उदय सिंहस्य पुत्र आसीत्
महाराणाप्रतापः उदय सिंह के पुत्र थे।
महाराणाप्रतापः निर्भिकः दयालुश्च आसीत्।
महाराणाप्रताप निर्भिक और दयालु थे।
तौ कुत्र आस्ताम्। वे दोनों कहाँ थे।
तौ गृहे आस्ताम्। वे दोनों घर में थे।
ते भ्रमणार्थं कुत्र आसन ? वे लोग भ्रमण करने के लिए कहाँ थे
त्वं पठनार्थं कुत्र आसी ? तुम पढ़ने के लिए कहाँ था?
वयं वने मन्दिरस्य समीपे आस्म। हम लोग वन में मन्दिर के पास थे।
महाराणाप्रताप: भारतस्य स्वतन्त्रतायै महान्त प्रयत्नम् अकरोत्
महाराणाप्रताप भारत के स्वतन्त्रता के लिए महान प्रयत्न किये।
मुगल शासक: देहल्यां शाससनम् अकरोत्।
मुगल शासक देहली पर शासन किया।
इमां प्रतिज्ञामकरोत। इस प्रतिज्ञा को किया।
ते जनाः किम् अकुर्वन्। वे लोग क्या किये।
यूयं देहल्यां शासनम् अकुरूत। तुम लोग देहली पर शासन किये।

वयं तानि कार्याणि अकुर्म। हम लोग इन कार्यों को किये।

अभ्यास प्रश्न. 6

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. भू धातोः लङ् लकारस्य प्रथम पुरूष द्विवचनस्य रूपमस्ति

अ. अभवत् ब. अभवताम् स. अभवन् द. अभवः

2. अस् धातोः लङ् लकारस्य उत्तमपुरूषद्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. आसीत् ब. आस्व स. आस्तम् द. आस्म

3. कृ धातोः लङ् लकारस्य मध्यमपुरूष एकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. अकरोत् ब. अकुर्वन् स. अकरोः द. अकुरूत

(2) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. श्याम राजा हुआ।
2. वे लोग योग्य हुए।
3. तुम लोग कार्य करने में दक्ष हुए।
4. हम लोग कुशल अध्यापक हुए।
5. महाराणाप्रताप भारत की रक्षा के लिए अनेक प्रयास किये।
6. दिल्ली के मुगल शासकों के साथ युद्ध किये।
7. वे लोग कहाँ पर थे।

4.3.7 लिङ् लकार

विधिनिमन्त्रणाऽमन्त्रणाऽधीष्ट सम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् 3/3/161।।

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात्।

विधि निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट सम्प्रश्न और प्रार्थना इन अर्थो में धातु से परे लिङ् लकार होता है।

1. विधि - अपने से छोटे अर्थात् नौकर या सेवक आदि को आज्ञा या हुक्म देना विधि कहलाता है। कोई अपने नौकर से कहे-भवान् जलम् आनयेत् (आप जल लायें), वस्त्राणि भवान् प्रक्षालयेत् (आप वस्त्रों को धो दें) आदि विधि कहलाता है।

2. निमन्त्रण - अवश्य कर्तव्य प्रेरणा को "नियन्त्रण' कहते है। यथा इह भवान् भुंजीत्- (आप यहां खायें)

3.आमन्त्रण ऐसी प्रार्थना का नाम आमन्त्रण होता है जिसमें कामचारिता होती है। अर्थात् करना न करना अच्छा पर निर्भर होता है, इहासीत् भवान् (आप यहा बैठें) बैठना, न बैठना इच्छा पर निर्भर करता है। ऐसे आशीर्वाद अर्थ जहा पर होगा वहाँ पर लिङ् और लोट् दोनों लकारों का प्रयोग किया जाता है।

4. अधीष्ट-अधीष्टं नाम सत्कार पूर्वको व्यापार। किसी बड़े गुरू आदि को सत्कार पूर्वक किसी कार्य की करने की प्रेरणा देना अधीष्ट कहलाता है। यथा पुत्रमध्यापयेत् भावन् (आप मेरे पुत्र को पढ़ावे)।

सम्प्रश्न - किसी बड़े के समीप किसी वात का सम्प्रसारण निश्चय करना 'सम्प्रश्न' कहलाता है। किसी विषय से पूंछे - भे किं वेदमधीयीय उततर्कम् ? (निश्चयार्थ) पूछा गया है।

प्रार्थना- मांगने का नाम प्रार्थना है। यथा- भो भोजनं लभेय (मैं भौजन पाना चाहता हूॅं)

सम्भावना अर्थ जहा पर होगा, वहाँ पर भी लिङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा-सम्भाव्यतेऽद्य पिताआगच्छेत् (शायद आज पिता जी आ जायॅ) कदाचिदाचार्यः श्वः वाराणसी गच्छेत् (शायद कल गुरू जी वाराणसी जावें)

रूप एवं वाक्यादि विचार

भू धातु

भवेत	भवेताम्	भवेयुः
भवेः	भवेतम्	भवेत
भवेयम्	भवेव	भवेम

अस् धातु लिङ्लकार

स्यात्	स्याताम्	स्युः
स्याः	सयातम्	स्यात्
स्याम्	स्याव	स्याम

डुकृञ् (कृ) धातु लिङ् लकार

कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
कर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

1. तं रामायणं पठनार्थम् अभ्यस्तं भवेत्
2. तौ ग्रन्थाऽध्ययनात् कुशलं भवेताम्
3. तान् पाठाभ्यासार्थं कुशलं भवेयु:
4. युस्मान बालिकान् पाठ् पठनार्थं दक्षः भवेत
5. अस्मान्नपि पाठ पठनार्थं कुशलं भवेम
6. तौ गृहे स्याताम्
7. तस्मिन् विद्यालये पुस्तकानि स्यु:
8. ते पुस्तकानि अस्मान् स्याम
9. तानि कार्याणि तान् जनान् कुर्यु:
10. युष्मान् तेषां ग्रन्थानाम् अध्ययनं कुर्यात
11. अस्मान् ग्रन्थानां निर्माणं कुर्याम

हिन्दी-

1. उस समायण को पढ़ने के लिए अभ्यस्त होना चाहिए।
2. तुम दोनों को ग्रन्थाध्ययन के लिए कुशल होना चाहिए।
3. उन लोगों को पाठ के अभ्यास के लिए कुशल होना चाहिए।
4. तुम बालिकाओं को पाठ पढ़ने के लिए दक्ष होना चाहिए।
5. हम लोगों को भी पाठ पढ़ने के लिए कुशल होना चाहिए।
6. तुम दोनों को घर में होना चाहिए।
7. विद्यालय में पुस्तकें होनी चाहिए।

8. वे पुस्तकें हम लोगों की होनी चाहिए।
9. उन लोगों को उन ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।
10. हम लोगों को ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए।
11. हम लोगों को ग्रन्थों का निर्माण करना चाहिए।

4.3.8 आशी र्लिङ् लकार

आशिषि लिङ् लोटौ 3/3/163।।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होते हैं।

उपदेश- उपदेश में भी आशीर्लिङ् का प्रयोग किया जाता है। सत्यं बूयात् प्रिय बूयात् (सत्य विचारे बोले) सहसा विदधीत न क्रियाम् (विना विचारे कार्य न करें)

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

भू धातु आ0 लिङ् लकार -

भूयात्	भूयास्ताम्	भुयासुः
भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

अस् धातु आ0 लिङ् लकार यहाँ पर आर्धधातुक होने से अस् के स्थान में भू आदेश होता है।

भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

डुकृञ् ´ कृ धातु आ0 लिङ् लकार -

क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म

वाक्यादि उदाहरण-

ते शतं चिरायुः भूयासुः (वे लोग सौ वर्ष तक चिरायु होवे)।

तव पुत्रो भूयात्	तुम्हारा पुत्र होवे ।
त्वं चिरायुः भूयाः	तुम चिरायु हो।
वयं भूयास्म सर्वदा	हम लोग भी सर्वदा हो।
तौ गृहे भूयास्ताम्	वे दोनों घर में रहे।
ते कार्यं क्रियासुः	वे लोग कार्य करते रहे।

ईश्वरः करोतु वयं कार्य क्रियास्म। ईश्वर करे हम लोग कार्य करते रहें।

4.3.9 लुङ् लकार

लुङ् 3 / 2 / 110 ।।

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्

भूत काल में धातु से लुङ् लकार होता है।

कल यदि भूतकाल का सूचक वाक्य में आज का प्रयोग हो तो लुङ् लकार का प्रयोग होता हैं। यथा अद्य रामो राजा अभूत् (आज राम राजा हुआ)।

भू धातु लुङ् लकार -

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
अभूः	अभूतम्	अभूत
अभूवम्	अभूव	अभू

अस् धातु का रूप भू के समान होगा।

अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
अभूः	अभूतम्	अभूत
अभूवम्	अभूव	अभूम
डुकृञ् ´ कृ धातु लुङ्लकार		
अकार्षित्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
अकर्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अकार्षीः	अकार्ष्व	अकार्ष्म

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

1. ते अद्य परीक्षायामुत्तीर्णम् अभूवन्।
2.यूयं प्रतियोगितायाम् उत्तीर्णम् अभूत।
3. वयम् अद्य कार्यकरणार्थं कुशलम् अभूम्।
4. ते अद्य गृहे अभूवन्।
5. यूयं कार्यम् अद्य अकार्ष्ट।
6. वयम् अद्य कार्यकरणार्थं प्रयासम् अकार्ष्म।
1. वे लोग आज परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।
2. तुम लोग आज प्रतियोगिता में सफल हुए।
3. हम लोग आज कार्य करने के लिए कुशल हुए।
4. वे लोग आज घर में रहें।
5. तुम लोग आज कार्य को किये।
6. हम लोग आज कार्य करने के लिए प्रयास किये।

4.3.10 लृङ्लकार

लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ 3/3/139।।

हेतु- हेतु मद् भावादि लृङ् लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात्। क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

हेतु-हेतु मद्भाव आदि जो लिङ् के निमित्त कहे गये है उनमें यदि भविष्यत् कालिक क्रिया कहीं जाय तो धातु से परे लृङ् लकार होता है। क्रिया की अनिष्यत्ति (असिद्धि) गम्यमान हो तो।
"यदि ऐसा होता तो ऐसा हो तो" इस प्रकार के भविष्यत् के अर्थ में धातु से लृङ् लकार होता हैं यथा-सुवृष्टि श्चेद् अभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होती तो अच्छा अन्न होता)।

रूप एवं वाक्यादि विचारः-

भू धातु

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्

अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्याम
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

अस् धातु यहॉं भी अस् के स्थान में भू आदेश होता है।

अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभष्यन्
अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

डुकृञ् ´ (कृ) धातु

अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	करिष्यत
अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

संस्कृत-

1. पश्चिमेन चेद् अयास्यत् न वाहनं पर्याभविष्यत्।
2. यदि बालकाः अभविष्यन्-तर्हि अपाठयिष्यम्।
3. यदि भोजनम् अभविष्यत् तर्हि सः अगमिष्यत्।
4. यदि अगमिष्यत् तर्हि अभविष्यत्।
5. यदि ते विद्यालयम् अगयिष्यन् तर्हि ते अभविष्यन्।
6. यदि वयं तत्र अगमिष्यम तर्हि कार्याणि अभविष्याम।
7. वयं अगमिष्याम तर्हि कार्याणि अकरिष्याम।

हिन्दी -

1. यदि पश्चिम मार्ग से जायेगा तो वाहन नहीं उलटेगा।
2. यदि भोजन होगा, तो वह जायेगा।
3. यदि जायेगा तो होगा।
4. यदि वे लोग विद्यालय में जायेंग तो वे लोग होंगे।
5. यदि हम लोग जायेंगे तो कार्य करेंगे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1 प्रश्न- पुरुष कितनें होते है?

उत्तर-पुरुष तीन होते है

2 -प्रश्न-भू धातु प्रथम पुरुष एकवचन में कौन सा रूप होगा?

उत्तर-भू धातु प्रथम पुरुष एकवचन में भवति रूप होगा।

3-प्रश्न-पा धातु प्रथम पुरुष द्विवचन में कौन सा रूप होगा?

उत्तर-पा धातु प्रथम पुरुष द्विवचन में पिबतः रूप होगा।

4- प्रश्न-पा धातु लृट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में कौन सा रूप होगा?

उत्तर-पा धातु लृट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में पास्यतः रूप होगा।

5- प्रश्न-भू धातु अर्थ क्या है

उत्तर-भू धातु अर्थ होना है

6-प्रश्न-वर्तमान काल में किस लकार का प्रयोग होता है

उत्तर-वर्तमान काल में लट् लकार का प्रयोग होता है

8-प्रश्न-भविष्यकाल में किस लकार का प्रयोग होता है

उत्तर-भविष्यकाल में लृट् लकार का प्रयोग होता है

9-प्रश्न-चाहिये अर्थ में किस लकार का प्रयोग होता है

उत्तर-चाहिये अर्थ में विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है

10-प्रश्न-आज्ञा अर्थ में किस लकार का प्रयोग होता है

उत्तर-भविष्यकाल में लोट् लकार का प्रयोग होता है

बहुल्पीय प्रश्न

1- लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन मं रुप होता है-(घ)

(क) -भवति (ख) - भवतः

(ग)- भवन्ति (घ)- भवसि

2. लृट् लकार उतम पुरुष एकवचन में रुप होता है-(ख)

(क)- भविष्यति (ख) -भविष्यामि

(ख)- भविष्यावः (घ) - भवसि

3- भूत काल में लकार का प्रयोग होता है-(ग)

(क) लृट् (ख) लोट्

(ग) लड्. (घ) लिड्.

4- लिड्. लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रुप है-(ग)

(क) भवेत् (ख) भवेताम्

(ग) भवेः (घ) भवेतम्

5- अस्मद् उपपद रहने पर प्रयोग होता है-(ग)

(क) मध्यम पुरुष (ख) प्रथम पुरुष

(ग) उत्तम पुरुष (घ) कुछ भी नही

4.4 सारांश

लकार दश प्रकार के माने गये हैं 1. लट् 2. लिट् 3. लृट् 4. लृट 5. लेट् 6. लोट् 7. लङ् 8. लिङ् 9. लुङ् 10 लृङ् इन दश लकारों में से पाचवाँ जो लकार 'लेट्' लकार है उनका प्रयोग वेद में होता है । आगे नव लकारों का प्रयोग किया जायेगा, परन्तु लिङ् लकार के दो (विधिलि और आशीर्लिङ्) होने से पुनः लोक में भी दशलकार माने गये हैं। अब इन लकारों का प्रयोग कहाँ पर किया जाय, इनका वर्णन सूत्र के माध्यम से किया जा रहा है -

लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः 3/4/69।। लकाराः सकर्मकेभ्य कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च।

लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में होते हैं । इन दोनों वाक्यों का भाव यह है कि लकार के तीन अर्थ होते है। कर्ता, कर्म, भाव। यदि धातु सकर्मक हो तो लकारों का प्रयोग कर्ता और कर्म में होता है और यदि अकर्मक होतो भाव और कर्ता में लकारों का प्रयोग किया जाता है। सकर्मक- अकर्मक जिस धातु में कर्म होता है। उस धातु को सकर्मक कहते हैं और जिस धातु में कर्म नहीं होता हैं। उस धातु को अकर्म

कहते है और जिस धातु में कर्म नहीं होता है उस धातु को अकर्मक कहते है। यथा- रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक को पढ़ता है) यहाँ पर कर्ता राम क्रिया पढ़ना और कर्म पुस्तक है, पठ् धातु का कर्म पुस्तक है। इस लिए पठ् धातु को सकर्मक कहते है। और जहाँ कर्म नहीं होता है। उसे अकर्मक कहते है। रामः शेते (राम सोता है।) यहाँ पर शयनानुकूल जो व्यापार हो रहा है वह राम में हो रहा है। इस लिए यहा कोई कर्म नहीं हैं अतः शी धातु अकर्मक है। सकर्मक से लकार कर्ता और कर्म में होता हैं जिसे कर्तृवाच्य या कर्मवाच्य कहा जाता है। और अकर्मक से लकार कर्ता और भाव में होता है। इन तीनों (कर्तृवाच्य कर्मवाच्य भाववाच्य) का विस्तृत वर्णन आगे वाच्य प्रकरण में दिया गया है। इन दशो लकारों का वर्णन सामान्य रूप से किया गया है।

4.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1 –

1 . अ

2. ब

3. ब

संस्कृत अनुवाद - 1.वयं विद्यालये भवाम:

2. तौ कुत्र भवत:।

3. यूयं तानि कार्याणि कुरुथ

4. वयं तानि कार्याणि कुर्म:

5. वयं स्म:

अभ्यास 2 –

1. अ

2. अ

3. द

संस्कृत अनुवाद -

1. सीताया: पति राम: आसीत्।

2. राम: लंकायाम् अनेकानि कार्याणि चकार।

3. रावण: सीतां चोरयति

4. राम: रावणं जघान

5. शकुन्तलाया: पुत्र: भरत: बभूव

अभ्यास 3 –

1 . अ

2. स

3 .स

संस्कृत अनुवाद -

1.दिनद्वयं परमहम् गृहस्य कार्याणि करिष्यामि।

3. यूयं स्व गृहं गमिष्यथ।

4. युवां परश्व:विद्यालये बभुवथु:

6. यूयं स्व गृहस्य कार्यं करिष्यथ
7. श्वः बालकौ गृहस्य कार्यं करिष्यत

अभ्यास 4 –

1 .ब

2. अ

3 . ब

संस्कृत अनुवाद -

1. यूयं गृहे भविष्यथ।
2. त्वं विद्यालये भवसि।
3. त्वं गृहस्य कार्यं करिष्यथ
4. युवां विद्यालयस्य कार्यं करिष्यथः।
5. वयं सर्वे विद्यालये पुस्तकं पठिष्यामः
6. रमा कार्यं न करिष्यति।
7. बालिकाः गृहस्य कार्यं न करिष्यन्ति
8. ते बालिके वनं गमिष्यतः
9. आवां गृहे भोजनं करिष्यावः

अभ्यास 5 - 1 . स   2. स   3 . द

संस्कृत अनुवाद -

1. ते बालकाः अध्ययनशीलाः भवन्तु।
2. तेभ्यः छात्रेभ्यः मंगलं भवतु।
3. तेभ्यः कल्याणं भूयात्।
4. ते गृहस्य कार्यं कुर्वन्तु।
5. वे दोनों पाठ याद करें। तौ पाठं स्मरणं कुर्यात्।
6. वे लोग ग्रन्थ का निर्माण करें। ते ग्रन्थस्य निर्माणं कुर्यात्।
7. मैं वहाँ जाकर क्या करूँ। अहं तत्र गत्वा किं करवाणि
8. हम लोग वहा जाकर कार्य करें। वयं तत्र गत्वा कार्यं करवाम

अभ्यास 6 - 1 . ब   2. ब   3 .स

संस्कृत अनुवाद -

1. श्यामः नृपः बभूव।
2. ते योग्या बभूवुः।
3. यूयं कार्यकरणार्थं कुशलं बभूव।
4. वयं कुशलाध्यापकाः बभूविम
5. महाराणाप्रतापः भारतस्य रक्षायै अनेके प्रयासः कृतः।
6. देहल्याः मुगलशासकैः सह युद्धम् अकरोत्
7. ते कुत्र आसीत्

4 .6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर भारती
2	लघुसिद्धान्तकौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेन शास्त्री	भैमीप्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली
3.	परम लघु मंजूषा	नागेश भट्ट	भीमसेन शास्त्री	चौखम्भा सुर भारती
4.	वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी	कौण्ड भट्ट	चन्द्रिकाप्रसाद द्विवेदी	प्रकाशन वाराणसी

4 .7 उपयोगी पुस्तकें

1.	वैयाकरण सिद्धान्त	भट्टोजिदीक्षित	गोपाल दत्त	चौखम्भा सुर भारती
2.	लघु सिद्धान्त कौमुदी	वरदराजाचार्य	भीमसेनशास्त्री	भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लिङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये
2. आशी र्लिङ् लकार का वर्णन कीजिए

खण्ड-चार (Section-D)
कारक, समास एवं प्रत्यय

इकाई-1 कारक : परिभाषा, नियम एवं उदाहरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 कारक परिभाषा

1.3.2 कर्ता कारक-प्रथमा विभक्ति

1.3.2 कर्मकारक-द्वितीया विभक्ति

1.3.3 करण कारक-तृतीया विभक्ति

1.3.4 सम्प्रदान कारक-चतुर्थी विभक्ति

1.3.5 अपादान कारक- पंचमी विभक्ति

1.3.6 सम्बन्धः कारक-षष्ठी विभक्ति

1.3.7 अधिकरण कारकम्-सप्तमी विभक्ति

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 8 उपयोगी पुस्तिकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत व्याकरण नामक पाठ्यक्रम के चतुर्थ खण्ड कारक : परिभाषा, नियम एवं उदाहरण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है, इस इकाई का विषय है कारक। व्याकरणशास्त्र के महत्त्व को जानते हुए व्याकरणशास्त्र के प्रणेता पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि का व्याकरणशास्त्र में विशिष्ट स्थान हैं। इन प्रणेताओं ने बड़े स्पष्ट रूप से और विस्तार से कारक के बारे में चर्चा की है। कारकों को क्यों पढ़ा-लिखा जाता है तथा कारक की रचना क्यों होती है ? प्रस्तुत इकाई में आपके अध्ययनार्थ इन्हीं विषयों की विस्तार से चर्चा की गयी है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- कारक किसे कहते है ? इनकी विशेषता क्या है ? आप बता सकेंगे।
- कारक कितने प्रकार के होते हैं ? और उनका स्वरूप क्या है ? आप बता सकेंगे।
- वाक्य निर्माण के लिये कारक के महत्तव को जान सकेंगे।

1.3 कारक परिभाषा

जो क्रिया को करता है वह कारक है। अर्थात् क्रिया को करने के लिये सुबन्त पदों के अर्थों का क्रिया के साथ सम्बन्ध स्थापित करने वाले को 'कारक' कहते हैं। सुबन्त पदार्थ =

कारक	**कारक चिह्न**	**विभक्तय:**
कर्ता	ने	प्रथमा
कर्म	को	द्वितीया
करणम्	से, के साथ, द्वारा	तृतीया
सम्प्रदानम्	को, के, लिये	चतुर्थी
अपादानम्	से (अलग होना)	पञ्चमी
सम्बन्धः	का, के, की, रा, रे, री	षष्ठी
अधिकरणम्	में, पर	सप्तमी
सम्बोधनम्	हे, अरे, अयि, भोः	सम्बोधनम्

जिससे संख्या और कारक का बोध होता है उसे विभक्ति कहते हैं। व्याकरण में सात विभक्तियां और छः कारक बताये गये हैं। यथा— कारक छ: हैं, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। यथा—

कर्ता कर्म च करणम् सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणम् इत्याहुः कारकाणि षट्॥

1.3.2 कर्ता कारक-प्रथमा विभक्ति

क्रियाजनकत्वम् कारकत्वम्। जो क्रिया का जनक हो उसे कारक कहते है। कारक छः प्रकार के माने गये है इसमें सबसे पहले कर्ता कारक का वर्णन हो रहा है-

कर्ता कारक का हिन्दी में प्रायः (ने) चिह्न लगा रहता है। जो क्रिया करता है वह 'कर्ता' है अर्थात् जो क्रिया को सम्पन्न करने में स्वतन्त्र होता है उसे कर्ता कहते हैं। कर्ता में प्रथमा विभक्ति

होती है। क्रिया कर्ता के अनुसार होती है। अर्थात् कर्ता जिस पुरुष और जिस वचन का होता है क्रिया भी उसी पुरुष और वचन की होती है। जैसे –

छात्रः पठति,	छात्रौ पठतः	छात्राः पठन्ति ।
(छात्र पढता है,	दो छात्र पढते हैं,	छात्र लोग पढते हैं।)
सः पठति	तौ पठतः	ते पठन्ति ।
त्वं पठसि	युवां पठथः	यूयं पठथ ।
अहं नमामि	आवाम् नमावः	वयं नमामः।

छात्रः पठति .... इत्यादि। यहाँ पढता, लिखना, पढ़ना, नमन करना क्रियाएँ हैं, इन्हें करने वाले छात्र, वह, तुम, मैं कर्ता हैं। इनमें प्रथमा विभक्ति हुयी है। यहाँ कर्ता छात्र प्रथम पुरुष एकवचन का है, अतः पढना क्रिया भी प्रथम पुरुष एकवचन की है। ऐसे त्वं - मध्यमपुरुष, अहम् - उत्तम पुरुष के अनुसार क्रिया लगी है।

प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा 2/3/46।।

नियतोपस्थितिकःप्रातिपदिकार्थः, मात्र शब्दस्य प्रत्येक योगः। प्रातिपदिकार्थ मात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् ।

प्रतिपादिकार्व्थमात्रे - उच्चैः। नीचैः। कृष्णः/श्री/ज्ञानम्/लिड्गमात्रे-तटः,तटी,तटम । परिमाणमात्रे-द्रोणो व्रीहिः। वचनं सड्ख्या-एकः, द्वौ,बहवः।

प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिंग मात्र की अधिकता होने पर, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है ।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः-

किसी शब्द के उच्चारण करने पर निश्चित रूप से जिस अर्थ की उपस्थिति अर्थात् प्रतीति होती है उसे प्रातिपादिकार्थ कहते है । जिस शब्द के उच्चारण करने से यह पता चले कि यह शब्द इस अर्थ का ज्ञान कराता है अथवा इस शब्द का यह अर्थ है, ऐसी प्रतीति जिस शब्द के विषय में होता है उसे प्रातिपादिकार्थ कहते है जिस शब्द का सीधा-सीधा अर्थ मात्र उपस्थित है, ऐसे शब्द से प्रथमा विभक्ति होती है अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण करने पर नियतरूप से जिस अर्थ की उपस्थित होती है अर्थात्-प्रतीति होती है ऐसे प्रातिपदिकार्थ से प्रथमा विभक्ति होती है। इसका **उदाहरण है-** उच्चैः नीचैः, कृष्णः श्रीः, ज्ञानम् इस शब्दों के उच्चारण मात्र से क्रमशः उपर, नीचे, भगवान कृष्ण, लक्ष्मी जी और ज्ञान ये अर्थ अपने आप किसी अन्य शक्ति के बिना भी उपस्थित होते है इसलिए प्रातिपदिकार्थ माना गया है और प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे इस सूत्र से प्रथमा विभक्ति होती है ।

लिंगमात्राद्याधिक्ये-

कोई शब्द अपने लिंग नहीं कह सकता अपितु लिंगविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ को ही कहता है जैसे- पुरूषशब्द पुल्लिंग युक्त मनुष्यरूप प्रातिपदिकार्थ को नारी - शब्द स्त्रीलिंगयुक्त नारीरूप् प्रातिपदिकार्थ को तथा फल शब्द नपुंसकलिंगयुक्त फल रूप अर्थ को अवश्य कहते हैं।

किन्तु तट शब्द उसमें रहने वाला बहुत लिंगों में से किसी एक अर्थ को तो कह रहा है। किन्तु अनेक को नहीं कह रहा है। इस लिए प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति नहीं हो सकती है। अतः प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिंग मात्र की अधिकता होतो भी प्रथमा विभक्ति होती है, इसके लिए इस सूत्र में लिंग ग्रहण किया गया है।

ततः, तटी, तटम्। अकारान्त तट शब्द से प्रातिपदिकार्थ सहित लिंगमात्र की अधिकता में प्रथमा विभक्ति हुई। पुल्लिंग में राम शब्द की तरह स्त्रीलिंग में नदी शब्द के समान तथा नपुंसकलिंग में फल शब्द के समान प्रयोग किया गया है।

परिमाणमात्राधिक्ये. परिमाण मात्र की अधिकता होने पर प्रथमा विभक्ति होती है जैसे-द्रोणों व्रीहिः। द्रोण प्राचीन काल का एक परिमाणवाचक शब्द है, जैसे आजकल किलो कुन्तल आदि है। द्रोण का अर्थ नापने वाला मापक है और व्रीहि उससे नापी जाने वाली माप्य वस्तु है। द्रोण परिमाण और व्रीहि द्रव्य कभी भी एक नहीं हो सकते। अतः उभ्दान्वय को बाधकर परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव रूप सम्बन्ध में अन्वय करने के लिए परिमाण अर्थ में प्रथम विभक्त् होती है।

संख्यामात्रे –

संख्यामात्र में प्रथम विभक्ति होती है एकः दौ बहब:। जैसे एक शब्द से एकत्व संख्या, द्वि शब्द द्वित्व संख्या बहु शब्द से बहुत्व संख्या अर्थ का बोध होता है। तात्पर्य यह है कि एक, द्वि, बहु आदि शब्दों से संख्या अर्थ जो प्रातिपदिकार्थ है, वह उक्त है उस उक्त अर्थ को बताने के लिए सु औ आदि प्रत्यय नही किये जा सकते क्यों कि उक्तार्थानामप्रयोग उक्त कहा गया है जिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता ऐसा नियम है। अतः एक द्वि आदि से एकत्व, द्वित्व आदि संख्या रूप अर्थ के उक्त होने पर भी वचन-ग्रहण सामर्थ्य से उक्तार्थानामप्रयोगः इस नियम को बाधकर सु आदि प्रत्यय होते है। इस लिए संख्यामात्रे का उच्चारण किया। एक, द्वि, बहु ये स्वतः संख्यावाचक होते हुए भी प्रथमा विभक्ति होनी चाहिए जिससे ये पद बन सकें। इन तीनों शब्दों से प्रतिपदिकार्थ मात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में प्रतिपदिकार्थ लिंग परिमाणवचनमात्रे प्रथमा से प्रथमा विभक्ति हुई।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति विधायक विधिसूत्र -

सम्बोधने च 2/3/47//

प्रथमा स्यात्। हे राम।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। उदाहरण हे राम! राम से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई।

किसी को पुकारना सम्बोधन कहलाता है। कर्ता को जब पुकारा गया हो तब उसमें भी प्रथमा विभक्ति होती है। हिन्दी में सम्बोधन का चिह्न हे! भो! अरे! अयि! लगाया जाता है। यथा -

हे देव ! रक्षतु। हे देवौ ! रक्षताम्। हे देवाः ! रक्षन्तु।

भो छात्राः ! गीतं गायन्तु। हे छात्रों! गीत गाइये।

अयि मित्राणि ! संस्कृतेन सम्भाषणं कुर्वन्तु। हे मित्रों, संस्कृत सम्भाषण करिये।

प्रथम पुरूष (प्रथमा विभक्ति) उदाहरणानि

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(बालक(	बालकः	बालकौ
(बालिकाबालिका (	बालिके	बालिकाः स्त्री)0)
(यह(	अयम्	इमौ
(यहइयम् (	इमे	इमाः
(यहइदम (	इमे	इमानि

(वह(	सः	तौ

मध्यम पुरूषः (प्रथमाविभक्ति)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
(तुमत्वं (	युवाम्	युयम
उत्तम(प्रथमाविभक्ति) पुरूष-		
(मैअहम् (		

वाक्य निर्माण प्रकारः-

बालकः विद्यालयं गच्छति। (बालक विद्यालय जाता है)

बालकौ विद्यालयं गच्छतः। (दो बालक विद्यालय जाते है)

बालकाः विद्यालयं गच्छन्ति। (बालक विद्यालय जाते हैं)

मध्यम-पुरूष

त्वं कस्य चित्रं पश्यसि (तुम किसका चित्र देख रहे हो)

युवां कयोः चित्रे पश्यथ: (तुम दोनों किसके चित्र को देख रहे हो)

यूयं केषां चित्राणि पश्यथ (तुम लोग किसके चित्रों को देख रहे हो)

उत्तम पुरूषः

अहं तत् चित्रं पश्यामि (मैं उस चित्र को देखता हूँ)

आवां ते चित्रे पश्याव: (हम दोनो उन दोनों चित्रों को देख रहे हैं)

वयं तानि चित्राणि पश्यामः (हम लोग उन चित्रों को देख रहे हैं)

अभ्यास प्रश्न 1.

(1.) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः। (बहुविकल्पक प्रश्न)

1.युष्यद् शब्दबहुवचनस्य रूपमस्ति-

(अ) वयम् (ब) यूयम्

(स) त्वम् (द) आवाम्

2.अस्मद् शब्दस्य एकवचनस्य रूपमस्ति-

(अ) तव (ब) अस्माकम्

(स) आवाम् (द) अहम्

(3) संस्कृते अनुवादो विधेयः

1. माता भोजन पकाती है।
2. गीता पत्र लिखती है।
3. वे लड़के दौड़ रहे है।
4. मैं जा रहा हूँ।
5. तुम दोनों जाते हो।

1.3.2 कर्मकारक-द्वितीया विभक्ति

कर्ता, क्रिया के द्वारा जिसे विशेष रूप से चाहता है वह कर्म कहलाता है। कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है। हिन्दी में कर्म पदों के अन्त में प्रायः 'को' लगा होता है। जैसे - गीता ग्रन्थ को पढ़ती है। गीता दो ग्रन्थों को पढ़ती है। गीता बहुत ग्रन्थों को पढ़ती है। यहाँ तीनों वचनों में

वाक्य लिखे हैं। सभी में कर्ता ' गीता ' है और क्रिया पठति है। यहाँ पठन-क्रिया द्वारा सुधा किसको चाहती है ? = ग्रन्थं (ग्रन्थ को), यही कर्म कारक है। कर्म में द्वितीया विभक्ति हुयी है। एवमेव (इसी प्रकार) -

बालकः फलं खादति बालक फल को खाता है। लक्ष्मी विष्णुं नमति लक्ष्मी विष्णु को नमस्कार करती है।

भक्ताः नदीं गच्छन्ति भक्त नदी को जाते हैं। छात्राः श्लोकान् पठन्ति छात्र श्लोकों को पढ़ते हैं।

अहं धनम् इच्छामि मैं धन चाहता हूँ।

कर्मसंज्ञा विधायकं सूत्रम्

कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1/4/49

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म संज्ञं स्यात्।

कर्ता को जो अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसको विशेष रूप से अपना चाहता है, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। एकवाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया ये तीन या तीन से अधिक भी होते है। इसमें कर्म कौन सा है ? यह जानने के लिए इस सूत्र की आवश्यकता होती है। जैसे रामः ग्रामं गच्छति इस वाक्य में गच्छति क्रिया है और राम यह कर्ता है को गच्छन् क्रिया द्वारा अत्यन्त इष्ट है ग्राम। अतः ग्राम की कर्मसंज्ञा होती है। इसी प्रकार 'देवदत्तः पत्रं लिखति' में कर्ता देवदत्त को लेखन क्रिया द्वारा अत्यन्त अभीष्ट है पत्र। अतः पत्र की कर्म संज्ञा हुई। कर्मसंज्ञा का फल कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति होती है।

कर्मणि द्वितीया 2/3/2 ।।

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्

अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। **हरिं भजति।** इस उदाहरण में हरि अनुक्त कर्म है, उसमे द्वितीया विभक्ति होती है। क्योकि 'भजति' क्रिया के द्वारा साक्षात् सम्बन्ध भक्तादि कारक का है कर्म का नहीं। इसी प्रकार सुरेशः पत्रं लिखिति, रमेशः गृहं गच्छति, वटुर्वेदं पठति, इत्यादि उदाहरण जानना चाहिए। अभिहिते तु कर्मणि अर्थात् क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले कर्म में (कर्मवाच्य) प्रतिपदिकार्थमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है जैसे **हरिः सेव्यते** इस उदाहरण में सेव् धातु से कर्म अर्थ में प्रत्यय हुआ। अतः उक्त होने से कर्म में प्रथमा विभक्ति हुआ। इसी प्रकार लक्ष्म्या सेवितो हरिः इत्यादि समझना चाहिए।

अकथितं च 1/4/51।।

अपादानादि विशेषैरविवक्षितं कारकं कर्म संज्ञं स्यात्।

दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रूधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ-मुषाम्

कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-हृ-कृष् वहाम्।

अपादान आदि कारकों के द्वारा अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा होती है।

इस सूत्र के द्वारा जितने भी अकथित (अविवक्षित) जो कारक है उन सभी की कर्म संज्ञा प्राप्त है किन्तु इस श्लोक के द्वारा दुह्, याच् पच्, दण्ड रूध, प्रच्छ चि , ब्रू, शास, जि, मथ् मुष, नी, हृ कृष्, वह्, इन सोलह धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादानादि विभक्ति के रूप में अविवक्षित जो कारक उनकी कर्म संज्ञा होती है इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते हे क्योकि इसमें दो कर्म है। इन सभी सोलह धातुओं को उदाहरण दिया जा रहा है-

रामः गां दोग्धि पयः। (राम गाय से दुध को दुहता है) इस वाक्य में कर्ता राम है क्रिया पद दोग्धि (दुह, धातु लट् प्र0एकचन) दोहन क्रिया द्वारा कर्ता को अत्यन्त अभिष्ट जो कारक है वह पय दूध है। अत:पयस् को अत्यन्त इप्सित कर्म मानकर कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति पहले हो चुकी है। यहा वक्ता गो को अपादान के रूप में होने के कारण गो यह अविवक्षित हुआ। उसकी अकथितं च सूत्र से कर्म संज्ञा होकर कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति हुई।

बलिं याचते वसुधाम्। (भगवान् वामन बलि से पृथ्वि माँगते हैं) कर्ता वामन हुआ, क्रिया याचते इष्टतम् कर्म वसुधा और अकथित कर्म बलि है यहाँ पर पंचमी विभक्ति प्राप्त है। किन्तु कर्ता के दारा अपादान के रूप में न विवक्षा होने के कारण बलि की कर्म संज्ञा तथा द्वितीया विभक्ति हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए जो दिया जा रहा है।

रमेशः तण्डुलान् ओदनं पचति। (रमेश चावल से भात पकाता है।)

गर्गान् शतं दण्डयति। (गर्गों से सौ रूपये जुर्माना लगाता है)

कृष्णः ब्रजमवरूणद्वि गाम् (भगवान् श्री कृष्ण गौ को रोकते है)

रमेशः माणवकं पन्थानं पृच्छति। (रमेश बालक से मार्ग पुछता है)

गीता वृक्षमवचिनोति फलानि (गीता वृक्ष से फल को तोड़ती हैं)

पिता माणवकं धर्म ब्रुते शास्ति वा। (पिता बालक को धर्म का उपदेश देता हैं)

उमेशः शतं जयति देवस्तम्। (उमेश देवदत्त से सौ रूपये जीतता है)

देवसुरा: सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति।(देव दान व समुद्र से अमृत मथते हैं)

यज्ञदत्त: देवस्तं शतं मुष्णाति। (यज्ञस्त देवस्त से सै रूपये चुराता है) रमेशः ग्रामम् अजां नयति हरति कर्षति वहति वा। (रमेश ग्राम से बकरी को ले जाता हे, खिचता है, ढ़ोता है) (और विशेष सूत्रों के ज्ञान के लिए सिद्धान्त कौमुदी कारक प्रकरण को देखें)

द्वितीया विभाक्ति का उदाहरण-

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	मूलशब्दः
बालकम्	बालकौ	बालकान्	पु)0) बालक
इमम्	इमौ	इमान्	पु)0) इदम्
तम्	तौ	तान्	पु)0) तत
कम्	कौ	कान्	पु0 किम्
इमाम्	इमे	इमाः	स्त्री इदम्
ताम्	ते	ताः	स्त्री तत्
काम	के	का:	स्त्री किम्
त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	युष्मद्
माम्	आवाम्	अस्मान्	अस्मद्

गुरूः कं छात्रं पृच्छति। गुरू किस छात्र से पुछता है।

अयं बालकः चित्रं पश्यति। यह बालक चित्र को देखता है।

सा तं ग्रामं गच्छति। वह उस ग्राम में जाती है।

सुरेश तं पुस्तकं पश्यति। सुरेश उस पुस्तक को देखता है।

त्वं सुरेशं प्रश्न पृच्छ। तुम सुरेश से प्रश्न पूछो।

अहं का विद्या पठानि। मै किस विद्या को पढ़ूँ।
पिता तान् छात्रान् ताड़यति। पिता उन छात्रों को मारते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2.

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः

1-बालक शब्दस्य द्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकम् ब. बालकेन स. बालकैः द. बालकौ

2-इदं शब्दस्य द्वितीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. इमम् ब. अनेन स. इमौ द. इमान्

(3) संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. राम गाय से दूध दूहता है।
2. सुरेश राम से प्रश्न पूछता है।
3. गणेश चावल से भात पकाता है।
4. राम गर्गों से सौ रूपये दण्ड लगाता है।
5. सुरेश गॉव से बकरी को ले जाता है।

1.3.3 करण कारक-तृतीया विभक्ति

स्वतन्त्रः कर्ता 1/4/54 ।।

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप विवक्षित अर्थ कर्तृ संज्ञक होता है, अनुवाद बनाने के लिए कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों की आवश्यकता होती है ये पहले ,द्वितिया विभक्ति में कहाँ जा चुका है। कर्ता किसे कहते है इस सूत्र में विशेषरूप से बताया जायेगा।

कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों में जो प्रधान है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है वह कर्ता कहा जाता है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है **जैसे-** रामः पठति (राम पढ़ता है) इस वाक्य में पठति क्रिया है राम कर्ता है। क्योंकि कर्ता के बिना क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। इस लिए राम को कर्ता माना गया है।

साधकतमं करणम् 1/**4/42। 1**

क्रिया सिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसञ्ज्ञं स्यात।

क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करण संज्ञा होती है। जैसे रमेश साईकिल से घर जाता है।(रमेशः द्विचक्रिकया गृहं गच्छति) इस वाक्य में रमेश के घर जाने का सहायक द्विचक्रिका है। अतः द्विचक्रिका की करण संज्ञा हुई। और जहाँ-जहाँ करण संज्ञा होगी वहाँ-वहाँ कर्तृकरणयोस्तृतीया से तृतीया विभक्ति होती है।

कर्तृकरणयोस्तृतीया 2/3/18।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात-। रामेण बाणेन हतो बाली।

अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। उदाहरण-रामेण बाणेन हतो बाली (राम ने बाण से बाली को मारा) यहा रामेण इस अनुक्त कर्ता में तथा बाण इस अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है। यहा हनन् क्रिया का साक्षात् वाच्य न तो राम कर्ता है और नही बाण करण ही अपितु साक्षात् क्रिया का बाली कर्म है। अतः उस उक्त करण में प्रथमा विभक्ति होती

है। राम के द्वारा बाण रूप साधन से बाली मारा गया। यह अर्थ है। शेष सूत्रों का वर्णन सिद्धान्त कौमुदी में देखें।

तृतीया विभक्ति का उदाहरण

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	मूलशब्दः
बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकैः	पु0 बालक
अनेन	आभ्याम्	एभिः	पु0 इदम्
तेन	ताभ्याम्	तैः	पु0 तद
केन	काभ्याम्	कैः	पु0 किम्
अनया	आभ्याम्	एभिः	स्त्री इदम्
तया	ताभ्याम्	ताभिः	स्त्री तत्
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	युष्मद
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	अस्मद्

बालकः केन पत्रं लिखति। बालक किससे पत्र लिखता है।
बालकः कलमेन पत्रं लिखति। बालक कलम से पत्र लिखता है।
रमेश अनेन सह पठति। रमेश इसके साथ पढ़ता है
दिनेशः तेन सह गच्छति। दिनेश उसके साथ जाता हे।
लोके पुरूषः केन एधते। लोक में पुरूष किससे बढ़ता है।
लोके पुरूषः धर्मेण एधते। लोक में पुरूष धर्म से बढ़ता है।
त्वया सह क्रीडति। तुम्हारे साथ खेलता है।
मया सह गच्छति। मेरे साथ जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3.

(1) बहुकलात्मकाः प्रश्नाः

1. किम् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-
अ. केन ब. कैः स. कस्मै द. केभ्यः

2. तत् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-
अ. तस्मै ब. ताभ्याम् स. तैः द. तेभ्यः

3. अस्मद् शब्दस्य तृतीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-
अ. मया ब. महयम् स. आवाभ्याम् द. अस्माभिः

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. रमेश पुस्तक से पढ़ता है।
2. वे दोनों साइकिल से घर जाते है।
3. मैं कलम से लिखता हूँ।
4. सुरेश वाहन से घर जाता है।
5. तुम किससे लिख रहे हो ?

1.3.4 सम्प्रदान कारक-चतुर्थी विभक्ति

कर्ता जिसको उद्देश्य कर अथवा जिसके लिये कुछ देता है वह सम्प्रदान कहलाता है। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है।) यथा - **रमेश मित्राय उपहारं ददाति** (रमेश मित्र को / के लिये उपहार देता है।) अत्र कर्ता उपहार प्रदानं कस्मै करोति ? = मित्राय, अतः मित्रम् सम्प्रदानकारकम् अस्ति, चतुर्थी विभक्तिः भूत्वा 'मित्राय' भवति।

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1/4/32।।

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्

दान रूपी कर्म के द्वारा कर्ता को जो अभिष्ट हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है

सम्प्रदान का अर्थ है सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम् जिसको अच्छी तरह से दे दिया गया हो, और देने बाद वापस न लिया जाय, उसी का नाम दान या सम्प्रदान है। जैसे विप्राय गां ददाति (विप्र को गाय देता है) यहा पर विप्र को गाय देता है कर्ता यजमान क्रिया ददाति, दान क्रिया के द्वारा अभिष्ट कारक गो है उसकी कर्म संज्ञा हुई। सम्प्रदान संज्ञा जहा पर होती है वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति होती है चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से। रजकस्य वस्त्रं ददाति यहाँ पर धोबी को कपड़ा देता है क्योंकि धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए देता है न कि सर्वदा के लिए। इसलिए सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी विभक्ति हुई, चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई।

चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/13

सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्

सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। विप्राय गां ददाति यहाॅं पर विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होने के बाद चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

नमस्स्वस्ति स्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च 2/3/16 ॥

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्, दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि ।।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलंवषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा कारक संज्ञा की अपेक्षा नहीं होती है। नमस आदि जो ये छः शब्द जिस शब्द के साथ सम्बन्ध रखते है उनमें चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण हरये नमः। हरि को नमस्कार है। यहाँ पर हरि-शब्द नमः से सम्बन्ध या युक्त हैं क्योंकि हरि को ही नामस्कार किया गया हैं इस लिए नमस्स्वस्ति- इस सूत्र से हरि से हरि में चतुर्थी विभक्ति हुई।

प्रजाभ्यः स्वस्ति । प्रजाओं का कल्याण हो। यहाँ पर स्वस्ति शब्द प्रजा शब्द से युक्त है इस लिए नमस्स्वस्ति -इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है।

पितृभ्यः स्वधा । पितरों को अन्नजल। यहा पर स्वधा-शब्द पितृ शब्द से युक्त है क्योंकि तर्पण इत्यादि पितरों के लिए दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वस्ति-इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अग्नये स्वाहा। यहा पर स्वाहा शब्द अग्नि शब्द से युक्त है। क्योंकि हविषान्न अग्नि शब्द का नामोच्चारण कर के ही दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वति- इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्। इस सूत्र में अलम-शब्द का अर्थ पर्याप्त, समर्थ शक्त का अर्थ भी समर्थ पर्याप्त है, अतः इन सभी के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण दैत्येभ्यो हरिरलम्, दैत्येभ्यो हरिः प्रभु: दैत्येभ्यो हरिः समर्थ दैत्येभ्यो हरिः शक्तः इत्यादि वाक्यों में इन शब्दों का योग होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई। दैत्यों को जीतने के लिए हरि समर्थ है।

चतुर्थी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्	मूलशब्दः
बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्याः	पु0 बालक
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः	पु0 इदम्
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः	पु0 तत्
अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः	स्त्री इदम्
तस्यै मह्यम्	ताभ्याम् आवाभ्याम्	ताभ्यः अस्मभ्यम्	स्त्री इदम्
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्यभ्यम्	अस्मरद्

1. जननी अस्मै बालकाय दुग्धं यच्छति।
(माता इस बालक के लिए दुध देती है।)
2. पिता कन्यायै वस्त्रं यच्छति।
(पिता कन्या के लिए वस्त्र देता है)
3. रमेशः तस्यै कन्यायै धनं ददाति। (रमेश उस कन्या के लिए धन देता है)
4. शिक्षकः छात्राय ज्ञानं ददाति। (शिक्षक छात्रा के लिए ज्ञान देता है।)
5. शिक्षिका तस्यै छात्रायै मोदकं ददाति। (शिक्षिका उस छात्रा को मोदक देती है)
6. मह्यं यजमानः वस्त्रं ददाति। (मुझको यजमान वस्त्र देता है।)

अभ्यास प्रश्न 4.

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः
1. इदं शब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमस्ति-(अ)
अ. अस्मै ब. अनया स. अस्मिन् द. अस्य
2. अस्मद् शब्दस्य चतुर्थ्येकवचने रूपमस्ति-(स)
अ. मम ब. आवाम् स. मह्यम् द. अहम्
3. तद् शब्दस्य चतुर्थी बहुवचने रूपमस्ति-(द)
अ. तस्य ब. तस्मै स. तेषाम् द. तेभ्यः

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-
1. ब्राह्मण को गाय देता देता है।
2. यजमान गुरू को वस्त्र देता है।
3. मैं बालको के लिए पुस्तक देता हूँ।
4. उस छात्र को द्रव्य दो।
5. उन लोगों के लिए वस्त्र है।

1.3.5 अपादान कारक- पंचमी विभक्ति

जब कोई वस्तु किसी एक स्थान से अलग होता है तब उस स्थान को अपादान कहते हैं। अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है। वृक्ष से फल गिरता है। यहाँ फल अपने स्थान से गिरने से अलग हुआ। वह स्थान है वृक्ष। यह अपादान है, इसमें पञ्चमी विभक्ति हुयी 'वृक्षात्'। एवमेव -

छात्राः विद्यालयात् आगच्छन्ति। छात्र विद्यालय से आते हैं।

वयं गृहात् वाटिकां गमिष्यामः । हम लोग घर से वाटिका को जायेंगे।

ध्रुवमपायेमपादानम्-

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकम् अपादान संज्ञं स्यात् ।

अपाय (अलगाव) होने में जो निश्चित सीमा है उसकी अपादान संज्ञा होती है । अलगाव या वियोग अर्थ जहा पर होता है उसमें पंचमी विभक्ति होती है। जैसे धावतो अश्वात् पतति । दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है । यहा पर अलगाव या वियोग अश्व से होता है इस लिए अश्व की अपादान संज्ञा हुई और अपादाने पंचमी" इस सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है । उदाहरण-

एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**	**शब्दः**
बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्यः	पु0 बालक
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः	पु0 इदम्
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः	पु0 किम्
तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः	पु0 तत्
अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः	स्त्री इदम्
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः	स्त्री किम्
तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः	स्त्री तत्
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	अस्मद्
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	युष्मद्

पंचमी विभक्ति का उदाहरण-

इदं फलं वृक्षात् पतति। यह फल वृक्ष से गिरता है।

कस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति । किस वृक्ष से पत्ता गिरता है।

अस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति । इस वृक्ष से पत्ता गिरता है।

कस्या: लतायाः पुष्पं पतति? किस लता से पुष्प गिरता है।

तस्मात् गिरे: बालकः पतति? उस पर्वत से बालक गिरता है।

अहं गृहाद् आगच्छामि । मैं घर से आता हूँ।

त्वं गृहाद् कुत्र गच्छसि? तुम घर से कहाँ जाते हो।

अभ्यास प्रश्न 5.

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. बालक शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति(अ)

अ. बालकात् ब. बालकस्य स. बालकेन द. बालकाय

2. इदं शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति(अ)

अ. अस्याः ब. अनया स. अस्यै द. अस्याम्

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

2. बानर वृक्ष से गिरता है।

3. मैं घर से जा रहा हूँ।

4. वृक्ष से पत्ता गिरता हैं

5. रमेश पर्वत से गिरता है।

1.3.6 सम्बन्धः कारक-षष्ठी विभक्ति

षष्ठी शेषे 2/3/50।।

कारक प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः तत्र षष्ठीस्यात् । राज्ञः पुरूषः।।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते है। उस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

शेष अर्थात् वचा हुआ, प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण संज्ञा जहाँ नहीं हो वह शेष है । जैसे स्वस्वामिभाव सम्बन्ध जहाँ पर हो वहाँ पर षष्ठी विभाक्ति होती है ।

राज्ञः पुरूषः । राजा का पुरूष । यहाँ पर राजा स्वामी हैं और पुरूष स्व है। स्वस्वामिभाव सम्बन्ध मानकर षष्ठी शेषे से राजन् शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई ।

षष्ठी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**	**मूलशब्द**
बालकस्य	बालकयोः	बालकानाम्	पु0 बालक
अस्य	अनयोः	एषाम्	पु0 इदम्
कस्य	कयोः	केषाम्	पु0 किम्
तस्य	तयोः	तेषाम्	पु0 तत्
अस्याः	अनयोः	आसाम्	स्त्री इदम्
कस्याः	कयोः	कासाम्	स्त्री किम्
तस्याः	तयोः	तासाम्	स्त्री तत
तव	युवयोः	युष्माकम्	
मम	आवयोः	अस्माकम्	

अयं विद्यालयः कस्य अस्ति? यह विद्यालय किसका है?

अयं मम विद्यालयः अस्ति? यह मेरा विद्यालय हैं

तस्य गृहं कुत्र अस्ति? उसका घर कहा है

इदं पुष्पं कस्याः अस्ति? यह फूल किसकी है।

अयम् अस्याः पुत्रः अस्ति। यह इसका पुत्र है ।

अभ्यास प्रश्न 6 .

(1) बहुविकल्पात्मकाः प्रश्नाः

1. बालकशब्दस्य षष्ठी द्विवचनस्य रूपमस्ति

अ. बालकाभ्याम् ब. बालकानाम्

स. बालकयोः द. बालकेभ्यः

2. इदं शब्स्य स्त्रीलिंस्यैकवचनस्य रूपमस्ति

अ. अस्याः ब. अनया

स. अस्मै द. अस्मिन्

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनायें-

1. यह किसका घर है ।

2. यह राम का घर है।
3. राम के दो पुत्र थे।
4. यह पुस्तक रमेश की है।
5. यह नदी का जल है।

1.3.7 अधिकरण कारकम्-सप्तमी विभक्ति

आधारो अधिकरणम् 1/4/45।।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरण संज्ञं स्यात्।

कर्ता और कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म के द्वारा रहती है जैसे कटे आस्ते देवस्तः देवदत्त चटाई पर बैठा है यहाँ पर आस्ते में आसन (रहना) क्रिया, देवदत्त कर्ता के द्वारा कट में है इस लिए कट की अधिकरण संज्ञा हुई। अधिकरण संज्ञा होने के बाद "सप्तम्यधिकरणे च" से अधिकरण जो कर्ता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

सप्तमी विभक्ति का उदाहरण-

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	मूलशब्द
बलके	बालकयोः	बालकेषु	पु0 बालकः
अस्मिन	अनयोः	एषु	पु0 इदम्
तस्मिन	तयोः	तेषु	पु0 तत्
कस्मिन्	कयोः	कषुः	पु0 किम्
अस्याम्	अनयोः	आसु	स्त्री इदम्
तस्याम्	तयोः	तासु	स्त्री तत्
कस्याम्	कयोः	कासु	स्त्री किम्
मयि	आवयोः	अस्मासु	अस्मद्
त्वयि	युवयोः	युष्यासु	युस्मद्

अयं बालकः कुत्र तिष्ठति। यह बालक कहाँ बैठता है।
अयं बालकः गृहे तिष्ठति। यह बालक घर में बैठता है।
कस्याः ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति। किसके गले में आभूषण है।
साबाला कस्मिन् स्थाने तिष्ठति। वह बालिका किस स्थान में बैठती है।
सा बाला द्वारे तिष्ठति। वह बालिका द्वार पर बैठती है।
त्वं कस्याम् उपविशाति। तुम कहाँ पर बैठे हो ?
तस्यां वाटिकायां बालकः अस्ति। उस वाटिका में बालक है।
अस्यां वाटिकायां बालिका अस्ति। इस वाटिका में बालिका है।

अभ्यास प्रश्न 7 .

(1) बहुविकल्पात्मक प्रश्नाः

1. बालकशब्दस्य सप्तम्येकवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकस्य ब. बालके
स. बालाकानाम् द. बालकेषु

2. इदं शब्दस्य सप्तमीबहुवचनस्य स्त्रीलिंगस्य रूपमस्ति-

अ. अनयोः ब. आसु

स; तस्या द; अस्य

3. युस्मद् शब्दस्य सप्तम्येक वचनस्य रूपमस्ति-

अ. तुभ्यम् ब. त्वया

स. अस्य द. त्वयि

(3) संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

1. वृक्ष पर कोयल बैठी है।
2. उस स्त्री के गले में आभूषण है।
3. हम लोग विद्यालय में पढ़ते है।
4. मै उस घर में बैठा हूँ।
5. उस पुस्तकक में चित्र है।

संस्कृत व्याकरण शास्त्र में वाच्य के तीन भेद माने गये है।

1.कर्तृवाच्य 2. कर्मवाच्य 3. भाववाच्य। सकर्मकधातुओं के रूप दो वाच्यो में होते है- कर्तृवाच्य में तथा कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं के रूप दो वाच्यों में होते है। कर्तृवाच्य और भाववाच्य में।

1. कर्तृवाच्य- कर्तृवाच्य में कर्ता प्रधान होता हैं और क्रिया कर्ता के अनुसार चलती है। यदि कर्ता एकवचन हैं तो क्रिया भी एकवचन होती है, और कर्ता प्रथम पुरूष का है तो क्रिया भी प्रथम पुरूष की होती है- जैसे रामः ग्रामं गच्छति यहाँ पर कर्ता राम है, क्रिया गच्छति है और कर्म ग्राम है कर्ता एकवचन तथा प्रथम पुरूष है तो क्रिया भी एकवचन तथा प्रथम पुरूष की है। इसके अनुसार अन्य उदाहरण देखें-

वह कहता है। सः वदति

तुम दोनो बोलते है। युवाम् वदथः।

तुम लोग कहते हो। यूयं, वदथ।

तुम लोग हसते हो। यूयं हसथ।

तुम ईश्वर को नमस्कार करते हो। त्वं ईश्वरं नमसि।

तुम दोनों भोजन पकाते हो। युवां भोजनं पचथः।

तुम लोग पुस्तकों को पढ़ते हो। यूयं पुस्कानि पठथ।

मै बोलता हूँ- अहं वदामि।

हम दोनों बोलते है। आवां वदावः।

हम लोग पढ़ते है। वयं पठामः।

हम लोग पत्र लिखते हैं। वयं पत्रं लिखावः।

इसी प्रकार कर्तृवाच्य का अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए।

कर्मवाच्य में कर्म मुख्य होता है और कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरूष वचन लिंग का प्रयोग किया जाता है। कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति, कर्म में प्रथमा विभक्ति और क्रिया कर्म के अनुसार होती है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य में जो सार्वधातुकलकार (लट्लकार, लोट्लकार, लङ् कार और विधिलिङ्) होते है। उन लकारों में धातु और प्रत्यय के बीच में य लगा दिया जाता है और धातु का रूप सदा आत्मने पद में ही चलता है। आर्धधातुक लकारों में 'य' नहीं लगाया जाता हैं वहाँ पर स्यते या इष्यते लगाया जाता है। कर्मवाच्य में या भाववाच्य में रूप कैसे बनाये जाते है। वह संक्षेप में बता रहे है- भू धातु से लट्लकार लाते है भू लट् ऐसा बनता है अब यहाँ पर शंका होती है कि लट् के स्थान पर आत्मने पदि प्रत्यय लावे या परस्मैपदि प्रत्यय। इस शंका को निवारण करने के लिए एक सूत्र है भावकर्मणोः इस सूत्र से भाव और कर्म में जो प्रत्यय होते है वह हमेशा आत्मने पदि प्रत्यय होते है तो यहाँ पर प्रथम पुरूष एकवचन की विवक्षा में त प्रत्यय होगा। भू त ऐसी स्थिति हुई। अव यहाँ पर तिङशित् सार्वधातुकं से "त" की सार्वधातुक संज्ञा हुई और सार्वधातुक के यक् से यक् प्रत्यय होता है तो स्थिति भू+यक्+त बनती है। ककार की हलन्त्यम से इत्संज्ञा तस्य लोप से लोप होकर य मात्र वचता है। भू+य+त बनता है। अब यहाँ पर सार्वधातु कार्धधातुकयों इस सूत्र से भू को गुण प्राप्त था किनतु यक मे कित्व होने के कारण क्ङितिच सूत्र गुण का निषेध होता है और टितआत्मने पदानां टेरे सूत्र से त का जो अ है उस अ को एत्व करने पर 'ते' बनता है मिलाने पर भूयते प्रयोग बनता है। भाववाच्य में भूधातु का एक ही प्रयोग बनता है अन्य पुरूष वचन में प्रयोग नहीं बनते है। क्योंकि इसमें कर्म नहीं होता है। उदाहरण त्वया यया अन्यैश्च भूयते (तुझसे मुझसे या अन्यों से हुआ जाता है) तेन भूयते (उससे होता है।) तैः भूयते (उन लोगो के द्वारा हुआ जाता है।) इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिए

कर्मवाच्य के उदाहरण-

मया पुस्तकं पठ्यते। मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।

मया, त्वया,युस्मभि: गृहंगम्यते। हमारे, तुम्हारे या तुम लोगो के द्वारा घर जाया जाता है।

मया फलं खाद्यते। मेरे द्वारा फल खाया जाता है।

मया फलानि खाद्यन्ते। मेरे द्वारा फलों को खाया जाता है।

अस्माभिः पुस्तकं लिख्यते। मेरे द्वारा पुस्तक लिखा जाता है।

मया पुस्तकानि लिख्यन्ते। मरे द्वारा पुस्तके लिखे जाते हैं।

मया चलचित्रं दृश्यते। मेरे द्वारा चलचित्रं देखा जाता है

बालकेन बालिका दृश्यते। बालक के द्वारा बालिका देखी जाती है।

गन्त्रा ग्रामः गम्यते। जानेवाले के द्वारा गावं जाया जाता हैं।

अध्येतृभिः पाठाः पाठ्यन्ते। अध्येताओं के द्वारा पाठ पढे जाते हैं।

मातृभि भोजन पच्यते। माताओं के द्वारा भोजन पकाया जाता है।

पुस्तकस्य कर्ता लेखः लिख्यते। पुस्तक रचने वाले के द्वारा लेख लिखे जाता है।

पित्रा ग्रामः गम्यते। पिता के द्वारा गांव जाया जाता है।

द्रष्टृभि मयुराः दृश्यन्ते। देखने वाले क द्वारा मयुर देखे जाते है।

राजपुरूषभिः दृर्जनाः नियन्ताम्। राजपुरूषों के द्वारा दुर्जनों को लाया जाय।

क्तवतवतुनिष्ठा निष्ठा प्रत्यय में भी कर्मवाच्य होता है। भूत काल में क्त (त) क्तवतु (तवत्) कृत प्रत्यय होते हैं। दोनों का क्रमशः त,तवत् शेष रहता है। त प्रत्यय कर्म वाच्य तथा भाववाच्य में होता है और तवत् प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है।

क्त प्रत्यय जब सकर्मक धातु से कर्मवाच्य में होगा तो कर्म में प्रथमा कर्ता में तृतीया और कर्म के अनुसार क्रिया का विभक्ति, लिंग, वचन का प्रयोग किया जाता है। कर्ता के अनुसार नहीं। अकर्मक धातु से क्त (त) प्रत्यय होगा तो कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी और नपुंसक लिग एकवचन ही होगा। त प्रत्ययान्त क्रिया शब्द कर्म के अनुसार पुलिंग होगा तो उसके रूप राम के समान चलेंगे, स्त्रीलिंग होगा तो रमा के समान चलेंगे, स्त्रीलिंग होगा तो रमा के समान नपुंसकलिंग ज्ञान के समान होगा। जैसे-

पुंलिंग में मया ग्रन्थः पठितः। (मेरे द्वारा ग्रन्थ पढ़ा जाता है)

मया ग्रन्थों पठितौ। (हमारे द्वारा दो ग्रन्थ पढ़े जाते है)।

मया ग्रन्था: पठिता:। हमारे द्वारा ग्रन्थ पढे जाते है।

स्त्रीलिंग में त्वया बालिका दृष्टा। (तम्हारे द्वारा बालिका देखी गयी।)

त्वया बालिकाः दृष्टा: (तुम्हारे द्वारा बालिकायें देखी गयीं।)

नपुंसकलिंग में त्वया फलं खादितम्। (तुम्हारे द्वारा फल खाये गये)

युष्माभिः फलानि खादितानि (तुम लोगों के द्वारा फले खाये गये।)

अभ्यास प्रश्न. 8

बहुविकल्पात्मकाः प्रश्न—

1-बालक शब्दस्य द्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकम् ब. बालकेन स. बालकैः द. बालकौ

2-इदं शब्दस्य द्वितीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. इमम् ब. अनेन स. इमौ द. इमान्

3. संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. राम गाय से दूध दूहता है।
2. सुरेश राम से प्रश्न पूछता है।
3. गणेश चावल से भात पकाता है।
4. राम गर्गों से सौ रूपये दण्ड लगाता है।
5. सुरेश गॉव से बकरी को ले जाता है।

अभ्यास प्रश्न. 9

बहुविकल्पात्मक प्रश्न—

1. बालक शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति

अ. बालकात् ब. बालकस्य स. बालकेन द. बालकाय

2. इदं शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति

अ. अस्याः ब. अनया स. अस्यै द. अस्याम्

3. संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

2. बानर वृक्ष से गिरता है।
3. मैं घर से जा रहा हूँ।
4. वृक्ष से पत्ता गिरता हैं
5. रमेश पर्वत से गिरता है।

1.4 सारांश

व्याकरण शास्त्र में अजन्त पुंल्लिंग आदि छः प्रकारणों में सु आदि इक्कीस प्रत्ययों का विधान किया गया है। इन सात (सु, औ, जस् इति प्रथमा। अम् औट्, शस् इति द्वितीया। टा, भ्याम्, भिस् इति तृतीया। ङे, भ्याम्, भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि, भ्याम् भ्यस् इति पंचमी। ङस्, ओस् आम इति षष्ठी। ङि ओस, सुप इति सप्तमी प्रत्यययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया है। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होती है। यह बात इस कारक प्रकरण में बतायी जायेगी। अतः इस प्रकरण को विभक्त्यर्थ प्रकरण कहते हैं। कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी ह। किन्तु यहाँ पर कारक शब्द पारिभाषिक है। करोति क्रियां निवर्तयतीति कारकम् अथवा क्रियान्वयितवम कारकम् अथवा साक्षात् क्रिया जनकं कारकम् जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं। ये कारक छः है- कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

अर्थात् कर्ता कारक, कर्मकारक, करण कारक, सम्प्रदान कारक, अपादान कारक और अधिकरण कारक। सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया है। क्योंकि षष्ठी विभक्ति को छोड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है। जैसे रामः पठति में रामः कर्ता का पठति क्रिया के साथ साक्षात सम्बन्ध है और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त है, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमा विभक्ति रामः यह कारक हुआ। इसी प्रकार इस कारक प्रकरण में छः कारक एवं सातों विभक्तियों का वर्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

सुबन्त शब्द - सुबन्त शब्दों के साथ सात विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय लगते हैं।

विभक्तियां- संस्कृत व्याकरण में सात विभक्तियाँ होती हैं सम्बोधन की गणना प्रथमा विभक्ति में ही होती हैं। जैसे— रमेशः पुस्तकं पठति- रमेश पुस्तक पढता है।

संख्यार्थवाचक - नाप, तौल की वस्तुए।

अकथितं च- दुह्, याच् पच्, दण्ड रूध, प्रच्छ चि , ब्रू, शास, जि, मथ् मुष, नी, हृ कृष्, वह्, इन सोलह धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादानादि विभक्ति के रूप में अविवक्षित जो कारक उनकी कर्म संज्ञा होती है इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते हैं। क्योंकि इसमें दो कर्म है।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1. 1.ब 2. द

संस्कृत अनुवाद - 1. माता भोजनं पचति 2. गीता पत्रं लिखति
3. ते बालका: धावन्ति 4. अहं गच्छामि 5. युवाम् गच्छथ:

अभ्यास प्रश्न 2 . 1.द 2. द

संस्कृत अनुवाद- 1. . राम: गां पय: दोग्धि। 2. सुरेश: रामं प्रश्नं पृच्छति।
3. गणेश: तण्डुलान् ओदनं पचति। 4. राम: गर्गान् शतं दण्डयति।

5. सुरेश: ग्रामम् अजां नयति।

अभ्यास प्रश्न 3 . 1.ब 2. स 3.द

संस्कृत अनुवाद-1. रमेश: पुस्तकेन पठति। 2. तौ द्विचिक्रकया गृहं गच्छत:।3.. अहं लेखन्या लिखति। 4. सुरेश: वाहनेन गृहं गच्छति। 5. त्वं केन लिखसि ?

अभ्यास प्रश्न 4 . 1.अ 2. स 3. द

संस्कृत अनुवाद-1. विप्राय गां ददाति। 2. यजमान: गुरवे वस्त्रं ददाति। 3. अहं बालकेभ्य: पुस्तकं ददाति। 4. तस्मै छात्राय द्रव्यं देहि। 5. तेभ्य: वस्त्रम् अस्ति।

अभ्यास प्रश्न 5 . 1.अ 2. अ

संस्कृत अनुवाद-1. बानर: वृक्षात् पतति। 2. अहं गृहं गच्छामि। 3. वृक्षात् पत्रं पतति। 4. रमेश: पर्वतात् पतति।

अभ्यास प्रश्न 6 . 1.स 2. स

संस्कृत अनुवाद-1. इदं कस्य गृम् अस्ति। 2. इदं रामस्य गृहम् अस्ति। 3. रामस्य दौ पुत्रौ स्त:। 4. इदं पुस्तकं रमेशस्य अस्ति। 5. इदं नद्या: जलम् अस्ति।

अभ्यास प्रश्न 7 . 1. ब 2. ब 3. द

संस्कृत अनुवाद- 1. वृक्षे कोकिला तिष्ठति 2. तस्या:स्त्रिया: ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति 3. वयं विद्यालये पठाम: 4. अहं तस्मिन् गृहे तिष्ठामि

5. तस्मिन् पुस्तके चित्रम् अस्ति।

अभ्यास प्रश्न 8 . 1.द 2. द

संस्कृत अनुवाद- 1. राम: गां पय: दोग्धि। 2. सुरेश: रामं प्रश्नं पृच्छति।

3. गणेश: तण्डुलान् ओदनं पचति। 4. राम: गर्गान् शतं दण्डयति।

5. सुरेश: ग्रामम् अजां नयति।

अभ्यास प्रश्न 9 . 1.अ 2. अ

संस्कृत अनुवाद-1. बानर: वृक्षात् पतति। 2. अहं गृहं गच्छामि। 3. वृक्षात् पत्रं पतति। 4. रमेश: पर्वतात् पतति।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित,गोपालदत्तपाण्डेय चौखम्बा सुरभारती , वाराणसी।
2.लघुसिद्धान्तकौमुदी, वरदराजाचार्य ,भीमसेन शास्त्री, भैमीप्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली।
3.अनुवाद चन्द्रिका, हरेकान्तमिश्रः हरेकान्तमिश्र चौखम्बा अमर प्रकाशन वाराणसी।
4.प्रौढमनोरमा, भट्टोजिदीक्षित, द्वारिका प्रसाद दिवेदी, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी।
5.अनुवादचन्द्रिका, श्री कपिलदेव द्विवेदी, कपिलदेव द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती वारणसी।
6. कारक-प्रकरणम् (सिद्धान्तकौमुदी –पं.ज्योतिस्वरूप शास्त्री) प्रकाशकः - विश्वविद्यालय प्रकाशनम्, वाराणसी, उ.प्र.।
7. विभक्तिवल्लरी, संस्कृतभारती, बेङ्गलूरू।
8. संस्कृतस्वाध्यायः - राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली।

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

1.लघुसिद्धान्तकौमुदी, वरढ़राजाचार्य, भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली।

2.अनुवाद चन्द्रिका, हरेकान्तमिश्रः, हरेकान्तमिश्र,चौखम्बा प्रकाशन।

3. प्रौढरचनानुवादकौमुदी – आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।

4. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका - चक्रधर नौटियाल 'हंस' शास्त्री – मोतीलाल बनारसीदास ।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अकथितं च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।

2. प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

3. कारक किसे कहते है ? वर्णन कीजिये।

4. विभक्ति किसे कहते है ? विस्तार से वर्णन कीजिये।

5.अकथितं च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।

इकाई 2 समास परिचय

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 समास अर्थ एवं प्रकार
2.4 केवल समास
2.5 अव्ययीभाव समास
2.6 तत्पुरुष समास
2.7 बहुब्रीहि समास
2.8 द्वन्द्व समास
2.9 सारांश
2.10 पारिभाषिक शब्दावली
2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावन

प्रिय विद्यार्थियों !

संस्कृत भाषा को जानने के लिए समास और सन्धि के ज्ञान का होना नितान्त आवश्यक है। संस्कृत भाषा में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है जो सन्धि और समास से रहित हो। सन्धि और समासभाषा की स्वभाविक प्रवृतियों में गिने जाते है । समास एक संज्ञा है । 'अनेकपदानामेकपदीभवनं समासः ।' अनेक पद मिलकर एकपद होना समास है । 'समसनं समासः' अर्थात संक्षिप्त होने को समास कहते हैं। दो या दो से अधिक शब्द जब एकपद, एक अर्थ वाले बन जाते हैं, उसे समास कहते हैं। जैसे-राज्ञ पुरुषः = 'राजपुरुषः'- राजा का पुरुष। इस प्रकार दो या दो से अधिक पादों को एक पद के रूप रखना समास कहलाता है । 'एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थानेक पद समूहः समासः ।'समास के पाँच भेद होते हैं- केवल समास, अव्ययीभाव समास, तत्पुरुष समास, बहुव्रीहि समास और द्वन्द्वः समास। प्रस्तुत इकाई में आप समास के इन पाँचों भेदों का भली-भांति अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि-

- समास का अर्थ एवं उसकी परिभाषा।
- समास के पांचों भेदों के बारे में।
- समासों में केवल समास की उपयोगिता।
- उपसर्गों के योग से कौन सा समास बनता है।
- विभक्ति के अर्थ में कौन सा समास होता है।
- कर्मधारय का भेद, द्विगु समास किन सूत्रों में वर्णित है।
- द्वन्द्व समास का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है।

2.3 समास अर्थ एवं प्रकार

समास और सन्धि के ज्ञान के बिना संस्कृत का ज्ञान नही हो सकता। अतः संस्कृत को जानने के लिए समास और सन्धि का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। आइये समास के विषय में थोड़ी चर्चा करते हैं। समास एक संज्ञा है। **अनेकपदानामेकपदीभवनं समासः ।** अनेक पद मिलकर एकपद होना समास है। **समसनं समासः**अर्थात संक्षिप्त होने को समास कहते हैं। दो या दो से अधिक शब्द जब एकपद, एक अर्थ वाले बन जाते हैं, उसे समास कहते हैं। जैसे **राज्ञ पुरुषः = 'राजपुरुषः'**–राजा कापुरुष। इस प्रकार दो या दो से अधिक पादों को एक पद के रूप रखना समास कहलाता है। **एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थानेक पद समूहः समासः ।**

समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः

स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः ।।1।।

प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभवो द्वितीयः ।।2।।

प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः ।

तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः । कर्मधारयभेदो द्विगुः ।।3।।

प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः ।।4।।

प्रायेणभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ।।5।।

समास के पाँच भेद होते हैं । **केवल समास, अव्ययीभाव समास, तत्पुरुष समास, बहुव्रीहि समास** और **द्वन्द्वः समास ।**

1. केवल समास-इस समास में समास तो होता है लेकिन समास विशेष की संज्ञा (नाम) नही होती इसीलिए इसे केवल समास कहा जाता है । इसका उदाहरण है- **भूतर्वः**

2. अव्ययीभाव समास-इस समास में प्रायः **अव्यय** पूर्व में होता है ।इस समास में पूर्वपद (पहले वाला) की प्रधानता होती है । समास होने के बाद पूरा शब्द **अव्ययीभावश्च** से **अव्यय** बन जाता है । इसका उदाहरण है- **उपकृष्णम्-** कृष्ण के समीप

3. तत्पुरुष समास- इस समास में उत्तरपद (बाद वाला) या परपद (दूसरा या अंतिम) पद का अर्थ प्रधान होता है । इसका उदाहरण है- **कृष्णसर्पः**

कर्मधारय समास-तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है । जहाँ विशेष्य और विशेषण का समास होता है, उसे कर्मधारय कहते हैं । यह तत्पुरुष का ही विशेष प्रकार है, क्योंकि इस समास में उत्तरपद का अर्थ प्रदान होता है । जैसे- **नीलोत्पलम्- नीलं च तत् उत्पलं च-**(नीला कमल) यहाँ नील विशेषण और उत्पल विशेष्य का समास होता है। इसीलिए यह कर्मधारय समास है ।

द्विगु समास-कर्मधारय समास का एक भेद द्विगु समास है । विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु कहते हैं । जैसे- **पञ्चगवम्- पञ्चानां गवां समाहारः,** पाँच गौओं का समाहर- यहाँ विशेषण पञ्च संख्यावाचक है, इसीलिए यह द्विगु समास है ।

4. बहुव्रीहि समास- इस समास में अन्य पद का अर्थ प्रधान होता है । जैसे **पीतानि अम्बराणि यस्य सः पीताम्बरः**पीले कपड़े हैं जिसके वह **कृष्ण** । समास होने के बाद यहाँ पीत का अर्थ भी प्रधान नहीं है और अम्बर का अर्थ भी प्रधान नहीं है लेकिन अन्य पदार्थ**कृष्ण** का अर्थ प्रधान हो गया है । इसीलिए बहुव्रीहि समास अन्यपदार्थ प्रधान माना जाता है ।

5. द्वन्द्व समास- इस समास में उभय अर्थात दोनों पदों के अर्थ प्रधान होते हैं । उभयपदार्थप्रधान द्वन्द्व समास होटा है । इसका उदाहरण है- **रामश्च कृष्णश्च-रामकृष्णौ** आदि ।

समास की प्रक्रिया में ध्यान रखने योग्य बातें-

1- समास हमेशा समर्थ अर्थात् परस्पर आकांक्षा वाले पदों में ही होता है ।

2- समास में लौकिक एवं अलौकिक दो प्रकार के विग्रह होते हैं ।

3- अलौकिक विग्रह में समास करने वाला सूत्र लगता है ।

4- समास करने के लिए किसी सूत्र अथवा वार्तिक की प्रवृत्ति होती है ।

5- समास करने के बाद सम्पूर्ण समुदाय की कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

6- समास के बाद दो शब्दों में किस का पूर्वनिपात अर्थात् पूर्व में प्रयोग हो, यह निर्णय किया जाता है । जिसमें उपसर्जनसंज्ञा और उपसर्जनसंज्ञक का पूर्वनिपात आदि का समावेश है ।

2.4 केवल समास

समर्थ परिभाषासूत्रम्—

907.समर्थः पदविधिः 2।1।1।।

पदसम्बन्धी यो विधिः समर्थाश्रितो बोध्यः ।

पद सम्बन्ध की जो विधि हो, वह समर्थ पदों की ही होती है अर्थात जहाँ सामर्थ्य होगा, वहीं पदविधि होती है । जहाँ कहीं भी पदों से सम्बन्धी कार्य कहा जायेगा, वह कार्य समर्थ पदों के आश्रय पर ही होगा, असमर्थ पदों के नहीं । पद अर्थात सुबन्त को उदेश्य बनाकर जो विधि होती है, उसे पदविधि कहते हैं । समास आदि पदविधियाँ हैं क्योंकि ये पदों को उद्देश्य करके होती हैं । सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, सुबन्त पद होता है, इसलिए समास पदाविधि है । पदाविधि होने से समास उन्हीं पदों का होगा, जिनका परस्पर सामर्थ्य होगा ।

सामर्थ्य दो प्रकार का होता है— व्यपेक्षा और एकार्थीभाव ।

वाक्य में परस्पर अन्वय होने की योग्यता रूप जो सामर्थ्य होता है, उसे व्यपेक्षा रूप सामर्थ्य कहा जाता है ।जैसे **'राज्ञः पुरुषः' ।** समास हो जाने के बाद समस्त पदों के द्वारा जो विशिष्ट अर्थ की उपस्थिति होती है, उसे एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य कहा जाता है । जैसे **'राजपुरुषः' ।** इत्यादि वृत्ति (समास आदि) में ही होती है ।

जहाँ पदों में सामर्थ्य नहीं होता है, वहाँ समास आदि पदविधि नहीं होती । जैसे- **चतुरस्य राज्ञः पुरुषः** –यहाँ 'राज्ञः' और 'पुरुषः' का समास नहीं होता क्योंकि 'राज्ञः' का संबन्ध चतुरस्य के साथ भी है । इसलिए उस बाह्य पद के प्रति साकांक्ष होने के कारण यहाँ 'राज्ञः'और 'पुरुषः' का सामर्थ्य नहीं, अतः इनका समास नहीं होता ।

'समास' इत्यधिकारसूत्रम्

908. प्राक्कडारात्समासः 2।1।3।।

'कडार कर्मधारये' इत्यतः प्राक् **समास** इत्यधिक्रियते ।

'कडाराः कर्मधारये 2।2।38।।' इस सूत्र से पूर्व तक इस का अर्थात् समासः इस पद का अधिकार चलता है । अर्थात् सूत्र से पूर्व सब सूत्र समास का विधान करते हैं ।

समास विधिसूत्रम्—

909. सह सुपा 2।1।4।।

सुप् सुपा सह वा समस्यते । समाससत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् ।

परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धिसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः ।

वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा ।

तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः ।

भूतेपूर्वे चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः ।

वार्तिकं- **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च ।** वागार्थौ इव वागर्थाविव ।

सह सुपेति-सुबंन्त का सुबंन्त के साथ समास होता है । इस सूत्र में 'सुब् आमंत्रिते पराङ्गवत् स्वरे2।1।2।।' इस पूर्व सूत्र से 'सुप्' इस प्रथमान्त पद की अनुवृति आती है । तृतीयान्त 'सुपा' पद है । प्रत्यय होने के कारण 'प्रत्यय ग्रहणम्' इस परिभाषा के बल से तदन्त का ग्रहण होता है ।

समासत्वादिति- समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा होगी। तब सुप् विभक्ति प्रत्ययों का 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः 2|4|71||' सूत्र से लोप हो जाता है।

परार्थाभिधानं वृतिः - परार्थबोधन कराने को वृत्ति कहते हैं। जब पद अपने स्वार्थ को छोड़कर एक विशिष्ट अर्थ को कहने लग जाते हैं तो उसे विद्वानों ने वृत्ति कहा है। ये वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं- **कृदन्तवृत्ति, तद्धितवृति, समासवृत्ति, एकशेषवृत्ति और सनाद्यन्तधातुवृत्ति।**

वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः। स च लौकिकोऽलौकिकश्च- वृत्ति के अर्थ का बोध कराने के लिए जो वाक्य होता है उसे विग्रह कहते हैं, वह लौकिक और अलौकिक दो प्रकार का होता है।

लौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग होता हैं। जैसे- 'राजपुरुषः' का 'राज्ञ पुरुषः'। इसका लोक में प्रयोग होता है।

अलौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता। जैसे- 'राज्ञपुरुषः' का 'राजन ङस् पुरुष सु'। इसका लोक में प्रयोग नहीं होता, अतः इसे अलौकिक विग्रह कहा जाता है, इसकी कल्पना व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया के लिए की गई है।

भूतपूर्वः (जो पहले हुआ हो) पूर्वं भूतः यह लौकिक विग्रह है। पूर्व अम् भूत सु यह अलौकिक विग्रह है। अलौकिक विग्रह में पूर्व के बाद अम् विभक्ति है और भूत के बाद सु विभक्ति है। लौकिक विग्रह में विभक्ति को जोड़कर प्रयोग किया गया है और अलौकिक विग्रह में विभक्ति को अलग ही रखा गया है। पूर्व अम् भूत सु इस आलौकिक विग्रह में समास करने के लिए सूत्र लगा- **सह सुपा।** सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। सुबन्त है- पूर्व अम्, इसके साथ एकार्थीभाव सामर्थ्य रखने वाला समर्थ सुबन्त है- भूत सु। इस सूत्र से 'पूर्व अम् भूत सु' का समास हो गया अर्थात् यह पूरा समुदाय समास संज्ञा को प्राप्त हो गया। समास करने के पश्चात 'पूर्व अम् भूत सु' इस समुदाय कीकृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई, 'पूर्व अम् भूत सु' यह पूरा समुदाय प्रातिपदिक कहलाया।

इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च। यह वार्तिक है। इव शब्द के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता। यह सूत्र समास करने के साथ-साथ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से प्राप्त विभक्ति के लुक् का निषेध भी करता है।

वागर्थाविव। (वाणी और अर्थ की तरह) वागर्थौ इव यह लौकिक विग्रह हैऔर वागर्थ औ इव यह अलौकिक विग्रह है। अलौकक विग्रह में समास करने के लिए वार्तिक लगा- **इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च।** इसके द्वारा समास होने के बाद वागर्थ औ इव की प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और बीच में विद्यमान औ विभक्ति का सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से लुक् प्राप्त हुआ तो इसी वार्तिक के द्वारा उसके अलक् का विधान हुआ। वागर्थौ इव बना। औकार के स्थान पर एचोऽयवायावः से आव् आदेश होकर वागर्थाविव बन गया।

2.5 अव्ययीभाव समास

आदिकारसूत्रम् –

910. अव्ययीभावः 2|1|5||

अधिकारोऽयं प्राक्तत्पुरुषात्।

समासविधायकं विधिसूत्रम्

911. अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्याथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु 2।1।6।।

विभक्त्यर्थाषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ- **'हरि ङि अधि' इति स्थिते-**

अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं- प्रथम पद प्रायः अव्यय रहता है और द्वितीय पद संज्ञा शब्द। दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं।

अव्ययीभाव समास में अव्यय प्रायः निम्न अर्थों में होते हैं-

विभक्ति, समीप,समृद्धि,व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता),अभाव,नाश, अनुचित, शब्द की अभिव्यक्ति, पश्चात्, यथा का भाव, क्रमशः, एक साथ होना,सादृश्य, संपत्ति,साकल्यऔर**अन्त।** प्रायः जिस समास का विग्रह न हो उसे नित्य समास कहते हैं। यहाँ लौकिक विग्रह से तात्पर्य है। अलौकिक विग्रह सभी समासों में होता है।

उपसर्जन संज्ञा विधायकं संज्ञासूत्रम्-

912. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1।2।43।।

समास शास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

समास करने वाले सूत्र में जो पद प्रथमान्त हो, उस के द्वारा विग्रह वाक्य में स्थित जिस पद का बोध हो वह उपसर्जन संज्ञक हो। जैसे- प्रकृत में समास शास्त्र है 'अव्ययं विभक्ति' इत्यादि सूत्र, इसमें 'अव्ययम्' पद प्रथमान्त आया है। इसके द्वारा 'हरि ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह वाक्य में स्थित 'अधि' पद का ज्ञान होता है, इसलिए इसकी उपसर्जन संज्ञा हुई।

पूर्वप्रयोगविधायकं विधिसूत्रम्

913. उपसर्जनं पूर्वम् 2।2।30।।

समासे उपसर्जनं प्राक्यप्रयोज्यम्। इत्यधे: प्राक्प्रयोगः।

सुपो लुक्, एकदेशविकृतन्यायस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः।

अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक्। अधिहरि।

समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग होता है। इस सूत्र के द्वारा 'अधि' पद का पहले प्रयोग होगा। पहले यह देखना चाहिये कि किस सूत्र से समास होता है, उस सूत्र में प्रथमान्त पद कौन सा है। इसके बाद अलौकिक विग्रह देखना चाहिये कि समास शास्त्रस्थ प्रथमान्त पद से किसका ग्रहण होता है, बस उस पद को पहले रखना चाहिये।

सुप् इति— सुप् का लुक् हुआ अर्थात् 'अधि हरि ङि' यहाँ अधि का पहले निपात होने पर प्रातिपदिक के अवयव सुप् ङि का '724 सुपो धातुप्रातिपादिकायो: 2।4।71।। से लोप् होकर 'अधिहरि' शब्द बना।

एकदेशेति- एकदेश जिसका विकृत होता है, वह अन्य नहीं होता यानि एकदेशविकृत न्याय से 'अधिहरि' की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। सुप् का लोप होने पर प्रातिपदिक विकृत हो गया। परन्तु एक देशविकृत न्याय से उसे प्रातिपदिक मानकर सु आदि किया गया।

नपुंसकलिङ्गविधायकं संज्ञासूत्रम्

914. अव्ययीभावश्च 2।4।18।।

अयं नपुंसकं स्यात्। गा: पातीति गोपास्तस्मिन्निति- अधिगोपम्।

अव्ययीभाव समास होने के बाद सिद्ध शब्द नपुंसकलिंग वाला हो जाता है।

अधिगोपम्- 'गोपि' इस लौकिक विग्रह और 'गोपा ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति' इत्यादि सूत्र से विभक्ति सप्तमी के अर्थ में वर्तमान अधि अव्यय का सुबन्त 'गोपी' के साथ समास हुआ। समास शास्त्र में 'अव्ययम्' प्रथमान्त पद के द्वारा बोध्य होने से 'अधि' को 'प्रथमा-निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' सूत्र के द्वारा उपसर्जन संज्ञा होने के कारण पहले प्रयोग हुआ। फिर प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् ङि का लोप होकर 'अधिगोपा' शब्द बना। अव्ययीभाव होने से प्रकृत सूत्र से यह नपुंसकलिंग हुआ।

सुपो लुङ्निषेधविधायक अमादेशविधायकं च विधिसूत्रम्

915. नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः 2।4।83।।

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात्।

अदन्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लुक् नहीं होता साथ ही पंचमी विभक्ति को छोड़कर के अन्य विभक्तियों के स्थान पर अम् आदेश होता है।

'अम्'आदेशविधिसूत्रम्

916 तृतीया-सप्तम्योर्बहुलम् 2।4।84।।

अदन्ताद् अव्ययीभावात् तृतीया-सप्त्म्योर्बहुलम् 'अम्' भावः स्यात्। उपकृष्णम्, उपकृष्णेन। मद्राणां समृद्धिः, सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिः-दुर्यवनम्। मक्षिकाणाम् अभावः-निर्मक्षिकम्। हिमस्याऽत्ययः- अतिहिमम्। निद्रा सम्प्रति न युज्यत इति- अतिनिद्र्म। हरिशब्दस्य प्रकाशः इति हरि। विष्णोः पश्चाद् अनुविष्णु। योग्यता- वीप्सा- पदार्थाऽनतिवृति-सादृश्यानि यथार्थाः-रूपस्य योग्यमनुरूपम्, अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्, शक्तिमनतिक्रम्य- यथाशक्ति।

अदन्त अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी के स्थान पर बहुल से अम् आदेश होता है।

1. **किसी विभक्ति का अर्थ-** जैसे अधि+हरि (हरौ इति) = अधिहरि (हरी के विषय में)
2. **समीप का अर्थ-**उपकृष्णम्, उपकृष्णेन- (कृष्णस्य समीपम्) इस लौकिक विग्रह एवं 'कृष्ण ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह से समीप अर्थ में वर्तमान उप अव्यय का 'कृष्ण ङस्' इस सुबन्त के साथ 'अव्ययं विभक्ति' से समास हुआ। तब उपकृष्णम् शब्द बना। इसी प्रकार से- उप+गङ्गा अर्थात (गङ्गायाः समीपमिति) = उपगङ्गाम् (गङ्गा के समीप)
3. **समृद्धि का अर्थ-** जैसे सु+मद्रम् (मद्राणां समृद्धि:) = सुमद्रम् (मद्रदेश के लोगों की समृद्धि) यहाँ समृद्धि अर्थ में वर्तमान सु अव्यय का 'मद्राणाम्' इस सुबंन्त के साथ समास हुआ।
4. **व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) का अर्थ-** जैसे दुर्+यवनम् (यवनानां व्यृद्धि:) = दुर्यवनम् (यवनों की ऋद्धि का आभाव) यहाँ व्यृद्धि अर्थ में वर्तमान दुर् अव्यय का 'यवनानां' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।
5. **अभाव का अर्थ-** जैसे निर्+मक्षिकम् (मक्षिकाणाम् अभावो) = निर्मक्षिकम् (मक्खियों का अभाव) यहाँ अभाव अर्थ में वर्तमान निर् अव्यय का 'मक्षिकाणाम्' सुबंन्त के साथ समास हुआ।
6. **अत्यय (विनाश) का अर्थ-**जैसे हिमस्यात्ययोऽ**ति-हिमम्(**बर्फ का नाश) यहाँ नाश अर्थ में वर्तमान अति अव्यय का समास हुआ।

7. **असंप्रति (अनौचित्य) का अर्थ-** जैसे अति+निद्रा (निद्रा संप्रति न युज्यते इति) = अतिनिद्रम् (इस समय निद्रा का उचित नहीं) यहाँ असंप्रति अर्थ में वर्तमान 'अति' अव्यय का 'निद्रा' इस सुबन्त के साथ समास होने पर 'हस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व होकर रूप सिद्ध हुआ।
8. **शब्द प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश)का अर्थ-** जैसे इति+हरि (हरि शबदस्य प्रकाशः) = इतिहरि (हरि शब्द का प्रकाश या प्रादुर्भाव) यहाँ प्रकाश अर्थ में वर्तमान 'इति' अव्यय का 'हरेः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।
9. **पश्चात अर्थ-** जैसे अनु+विष्णु (विष्णोः पश्चात्) = अनुविष्णु (विष्णु के पिछे) यहाँ 'पश्चाद' अव्यय का 'विषणो:' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।
10. **यथा का अर्थ-** यथा शब्द के चार अर्थ हैं- 1 योग्यता, 2 विप्सा बार बार होना, 3 पदार्थ का अतिक्रमण न होना, 4 सादृश्य। इन चारों अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है। क्रमशः उदाहरण इस प्रकार से हैं –

1. **योग्यता-** अनु+रूप (रूपस्य योग्यम्) = अनुरूपम् (रूप के योग्य) यहाँ यथा के योग्यता अर्थ में वर्तमान 'अनु' अव्यय का समास हुआ।
2. **विपसा अर्थमर्थे-** प्रति+अर्थ (अर्थमर्थ प्रति) = प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ में) यहाँ के वीप्सा में वर्तमान 'प्रति' अव्यय का सुबन्त अर्थ के साथ समास हुआ।
3. **अनितक्रम-** यथा+शक्ति (शक्तिमनतिक्रम्य) = यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार) यहाँ **पदार्थाऽनतिवृत्ति** अर्थ में वर्तमान 'यथा' अव्यय का समास हुआ।

'स' आदेशविधिसूत्रम्

917 अव्ययीभावे चाकाऽले 6।3।81।।

सहस्य सः स्याद् अव्ययीभावे, न तु काले। हरेः सादृश्यम्-सहरि। ज्येष्ठस्याऽऽनुपूर्व्येण-इति-अनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत-सचक्रम्। सदृश्य: सख्या स सखि। क्षत्त्राणां संपत्तिः- स-क्षत्त्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य-स-तृणम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते साग्नि।

4. **सादृश्य-** सह+हरि (हरे: सादृश्यम्) = सहरि (हरि के समान या सादृश्य) यहाँ यथा के अर्थ में सादृश्य में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'हरे:' के साथ समास हुआ। तब 'सह' को प्रकृत सूत्र से 'स' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

11. **आनुपूर्व्य (अर्थात क्रम)** जैसे अनु+ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानुपूर्वेण) = अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के अनुसार) यहाँ आनुपूर्व्य अर्थ में वर्तमान 'अनु' अव्यय का 'ज्येष्टस्य' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।
12. **यौगपद्य (अर्थात एक साथ होना)** जैसे सह+चक्र (चक्रेण युगपत्) = सचक्रम् अर्थात (चक्र के एकदम साथ)यहाँ यौगपद्य अर्थ में वर्तमान'सह' अव्यय का समास हुआ और सह को 'स' आदेश होगा।
13. **ससखि 'सदृश: सख्या'** इस लौकिक विग्रह में तथा 'सखि टा 'सह' इस अलौकिक विग्रह में सादृश्य अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'सख्या' के साथ समास होने पर सुप् का लुक् तथा प्रकृत सूत्र से सह को स आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

14. **संपत्ति (योग्यतानुसार संपत्ति को 'संपत्ति' कहते हैं)** क्षत्राणां संपत्तिः **सक्षत्त्रम्** (क्षत्रियों की संपत्ति) यहाँ संपत्ति अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का 'क्षत्राणाम्' सुबन्त के साथ समास और 'सह' को 'स' आदेश हुआ।
15. **साकल्य(सब को शामिल कर लेना)** जैसे सह+तृणम् (तृणमप्यपरित्यज्य) = सतृणम् (तृण को भी न छोड़कर अर्थात् सब खा जाता है) यहाँ साकल्य अर्थ में सह अव्यय का 'तृणम्' सुबन्त के साथ समास हुआ और 'सह' को 'स' आदेश।
16. **अन्त (तक' के अर्थ में)** जैसे सह+अग्नि (अग्निग्रन्थपर्यन्तम्) = साग्नि (अग्नि चयन ग्रन्थ तक पढ़ता है) यहाँ अन्त अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'अग्निना' के साथ समास हुआ और 'सह' को 'स' आदेश हुआ। यहाँ अग्नि शब्द अग्नि का चयन जिस ग्रन्थ में आया है उसके अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

'संख्या' समासविधिसूत्रम्

918. नदीभिश्च 2।1।20।।

नदीभिः सह संख्या समस्यते।

(समाहारसमासविधिवार्तिकम्)

समाहारे चाऽयमिष्यते। पञ्च गाङ्गम्। द्वियमुनम्।

संख्यावाचक सुबन्त शब्द का नदीवाचक सुबन्त शब्दों के साथ समास होता है, और वह अव्ययीभाव समास कहलाता है।

पञ्च-गङ्गम्–पञ्चानां गङ्गानां समाहार: (पाँच गंगाओं का समाहार) यहाँ पञ्च संख्यावाचक है, और नदी विशेषवाचक गङ्गा शब्द के साथ प्रकृत सूत्र से समास हुआ। तब प्रथमानिर्दिष्ट होने से संख्यावाचक का पूर्व निपात होने पर सुप् का लोप हुआ। 'नकार' का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इस सूत्र से लोप हुआ और अव्ययीभाव होने के कारण नपुंसक होने से ह्रस्व होकर 'पञ्चगङ्गा' शब्द बना। सुप् को अम् आदेश होने पर रूप बना।

द्वियमुनम्- द्वयो यमुनयोः समाहारः (दो यमुनाओं का समाहार)

तद्धिताऽधिकारसूत्रम्

919. तद्धितः 4।1।76।।

आ पञ्चमसमाप्तेरधिकारोयम्।

यह सूत्र 4.1.76 से लेकर पांचवें अध्याय की समाप्ति तक तद्धितसंज्ञा का अधिकार करता है। इसको अधिकार सूत्र और संज्ञा सूत्र भी माना गया है।

समासान्त टच् प्रत्ययविधिसूत्रम्

920. अव्ययीभावे शरत् प्रभृतिभ्यः 5।4।107।।

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोव्ययीभावे। शरदः समीपम् उपशरदम्। प्रतिविपाशम्।

शरद् आदि शब्दों से टच् प्रत्यय समासान्त होते हैं अव्ययीभाव समास में।

उपशरदम् –(शरदः समीपम्, शरद ऋतु के समीप) यहाँ समीप अर्थ में वर्तमान 'उप' अव्यय का 'शरद:' इस सुबन्त के साथ 'अव्ययं विभक्ति' इस सूत्र से समास हुआ। प्रकृति सूत्र से तद्धित संज्ञक समासान्त प्रत्यय टच् होने पर 'उपशरद' आकारान्त शब्द बना। फिर सुप् को अम् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रतिविपाशम्- विपाश (नदी) के समुख (विपाशाया अभिमुखम्) यहाँ 'लक्षणेनाभि-प्रती आभिमुख्ये 2।1।14।।' सूत्र से आभिमुख्य ओर अर्थ में प्रति निपात का सुबन्त विपाशः के साथ समास हुआ। प्रकृत सूत्र में समासान्त टच् प्रत्यय होकर पर्वोक्त प्रकार से रूप सिद्ध हुआ।

'जरम्' आदेशविधिगणसूत्रम्

जराया जरस्। उपजरसमित्यादि।

समास में जरा शब्द का जरस् आदेश और समासान्त टच् प्रत्यय होता है। जरा शब्द के स्थान में जरस् आदेश का भी विधान किया गया है।

उपजरसम् (जराया: समीपम्, बुढ़ापे के निकट) यहाँ समीप अर्थ में वर्तमान अव्यय 'उप' का 'जराया:' सुबन्त के साथ समास होने पर प्रकृत गणसूत्र से जरा शब्द को जरस् आदेश और समासान्त टच् प्रत्यय होने पर अकारान्त 'उपजरस' शब्द बना। फिर सुप् और उसको अम् आदेश होकर रूप बना।

समासान्त-टच्-प्रत्ययविधिसूत्रम्

921. अनश्च 5।4।108।।

अनन्ताद् अव्ययीभावात् टच् स्यात्।

अनन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय होता है।

नाकारान्तटिलोपसूत्रम्

922. नस्तद्धिते 6।4।144।।

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।

तद्धित परे होने पर नकारान्त शब्द के भसंज्ञक टि का लोप होता है।

उपराजम्- 'राज्ञः समीपम्' (राजा के समीप)यहाँ 'अव्ययम् विभक्ति' से समीप अर्थ में वर्तमान 'उप' अव्यय का सुबन्त 'राज्ञ:' के साथ समास हुआ। प्रथमान्त 'अव्ययम्' पद से योग्य होने के कारण उपसर्जन संज्ञा होने पर 'उप' का पूर्वनिपात हुआ। फिर सुप् का लोप होने पर अन्नन्त अव्ययीभाव 'उप राजन' से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ और टि अन् का 'नस्तद्धिते' से लोप होकर 'उपराज' अकारान्त शब्द बना। सुप् को अम् होने पर रूप सिद्ध हुआ।

अध्यात्मम्- (आत्मा के विषय में) 'आत्मनि' इस लौकिक और 'आत्मन् ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में विभक्ति सप्तमी के अर्थ में वर्तमान 'अधि' का 'आत्मनि' इस सुबन्त के साथ समास हुआ। फिर अधि का पूर्व निपात्, सुप् का लुक् होने पर 'अनश्च' से समासान्त टच् प्रत्यक्ष और 'नस्तद्धिते' से टि का लोप हुआ। तब 'अध्यात्म' इस 'अकारान्त' प्रातिपदिक से सुप् आया, उसे 'अम्' आदेश हुआ।

'टच्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

923. नपुंसकाद् अन्यतरस्याम् 5।4।109।।

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्ताद अव्ययीभावात् टज् वा स्यात्। उपचर्मम्, उपचर्म।

अन् अन्त वाला जो नपुंसक लिंग, तदन्त अव्ययीभाव से विकल्प से तद्धित संज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

उपचर्मम् , उपचर्म- 'चर्मणः समीपम्' (चर्म के समीप) इस लौकिक और 'चर्मन् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में अव्यय 'उप' का सुबन्त 'चर्मणः' के साथ समास होने पर 'उप' का

पूर्वनिपात और सुप् का लोप होकर उपचर्मन्, यह रूप बना। यहाँ अन्नन्त नपुंसक लिङ्ग 'चर्मन्' है।

'टच्' प्रत्यय विधिसूत्रम्

924. झयः 5।4।111।।

झयन्ताद् अव्ययीभावात् टच् वा स्यात्। उपसमिधम् , उपसमित्।

झय् प्रत्याहार वाला वर्ण अन्त में हो ऐसे अव्ययीभाव से विकल्प से तद्धित संज्ञक टच् प्रत्यय होता है।

उपसमिधम् , उपसमित्-(समिधा के पास) यहाँ प्रकृत सूत्र टच् प्रत्यय विकल्प से हुआ। टच् पक्ष में अकारान्त शब्द बन जाने पर सुप् को अम् आदेश होकर पहला रूप बना। अभाव पक्ष में धकारान्त ही शब्द रहने से हलन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द के जैसे रूप बनते हैं।

2.6 तत्पुरुष समास

तत्पुरुष समास में उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है। इसमें समास करने के लिए अनेक सूत्र हैं। 'तत्पुरुष' अधिकार सूत्रम्

925. तत्पुरुषः 2।1।22।।

अधिकारोयम् प्राग्बहुब्रीहेः।

अर्थात बहुब्रीहि के पूर्व समास विधान करने वाले सूत्रों में इसका अधिकार है, उनसे जो समास होता है वह तत्पुरुष कहलाता है।

'तत्पुरुष' संज्ञासूत्रम्

926.द्विगुश्च 2।1।23।।

द्विगुरपि तत्पुरुष संज्ञकः स्यात्।

द्विगु भी तत्पुरुष संज्ञक समास है।

'द्वितीया' समासविधिसूत्रम्

927. द्वितीया श्रितातीत-पतित-गतात्यस्त-प्राप्तापन्नैः 2।1।24।।

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः कृष्णाश्रित इत्यादि।

द्वितीय विभक्ति से युक्त समर्थ सुबन्त का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न ऐसी प्रकृति है जिन की, ऐसे समर्थ सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। और वह द्वितीया तत्पुरुष समास कहलाता है।

कृष्णाश्रितः –(कृष्ण के सहारे) 'कृष्णं श्रितः'इस लौकिक विग्रह और 'कृष्ण अम् श्रित सु' इस अलौकिक विग्रह में द्वितीयान्त 'कृष्णम्' का श्रित शब्द से बने 'श्रितः' इस सुबन्त के साथ प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र 'द्वितीया'- इस प्रकृत सूत्र में प्रथमान्त पद है 'द्वितीया' उससे बोध होता है विग्रह में स्थित 'कृष्णम्' पद का। उसकी 912. 'प्रथमानिर्दिष्टम् समास उपसर्जनम् 1।2।43।।' से उपसर्जन संज्ञा होती है और 912. 'उपसर्जनपूर्वम् 2।3।30।।' से उसका पूर्व प्रयोग। फिर 724. 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः 2।4।71।। से सुप् 'अम्' और 'सु' का लोप होने पर 'कृष्णाश्रित' यह समस्त प्रातिपदिक बना। इसी प्रकार कुछ उदाहरण है-

(श्रित) कृष्णं श्रितः = कृष्णाश्रितः (कृष्ण के सहारे)

(अतीत) दुःखमतीतः = दुःखातीतः (दुख के पार गया हुआ)
(पतति) शोकं पतति: = शोकपतितः (शोक में पड़ा हुआ)
(गत) प्रलयं गतः = प्रलयगतः (नाश को प्राप्त)
(अत्यस्त) मेघम् अत्यस्त: = मेघात्यस्त: (मेघ के पार पहुँचा हुआ)
(प्राप्त) सुखं प्राप्त: = सुखप्राप्त: (सुख पाया हुआ)
(आपन्न) भयम् आपन्न: = भयापन्न: (भय में पड़ा हुआ)

'तृतीया' समासविधिसूत्रम्

928. तृतीया तत्कृतार्थेन गुण-वचनेन 2।1।30।।

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुला-खण्डः । धान्येनार्थः –धान्यार्थः । 'तत्कृत' इति किम्- अक्ष्णा काणः ।

जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष समास कहते हैं।

शङ्कुलया खण्डः(सरौते से किया हुआ टुकड़ा) 'शङ्कुलया खण्डः' यह लौकिक विग्रह है । यहाँ उत्तरपद खण्ड गुणवाचक है, यह तृतीयान्तार्थ शङ्कुला से किया हुआ है । इसलिये 'शङ्कला टा खण्ड सु' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ । समासशास्त्र मे स्थित प्रथमान्त 'तृतीया' पद से बोध्य विग्रह में स्थित शङ्कुला शब्द की उपसर्जन संज्ञा होने से पूर्वनिपात हुआ । सुप् का लोप होने पर 'शङ्कुला-खण्ड' प्रातिपदिक बना । इससे सु आदि की उत्पत्ति हुई, तब प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ ।

धान्यार्थः-'धान्येन अर्थः' (धान्य से प्रयोजन)

'तृतीया' समासविधिसूत्रम्

929. कर्तृ-करणे कृता बहुलम् 2।1।32।।

कर्तृरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रातः – हरित्रातः । नखैर्भिन्नः – नखभिन्नः ।

परिभाषा- कृद्ग्रहणे गति कारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् । नख निर्भिन्नः ।

कर्ता और करण में जो तृतीया, तदन्त पद का कृदन्त के साथ बहुलतया समास होता है ।

हरित्रातः- (हरि से रक्षा किया हुआ) 'हरिणा त्रातः' यह लौकिक विग्रह है । ''हरि टा त्रात:' के साथ समास होकर रूप बना । यहाँ 'हरिणा' तृतीया कर्ता में हुआ है ।

नख-भिन्न: - (नखों से फाड़ा हुआ) 'नखैर्भिन्नः'यह लौकिक विग्रह है । 'नखै:' यहाँ तृतीया करण में है । इसलिए 'नख भिस् भिन्न सु' इस अलौकिक विग्रह में समास होने पर रूप बना ।

'चतुर्थी' समासविधिसूत्रम्

930. चतुर्थी तदर्थाऽर्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः 2।1।36।।

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्, तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् यूपाय दारु-यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः, तेनेह न रन्धनाथ स्थाली ।

जब तत्पुरुष समास का शब्द चतुर्थी विभक्ति में रहे, तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं । जो वस्तु हो, उसके वाचक पद के साथ तथा अर्थ (के लिए), वलि (उपहार), हित (कल्याण), सुख और रक्षित (रखा हुआ) इन पदों के साथ चतुर्थ्यन्तका समास होता है । जैसे –

यूप-दारू- (यज्ञ स्तम्भ के लिए लकड़ी) 'यूपाय दारु' (यूपदारु) यह लौकिक विग्रह है। यहाँ दारु (लकड़ी) चतुर्थ्यन्तयूप के लिए है। इसलिए प्रकृत सूत्र से समास और तदनुसार अन्य कार्य होकर रूप बना। जैसे- **कुम्भाय मृत्तिका = कुम्भमृत्तिका** आदि।

राँन्धनाय स्थाली- (राँघने-पकाने के लिए थाली) यहाँ स्थाली और रन्धन में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं। स्थाली से रन्धन नहीं बनता। रन्धन असत्व भूत क्रिया है। द्रव्य नहीं, प्रकृतिविकृतिभाव दो द्रव्यों में होता है। अतः यहाँ समास हो गया।

'चतुर्थी' समासविधिवार्तिकम्

वार्तिक- अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। द्विजार्थः-सूपः। द्विजार्थः-यवागूः। द्विजार्थम्-पयः। भूत बलिः। गो-हितम्। गो-सुखम्। गो-रक्षित।

चतुर्थ्यन्त शब्द तदर्थ, बलि, हित, सुख तथा रक्षित के साथ भी चतुर्थी तत्पुरुष बनते हैं। जैसे- **द्विजाय अयमिति = द्विजार्थः। भूतेभ्यो बलिः इति भूतबलिः। ब्राह्मणाय हितम् इति ब्राह्मणहितम्।** इसी प्रकार गोहितम्, गोसुखम्, गोरक्षितम् इत्यादि।

'अर्थ' शब्द के साथ जो समास बनते हैं, वे वस्तुतः चतुर्थी तत्पुरुष होते हुए भी नित्य समास कहलाते हैं। क्योंकि उनका अपने पदों से विग्रह हो ही नहीं सकता। उन समस्त पदों के लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होते हैं।

'पञ्चमी' समासविधिसूत्रम्

931. पञ्चमी भयेन 2।1।37।।

चोराद् भयम् – चोरभयम्।

जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति में आए, तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष कहते हैं। मुख्य रूप से यह समास तब होता है, जब पञ्चम्यन्त शब्द 'भय' भीति और भी के साथ आए। जैसे-

चोराद् भयम्- चोर-भयम् (चोर से भय) यहाँ 'चोराद्' इस पञ्चम्यन्त का 'भयम्' सुबन्त के साथ समास हुआ। स्तेनाद् भीतः = स्तेनभीतः, अयशः भी = अयशोभीः, वृकाद् भीतिः = वृकभीतिः।

'स्तोक' आदिपञ्चम्यन्तसमासविधिसूत्रम्

932. स्तोकान्तिक-दूरार्थ-कृच्छाणि क्तेन 2।1।39।।

स्तोक (थोडा), अंतिक (समीप) और दूर के अर्थ के वाचक और कृच्छ्र (कष्ट) इन सुबन्तों का क्तप्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास होता है।

पञ्चम्या अलुग्विधिसूत्रम्

933. पञ्चम्याः स्तोकाऽदिभ्यः 6।3।2।।

अलुग् उत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

स्तोक (थोडा), अंतिक (समीप) और दूर तथा इनके वाचक अन्य शब्द एवं कृच्छ्र, शब्द पञ्चम्यन्त के साथ समास बनाते हैं। परंतु पञ्चमी का लोप नहीं होता। जैसे-

स्तोकात् मुक्तः = स्तोकान्मुक्तः (थोडे से मुक्त)

अन्तिकात् आगतः = अन्तिकादागतः (पास से आया हुआ)

दूरात् आगतः = दूरादागतः (दूर से आया हुआ)

कृच्छ्रात् आगतः = कृच्छ्रादागतः (कष्ट से आया हुआ)

अभ्याशादागतः = (पास से आया हुआ)

'षष्ठी' समासविधिसूत्रम्

934. षष्ठी 2।2।8।।

सुबन्तेन प्राग्वत्। राज-पुरुषः।

षष्ठी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जिसमें प्रथम शब्द षष्ठी विभक्ति में हो। यह समास प्रायः सभी षष्ठयन्त शब्दों के साथ होता है। जैसे-

राजपुरुषः –(राजा का आदमी) 'राज्ञ:' इस षष्ठयन्त का 'पुरुषः' इस शब्द के साथ समास हुआ और तब निमित्तक कार्य सुप् का लुक् आदि होकर रूप सिद्ध हुआ। **'राजपुरुषः'**। लौकिक विग्रह है- 'राज्ञ: पुरुषः'।

एकदेशिसमाससूत्रम्

935. पूर्वापराधरोत्तरम् एकदेशिनैकाऽधिकरणे 2।2।1।।

अवयविना सह पूर्वाऽऽदयः समस्यन्ते, एकत्वसंख्या विशिष्टश्चेद् अवयवी। षष्ठीसमासाऽपवाद:। पूर्वं कायस्य – पूर्व कायः। अपर कायः। एकाऽधिकरणे किम्-पूर्वश्छात्राणाम्।

पूर्व (आगे), अपर (पीछे), अधर (नीचे), और उत्तर (ऊपर) इन अवयव वाचक शब्दों का अवयवीवाचक शब्द के साथ समास होता है।एकदेश अवयव को कहते हैं।

पूर्व कायः (शरीर का अगला भाग) पूर्व कायस्य यह लौकिक विग्रह है। 'पूर्व अम् काय ङस्' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। यहाँ काय अवयवी है वह एकवचनान्त है, और 'पूर्व'शब्द अवयव वाचक है। प्रथमान्त पद बोध्य होने के कारण पूर्व शब्द का निपात हुआ। इसी प्रकार **अपरं कायस्य = अपरकायः** (शरीर क पिछला भाग)

'अर्ध' शब्दसमाससूत्रम्

936. अर्धं नपुंसकम् 2।2।2।।

समांशवाची-अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्याः अर्ध-पिप्पली।

बराबर आधे भाग का वाचक जो नित्य नपुंसक अर्थ शब्द है, उसका सुबन्त के साथ समास होता है। यह भी षष्ठी समास बोधक है। जैसे-

अर्धपिप्पली- (आधी पिपली) 'अर्ध पिप्पल्याः'

'सप्तमी' विभक्तिसमासविधिसूत्रम्

937. सप्तमी शौन्डैः 2।1।40।।

सप्तम्यन्तं शौण्डाऽऽदिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्ड: - अक्षशौण्ड:। इत्यादि।

'द्वितीया' – 'तृतीया' इत्यादियोगविभागाद् अन्यत्राऽपितृतीयाऽऽदि विभक्तीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः।

सप्तमी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जिसका प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति में हो। यह समास विशेष दशाओं में होता है। जैसे-

अक्ष शौण्ड: - (पासे खेलने में प्रवीण) 'अक्षेषु शौण्ड:' इस अलौकिक और 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ। सप्तम्यन्त का पूर्वनिपात हुआ। तब सुब् – लुक् आदि कार्य होने पर रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से- प्रेम्णि धूर्तः = प्रेमधूर्तः, द्यूते कितवः = द्यूतकितवः, सभायां पण्डितः = सभापण्डितः, चक्रे बन्धः = चक्रबन्धः आदि।

समानाधिकरण तत्पुरुष समास-

समानाधिककरण का अर्थ है, ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण एक हो, यदि देवदत्त और गोविन्द एक ही आसन पर बैठे हों तो वह आसन उन दोनों का समानाधिकरण हुआ, अलग-अलग हो तो व्यधिकारण होगा, यथा-'कृष्णः सर्पः' में कालापन सांप के साथ है,अतः यह समानाधिकरण है। 'कर्मधारय' संज्ञासूत्रम्

943. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः 2।1।42।।

तत्पुरुषसमास जिनमे प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण हो, दोनों शब्दों का समानाधिकरण हो वह समानाधिकरण या कर्मधारय तत्पुरुष समास कहलाता है। जैसे- कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः। विशेषणसमाससूत्रम्

947 विशेषणं विशेष्येण बहुलम् 2।1।57।।

यदि प्रथम शब्द विशेषण हो और दूसरा विशेष्य तो उस कर्मधारय समास को '**विशेषणपूर्वपदकर्मधारय**' कहते हैं। जैसे- **नीलोत्पलम-**(नीला कमल) नीलम् उत्पलम्। यह लौकिक विग्रह है। 'नील सु उत्पल सु' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र में समास हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् का लुक् होकर **नीलोत्पल** शब्दबना। इसी प्रकार- रक्तोत्पलम्, कृष्णसर्पः आदि।

जब खराब या बुरे के अर्थ में 'कु' शब्द का प्रयोग हो तो- कुप्सितः पुरुषः = कुपुरुषः, कुत्सितः पुत्रः = कुपुत्रः आदि। कभी-कभी 'कु' का रूपांतरण 'कद' और कभी 'का' हो जाता है, जैसे- कुत्सितम् अन्नम् = कदन्नम्, कुत्सितः पुरुषः = कापुरुषः आदि।

उपमानपूर्वपदकर्मधारय- 'उपमान' समाससूत्रम्

948. उपमानानि सामान्य वचनैः 2।1।55।।

घन इव श्यामः - घन श्यामः

जब किसी वस्तु से उपमा दी जाय तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्माधारय समास होंगे और इस समास का नाम 'उपमानपूर्वपद कर्मधारय होगा। जैसे-

घन श्यामः - (घन इव श्यामः, मेघ के समान शयाम वर्ण वाला) 'घन सु श्याम सु' इस अलौकिक विग्रह में उपमान घन का साधारणधर्म वाचक श्याम पद के साथ समास प्रकृत सूत्र से हुआ। सुप् का लोप होने पर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार- **चन्द्रः इव आह्लादकः =चन्द्राह्लादकः,** ('चन्द्र' उपमान और 'आह्लादक' उपमेय सामान्य गुण हैं)

उपमानोत्तरद कर्मधारय-

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे 2।1।56।।

जब उपमिति (जिस वस्तु की उपमा दी जाय) और उपमान (जिससे उपमा दी जाये) दोनों साथ-साथ आयें, तब उस कर्मधारय समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं। यहाँ उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है। जैसे- **मुखं कमलमिव = मुखकमलम्, पुरुषः व्याघ्रः इव = पुरुषव्याघ्रः।**

विशेषणोभयपदकर्मधारय-

दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को 'विशेषणोभयपद कर्मधारय' कहते हैं। जैसे-**कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेतः (अश्वः)** ।इसी प्रकार दो क्त प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द जो वस्तुतः विशेषण ही होते हैं, इसी प्रकार समास बनाते हैं। जैसे- **स्नातश्च अनुलिप्तश्च =स्नातानुलिप्तः।**

दो विशेषणों में से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है, जैसे- **चरञ्च अचरञ्च = चराचरम्** (जगत)। **कृतञ्च अकृञ्च = कृताकृतम्** (कर्म) आदि।

द्विगुसंज्ञासूत्रम्—

944. संख्या पूर्वो द्विगुः 2।1।52।।

जब कर्मधारय समास में प्रथम शब्द संख्यावाची हो और दूसरा कोई संज्ञा, तो उस समास को 'द्विगु' समास कहते हैं। 'द्विगु' शब्द में प्रथम शब्द 'द्वि' संख्यावाची और 'गु' (गो) संज्ञा है। द्विगु समास तभी होता है, जब या तो उसके अनंतर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो,

जैसे- **षष्+मातृ = षण्मातृ+अ** (तद्धित प्रत्यय) = **षाण्मातुरः** (षष्णां मातृणामपत्यं पुमान्)।

पञ्चगावः धनं यस्य सः पञ्चगवधनः। यहाँ 'पञ्चगव' द्विगु समास न होता यदि वह धन शब्द के साथ फिर समास में ना आया होता।

945. द्विगुरेकवचनम् 2।4।1।। स नपुंसकम् 2।4।17।।

किसी समाहार (समूह) का द्योतक भी द्विगु समास होता है और वह सदा नपुंसकलिङ्ग एकवचन में रहता है। जैसे-

चतुर्णा युगानां समाहारः = चतुर्युगम्।

त्रयाणां भुवनानां समाहारः = त्रिभुवनम्।

पञ्चानां गवां समाहारः = पञ्चगवम्।

पञ्चानां पात्राणां समाहारः = पञ्चपात्रम्।

वट, लोक, मूल इत्यादि आकारांत शब्दों के साथ समाहार द्विगु में समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिंग होता है, किन्तु पात्र, भुवन, युग में अंत होने वाले द्विगु समास नहीं होते।

त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी।

पञ्चानां मूलानां समाहारः = पञ्चमूली।

पञ्चानां वटानां समाहारः = पञ्चवटी।

(पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम्)

जब समाहर द्विगु का उत्तरपद अकारान्त हो तब समस्त पद विकल्प से स्त्रीलिंग होता है, जैसे – पञ्चानां खट्वानां समाहारः = पञ्चखट्वी, पञ्चखट्वम्।

अन्य तत्पुरुष समास-

ये तत्पुरुष समास तो है परंतु इनमें अपनी विशेषता भी है।

नञ् तत्पुरुष समास-

949. नञ् 2।2।6।।

नञ् सुपा सह समस्यते।

यदि तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'न' रहे और दूसरा संज्ञा या विशेषण तो वह **नञ् तत्पुरुष** समास कहलाता है। यह 'न' व्यंजन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है। जैसे –

न ब्राह्मण: = अब्राह्मणः (जो ब्राह्मण न हो)।

न सत्यम् = असत्यम्।

न अश्वः = अनश्वः (जो घोडा न हो)।

न कृतम् = अकृतम्।

न आगतम् = अनागतम्।

प्रादि तत्पुरुष समास-

952. कु गति प्रादयः 2।2।18।।

प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। प्रगत आचार्यः - प्राचार्यः।

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'कु' शब्द अथवा 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई हो, अथवा गतिसंज्ञक कोई पद हो, तब उसे 'प्रादि' तत्पुरुष कहते हैं। इन प्र आदि उपसर्गों से विशेष विशेषण का अर्थ निकलता है, इसीलिए यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है। जैसे

कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः।

प्रगतः (बहुत विद्वान) आचार्यः = प्राचार्यः।

प्रगतः (बडे) पितामहः = प्रपितामहः।

अतिक्रान्तः मर्यादाम् = अतिमर्यादः (जिसने हद पार कर दी हो)

उद्गतः (ऊपर पहुँचा हुआ) वेलाम् (किनारा) = उद्वेलः

अवकुष्टः कोकिलया = अवकोकिलः (कोकिला से उच्चारण किया हुआ मुग्ध) इत्यादि।

गति तत्पुरुष समास

953. ऊर्यादि च्वि डाचश्च 1।4।61।।

उरी आदि निपात क्रिया के योग में गति कहलाते हैं, इसलिए यह समास गति तत्पुरुष समास कहलाता है। च्वि तथा डाच् प्रत्ययान्त शब्द भी गति कहे जाते हैं। जैसे-

ऊरी कृत्वा = ऊरीकृत्य। शुक्लीभूय (सफेद होकर),नीलीकृत्य (नीला करके)। इसी प्रकार स्वीकृत्य, पटपटाकृत्य।

भूषणोलम् 1।4।64।। 'भूषण' अर्थवाची होने पर 'अलम्' की भी गति संज्ञा होती है। अलं (भूषितं) कृत्वा = अलंकृत्य (भूषित करके)।

आदरानादरयोः सद्सती 1।4।63।।'आदर'तथा अनादर अर्थ में 'सत्' और 'असत्' भी क्रमशः गति कहलाते हैं, जैसे सत्कृत्य (आदर करके)।

अन्तरपरिग्रहे 2।4।65।।परिग्रह से भिन्न (अर्थात मध्य) अर्थ में "अन्तर" भी गति कहलाता है। जैस- अन्तर्हस्य – मध्ये हत्वा इत्यर्थः।

साक्षात्प्रभृतीनि च 1।4।74।। साक्षात इत्यादि भी कृधातु के साथ विकल्प से गति कहलाते हैं। गति संज्ञक होने पर 'साक्षाकृत्य' बनेगा या 'साक्षाकृत्वा'।

पुरोऽव्ययम् 1।4।67।।पुरः नित्य गति कहलाता है। समास होने पर 'पुरस्कृत्य' बनेगा।

अस्तं च 1।4।68।। 'अस्तम्' शब्द मान्त अव्यय है और गति संज्ञक होता है। समास होने पर 'अस्तगत्य' रूप बनेगा।

तिरोऽन्तधौ 1।4।71।। 'तिर:' शब्द अन्तर्धान के अर्थ में नित्य गति संज्ञक होता है – तिरोभूय।

विभाषाकृञ1।4।79।। 'तिरः' कृ के साथ विकल्प से गति होता है – तिरस्कृत्य और तिर:कृत्य या तिरःकृत्वा।

उपपद तत्पुरुष समास

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् 3।1।62।।जबतत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसा पद हो जिसके कर्म आदि रूप से रहने पर ही उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप सिद्ध हो सकता है, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं। द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया नहीं होनी चाहिए बल्कि कृदन्त का होना चाहिये। जैसे- **कुम्भं करोति इति = कुम्भकार:।** यहाँ समास में दो शब्द हैं

'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' कर्म रूप से उपपद है। 'कार' क्रिया का रूप नहीं, कृदन्त का है, यदि पूर्व में उपपद न हो तो 'कार:' अपने आप नहीं ठहर सकता। 'कारः' उपपद से स्वाधीन कोई शब्द नहीं है, हम 'कारः' का प्रयोग अकेले नहीं कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते हैं, जैसे –**चर्मकारः, स्वर्णकारः ।** इसी प्रकार – सामगायतीति सामगः। यहाँ 'साम' उपपद रहने के कारण 'ग:' शब्द है, 'ग:' का प्रयोग अकेले नहीं हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए। इसी प्रकार- **धनं ददातीति = धनदः, कम्बलं ददातीति =कम्बलदः, गाः ददातीति गोदः** आदि होगा।

मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

शाकप्रियः पार्थिवः = शाकपार्थिवः , देवपूजकः ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः , इन शब्दों में 'प्रियः' तथा 'पूजक' शब्दों का लोप हो गया है, इसी से इस समास को मध्यमपद लोपी तत्पुरुष समास कहते हैं।

मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे समास हैं जिनमें प्रत्यक्ष नियमों का उल्लंघन किया गया है, उन्हे मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास कहा गया है। जैसे **व्यंसकः मयूरः = मयूर व्यंसकः , (चतुर मोर)** यहाँ व्यंसकः शब्द पहले आना चाहिये था और मयूर बाद में। **अन्यो राज = राजान्तरम् । अन्यो ग्रामः = ग्रामान्तरम् । उदक् च अवाक् चेति = उच्चावचम् । निश्चितं च प्रचितं चेति = निश्चप्रचम्।** राजान्तरम् , चिदेव नित्य समास हैं, क्योंकि इनका अपने पदों से विग्रह नहीं होता। इसी प्रकार जिनका विग्रह होता ही नहीं वे नित्य समास कहलाते हैं। जैसे –**जीमूतस्येव ।**

अलुक् तत्पुरुष समास

समास में प्रायः प्रथम शब्द की विभक्ति का लोप हो जाता है, जैसे **राजः पुरुषः = राजपुरुषः,** लेकिन कुछ ऐसे समास होते हैं जिनमें विभक्ति के प्रत्यय का लोप नहीं होता, वे अलुक् समास कहलाते हैं। अलुक् समास में केवल ऐसे ही उदाहरण हैं जो साहित्य ग्रन्थों में मिलते हैं , इनमें नवीन शब्दों का निर्माण नहीं किया जा सकता। जैसे –**जनुषान्धः (जन्मान्ध), मनसा गुप्ता (किसी स्त्री का नाम), आत्मने पदम्, परस्मैपदम्, दूरादागतः, देवानां प्रियः (मूर्ख), पश्यतो हरः (चोरः), अन्तेवासी (शिष्य), सरसिजम् (कमल)** इत्यादि।

2.7 बहुव्रीहि समास

'बहुव्रीहि' अधिकार सूत्रम्

967. शेषो बहुव्रीहिः 2।2।23।।

अधकारोयं प्राग् द्वन्द्वात्।

द्वन्द्व समास से पहले का समास बहुव्रीहि समास कहलाता है।

'बहुव्रीहि'समास विधि सूत्रम्

968. अनेकम् अन्य पदार्थे 2।2।24।।

अनेकं प्रथमान्तम् अन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स बहुव्रीहि।

जब समास में आए हुए दो या दो से अधिक शब्द मिलकर किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं तो उसे 'बहुव्रीहि समास' कहते हैं। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है- बहुः व्रीहिः (धान्यं) यस्य अस्ति सः बहुव्रीहिः (जिसके पास बहुत चावल हों) इसमें दो शब्द हैं 'बहु' और

'व्रीहि' प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनों मिलकर किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इस प्रकार के समासों को 'बहुव्रीहि समास' कहा जाता है।

बहुव्रीहिऔर तत्पुरुष में यह भेद है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है। जैसे- **पीतम् अम्बरम्** = **पीताम्बरम्** (पीला कपड़ा) कर्मधारय तत्पुरुष । बहुव्रीहिमें इसके अतरिक्त यह होता है कि दोनों मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं। जैसे- **पीताम्बरः** = **पीतम् अम्बरम् यस्य सः** (जिसका कपड़ा पीला हो, अर्थात श्री कृष्ण)। इस प्रकार एक ही समास प्रकरण आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहिहो सकता है।

बहुव्रीहि समास के दो भेद होते हैं –

1. **समानाधिकरण बहुव्रीहि।**
2. **व्यधिकरण बहुव्रीहि।**

समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके दो या दो से अधिक शब्दों का एक ही अधिकरण (विभक्ति) हो, वे प्रथमान्त हों, जैसे- **पीताम्बरः।**

व्यधिकारण बहुव्रीहिवह है, जिसके दोनों शब्द प्रथमान्त न हों, केवल एक ही शब्द प्रथमान्त हो, दूसरा षष्ठी या सप्तमी में हो जैसे-

चंद्रशेखर: - चंद्र: शेखरे यस्य सः = (शिव)

चक्रपाणि - चक्रं पणौ यस्य सः = (विष्णुः)

चन्द्रकान्तिः – चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः

समानाधिकरण बहुव्रीहि के छः भेद होते हैं-

द्वितीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि।

तृतीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि।

चतुर्थीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि।

पञ्चमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि।

षष्ठीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि।

सप्तमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि।

यह भेद विग्रह में आए हुए 'यत्' शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं। यदि 'यत्' द्वितीया में हो तो समास द्वितीया समानाधिकण बहुव्रीहि होगा और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे। जैसे –

द्वितीया समानाधिकण बहुव्रीहि- प्राप्तमुदकं यं सः प्राप्तोदकः (ग्रामः) ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो। आरूढो वानरो यं स आरूढवानरः (वृक्षः)

तृतीया समानाधिकण बहुव्रीहि-जितानि इन्द्रियाणि येन सः जितेनद्रियः (पुरुषः) जिसने इंद्रियों को वश में कर रखा हो। ऊढः रथः येन स ऊढरथः (अनडवान) ऐसा बैल जिसने रथ खींचा हो। दत्तं चित्तं येन स दत्तचित्तः (पुरुषः) ऐसा पुरुष जो चित्त दिए हो।

चतुर्थी समानाधिकण बहुव्रीहि- उपहृतः पशुः यस्मैः स उपहृतपशुः (रुद्रः) जिसके लिए पशु (बल्यर्थ) लाया गया हो। दत्तधनः (पुरुषः)।

पंचमी समानाधिकण बहुव्रीहि- उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा उद्धृतौदना (थाली) ऐसी बटलोई जिससे भात निकाल लिया हो। निर्गतं धनं यस्मात् स निर्धनः (पुरुष:)। निर्गतं बलं यस्मात् स निर्बलः (पुरुषः)।

षष्ठी समानाधिकण बहुव्रीहि-पीतम् अम्बरं यस्य सः पीताम्बरम् (हरिः) । महान्तौ बाहू यस्य सः महाबाहुः, इसी प्रकार लम्बकर्णः, चित्रगुः ।

सप्तमी समानाधिकण बहुव्रीहि- वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः वीरपुरुषः (ग्रामः)ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हों।

व्याधिकरणबहुव्रीहि-व्याधिकरण बहुव्रीहिके दोनों शब्द प्रथमा विभक्ति में नहीं रहते, केवल एक रहता है, दूसरा षष्ठी या सप्तमी में रहता है। जैसे- **चक्रं पणौ यस्य सः चक्रपाणि ।** इसी प्रकार **चन्द्रशेखरः, चन्द्रकान्तिः** इत्यादि।

'नञ्' समासवार्तिकम्-

नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो, वा चोत्तरपद-लोपः । 'अविद्यमान पुत्रः – अपुत्रः

नञ् के साथ अस् अथवा अस् के समान अर्थ वाली धातुओं से बने शब्द का तथा प्रादि उपसर्गों के साथ किसी धातु से बने शब्द का विकल्प से लोप हो जाता है और उनके इस प्रकार रूप बनते हैं। जैसे- **अविद्यमानः पुत्रः यस्य स अपुत्रः अथवा अविद्यमानपुत्रः ।** विजीवितः , विगतजीवितो वा ।उत्कन्धरः , उद्गतकन्धरो वा ।प्रपतितपणः प्रपर्णः ।

तेन सहेति तुल्ययोगे 2।2।28।।

सह तथा तृतीयान्त संज्ञा के साथ बहुव्रीहि समास होता है। यथा –

राधिकया सह इति = सराधिका (श्रीकृष्णः) , सीतया सह इति ससीतः (श्रीरामः)।

971. स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्काद् – अनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियाम् अ-पूरणी-प्रियाऽऽदिषु 6।3।34।।

समानाधिकरण बहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुंल्लिंग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिंग शब्द (रूपवद् – रूपवती, सुन्दर – सुन्दरी आदि) हो किन्तु ऊकारान्त न हों और दूसरा शब्द स्त्रीलिंग हो, तो प्रथम शब्द स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदिम रूप (पुंल्लिंग) रखते हैं। जैसे-

रुपवद्भार्यः- 'रूपवती भार्या यस्य' जिसकी पत्नी सुन्दर हो । यहाँ रूपवती और भार्या इन प्रथमान्तों का समास हुआ है। पूर्व पद 'रूपवती' स्त्रीलिङ्ग वाचक है, उक्त पुंस्क, ऊङ रहित है, उत्तर पद भार्या समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग है। अतः प्रकृत सूत्र से पुंवद्भाव होकर 'रूपवती' का स्त्री प्रत्यय ड़ीप् (ई) हट जाता है। तब विग्रह में नियतविभक्तिक होने से उपसर्जन संज्ञक 'भार्या' पद 'गो-स्त्रियोरूपसर्जनस्य' से ह्रस्व होकर रूप सिद्ध हुआ। इसी प्रकार-

चित्राः गावः यस्य सः चित्रगुः (चित्रागुः नही) इसी प्रकार **'जरद्भार्यः'** । परन्तु **गङ्गा भार्या यस्य सः गङ्गाभार्यः (गङ्गभार्य नही)** क्योंकि गङ्गा शब्द किसी पुल्लिंग शब्द का स्त्रीलिंग रूप नहीं है।

वामोरूभार्यः - वामोरुः भार्या यस्य सः (क्योंकि यहाँ प्रथम शब्द ऊकारान्त है, आकारान्त या ईकारान्त नहीं) ।यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणी संख्या हो, उसमें अंग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो, जाति का नाम हो इत्यादि, अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रियादिगण में पठित कोई शब्द या क्रमसंख्या हो, तो पूर्वपद का पुंवद्भाव नहीं होता। जैसे-

दत्ताभार्यः - (जिसकी दत्ता नाम वाली स्त्री हो)।

पञ्चमीभार्यः- (जिसकी पाँचवीं स्त्री है)।

सुकेशीभार्यः- (जिसकी अच्छे केशों वाली स्त्री है)।

शूद्राभार्यः- (जिसकी स्त्री शूद्रा है)।

कल्याणी प्रिया यस्य सः कल्याणीप्रियः, कल्याणी पञ्चमी यासां ताः कल्याणीपञ्चमाः।
यदि बहुव्रीहि समास का अंतिम शब्द ऋकारान्त (किसी भी लिङ्ग का हो), या स्त्री लिङ्ग का ईकारान्त या ऊकारान्त हो तो कप् प्रत्यय निश्चय रूप से लगता है। जैसे –
ईश्वरः कर्ता यस्य सः ईश्वर कर्तृक: (संसारः)
सुशीला माता यस्य सः सुशीलमातृक: (बालः)
अन्नं धातृ यस्य सः अन्नधातृकः (नरः)
सुन्दरी वधूः यस्य सः सुन्दरवधूकः (पुरुषः)
रूपवती स्त्री यस्य सः रूपवत्स्त्रीकः (नरः)

2.8 द्वन्द्व समास

द्वन्द्वसमास विधि सूत्रम्

985. चाऽर्थे द्वन्द्व: 2।2।29।।

यदि दो या दो से अधिक संज्ञाएँ 'च' शब्द से जोड़ दी जायें तो वह द्वन्द्व समास कहलाता है। **"उभयपदार्थप्रधानोद्वन्द्व:"** द्वन्द्व समास में दोनों ही संज्ञाएँ प्रधान रहती हैं अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समास के तीन प्रकार हैं –

1. **इतरेतर द्वन्द्व।**
2. **समाहार द्वन्द्व।**
3. **एकशेष द्वन्द्व।**

इतरेतर द्वन्द्व- जब समास में आये हुए दोनों पद अपना प्रधानत्व और व्यक्तित्व रखते हैं, तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं। जैसे- **रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ।** यदि दोनों मिलकर दो संज्ञ हो, तो द्विवचन में समास रखा जाता है और दो से अधिक हों, तो बहुवचन में। जैसे-
रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ।
रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च = रामभरतलक्ष्मणा:।
रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्च = रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्ना:।

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे 6।3।25।।

ऋकारान्त (विद्या सम्बन्ध या योनि सम्बन्ध के वाचक) पद या पदों के साथ द्वन्द्व समास में अंतिम पद के पूर्व स्थित ऋकारान्त पद के ऋ के स्थान में आ हो जाता है। जैसे-
माता च पिता च = मातापितरौ।
होता च पोता चेति = होतापोतारौ।
होता च पोता च उद्गाता च = होतृपोतोद्गातारः।

परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः 2।4।26

द्वन्द्व समास में अंतिम पद के अनुसार ही समस्त समास का लिङ्ग होता है। जैसे-
कुक्कुटश्च मयूरीच = कुक्कुटमयूर्यौ।
मयूरीच कुक्कुटश्च = मयूरीकुकुटौ।

समाहार द्वन्द्व- जब समास में ऐसी संज्ञाएँ आयें जो 'च' से जुड़ी हुई होने पर अपना अर्थ बदलती हैं, पर प्रधानतया एक समाहार (समूह) का बोध कराती हैं, तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है। इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एकवचन में ही रखते हैं। जैसे –**आहारश्च निद्रा**

च भयञ्च = आहारनिद्राभयम् । समाहार द्वन्द्व समास में आहार, निद्रा, भय का अर्थ है, पर प्रधानतया जीवों के लक्षण का बोध होता है । जीवों में खाना , पीना, सोना और डर ये ही मुख्य बातें होती हैं । इसी प्रकार- **पाणि च पादौ च = पाणिपादम्** (हाथ और पैर के अतिरिक्त प्रधानतया अंग-मात्र का बोध होता है।) **अहिनकुलम्** (साँप और नेबले के अतरिक्त प्रधानतया ये दोनों जन्मवैरी हैं, यह बोध होता है ।

991. द्वन्द्वश्च प्राणि-तूर्य-सेनाऽङ्गानाम् 2।4।2।।

समाहार द्वन्द्व बहुधा उन दशाओं में होता है,

1. जब उसमें आए हुए शब्द मनुष्य अथवा पशु के शरीर के वाचक हों- **पाणि च पादौ च = पाणिपादम्**(हाथ पैर)
2. गाने बजाने वालों के (संघ के) अंग के वाचक हों- **मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिकपाणविकम्** (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)
3. सेना के अङ्ग के वाचक हों-**अश्वारोहाश्च पदातयश्च = पदात्यश्वारोहम्** (पैदल घुड़सवार)
4. अचेतन पदार्थ के वाचक हों- (द्रव्य हों,गुण नहीं)**गोधूमश्च चणकश्च=गोधूमचणकम्।**

विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः 2।4।7।।

यदि नदियों के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हों, जैसे –**गंगा च शोणश्च = गङ्गाशोणम्** (लेकिन गंगा च यमुना च गङ्गायमुने होगा क्योंकि ये एक ही लिङ्ग के हैं ।)

देशों के भिन्न लिंगों वाले नाम हों, जैसे- **कुरुवश्च कुरुक्षेत्रं च = कुरुकुरुक्षेत्रम् ।**

यदि दोनों ग्राम के नाम न हों तो समाहार द्वन्द्व नहीं होगा, जैसे-**जाम्बवं (नगर) शालूकिनी (ग्राम) = जाम्बवतीशालूकिन्यौ ।**

दोनों नगर क नाम हों तो समाहार द्वन्द्व ही होता हैं, जैसे- **मथुरा च पाटलीपुत्रं च = मथुरापाटलिपुत्रम् ।**

विभाषा वृक्षमृगतृणाधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्वडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् 2।4।12।। वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम् (वार्तिक)

वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यंजन, पशु, शकुनि, (वृक्ष से वृक्ष विशेष) वाचक शब्दों के समास तथा अश्ववडेव, पूर्वापरे, तथा अधरोत्तरे समास भी विकल्प से समाहार द्वन्द्व होते हैं, जैसे-

प्लक्षन्यधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः । शुकवकम् , शुकबकाः ।
रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः । गोमहिषम्, गोमहिषाः ।
कुशकाशम्, कुशकाशाः । अश्ववडवम्, अश्ववडवौ ।
व्रीहियवम्, व्रीहियवाः । पूर्वापरम्, पूर्वापरे ।
दद्धिघृतम्, दधिघृते । अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ।

एकशेष द्वन्द्व- जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही शेष रहा जाय, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं, जैसे- **माता च पिता च = पितरौ । श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ ।**

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ 1।2।64।। विरूपाणामपि समानार्थानाम् (वार्तिक) ।

एकशेष द्वन्द्व में केवल समान रूप वाले शब्द जैसे- **रामश्च रामश्चेति = रामौ ।** इसी प्रकार- **रामश्च रामश्च रामश्चेति = रामाः ।**या समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द भी आ सकते हैं ।

समास का वचन समास के अंगभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होगा। यदि समास में पुल्लिंग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनों मिले हों तो समास पुंल्लिग में रहेगा। जैसे –

(सरूप) ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च = ब्राह्मणौ। शूद्री च शूद्रश्च = शूद्रौ।

अजश्च अजा च = अजौ। चटकश्च चटका च = चटकौ।

(विरूप) वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च = वक्रदण्डौ या कुटिलदण्डौ। घटश्च कलशश्च = घटौ या कलशौ।

987. द्वन्द्वे घि 2|2|32||

द्वन्द्व समास में इकारांत शब्द को पहले रखना चाहिये। जैसे –**हरिश्च हरश्च = हरिहरौ।**

अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे (वार्तिक)।

जब अनेक इकारांत शब्द हों तब एक को प्रथम रखना चाहिये शेष को चाहे जहाँ रखा जाय। जैसे- हरिश्च हरश्च गुरुश्च = हरिहरगुरुवः, हरिगुरुहराः।

अजाद्यदन्तम् 2|2|33||

स्वर से आरम्भ होने वाले और 'अ' में अन्त होने वाले शब्द पहले आने चाहिये, जैसे-

ईश्वरश्च प्रकृतिश्च = ईश्वरप्रकृती।

इन्द्रश्च अग्निश्च = इन्द्राग्नी।

अल्पाचतरम् 2|2|34||

जिस शब्द में कम अक्षर हों वह पहले आना चाहिये, जैसे **शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ।**

(केशवशिवौ नहीं, क्योंकि शिव में कम अक्षर हैं।)

वर्णानामापूर्व्येण भ्रातुर्ज्यायसः (वार्तिक)।

वर्णों के और भाइयों के नाम ज्येष्ठ क्रमानुसार आने चाहिये, जैसे- ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च = ब्राह्मणक्षत्रियौ (क्षत्रिय ब्राह्मणौ नहीं)। रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ। युधिष्ठिरभीमौइत्यादि।

2.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना सामस का अर्थ, समास की परिभाषा एवं समास के भेद। अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं- प्रथम पद प्रायः अव्यय रहता है और द्वितीय पद संज्ञा शब्द। दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं।तत्पुरुष समास में उत्तरपद (बाद वाला) या परपद (दूसरा या अंतिम) पद का अर्थ प्रधान होता है। इसका उदाहरण है- कृष्णसर्पः।

कर्मधारय समास- तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है। जहाँ विशेष्य और विशेषण का समास होता है, उसे कर्मधारय कहते हैं। यह तत्पुरुष का ही विशेष प्रकार है, क्योंकि इस समास में उत्तरपद का अर्थ प्रदान होता है। जैसे- नीलोत्पलम्- नीलं च तत् उत्पलं च- (नीला कमल) यहाँ नील विशेषण और उत्पल विशेष्य का समास होता है। इसीलिए यह कर्मधारय समास है।

द्विगु समास- कर्मधारय समास का एक भेद द्विगु समास है। विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु कहते हैं। जैसे- पञ्चगवम्- पञ्चानां गवां समाहारः, पाँच गौओं का समाहर- यहाँ विशेषण पञ्च संख्यावाचक है, इसीलिए यह द्विगु समास है।

बहुव्रीहि समास में आए हुए दो या दो से अधिक शब्द मिलकर किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं तो उसे 'बहुव्रीहि समास' कहते हैं। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है- बहुः व्रीहि: (धान्यं) यस्य अस्ति सः बहुव्रीहि: (जिसके पास बहुत चावल हों) इसमें दो शब्द हैं 'बहु' और 'व्रीहि' प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनों मिलकर किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इस प्रकार के समासों को 'बहुव्रीहि समास' कहा जाता है। यदि दो या दो से अधिक संज्ञाएँ 'च' शब्द से जोड़ दी जायें तो वह द्वन्द्व समास कहलाता है। "उभयपदार्थप्रधानोद्वन्द्व:" द्वन्द्व समास में दोनों ही संज्ञाएँ प्रधान रहती हैं अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समास के तीन प्रकार हैं। इतरेतर द्वन्द्व, समाहार द्वन्द्व और एकशेष द्वन्द्व।

2.10 पारिभाषिक शब्दावली

उभय	-	दोनों
बहुधा	-	प्रायः, अक्सर
अतरिक्त	-	अलावा, फालतू
शेष	-	बचा हुआ,
प्रधान	-	मुख्य
विद्यमान	-	अस्तित्व में होने वाला
सामर्थ्य	-	योग्यता, शक्ति, समर्थ होने का भाव
विग्रह	-	टुकड़ा
सादृश्य	-	समान

अभ्यास प्रश्न. 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1.समास के पाँच भेद होते हैं।

(क) पाँच

(ख) छः

(ग) सात

(घ) आठ

2. अन्य पद प्रधान समास होता है।

(क) तत्पुरुष

(ख) द्वन्द्व

(ग) बहुब्रीहि

(घ) द्विगु

3. उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है।

(क) तत्पुरुष में

(ख) द्वन्द्व में

(ग) बहुब्रीहि में

(घ) द्विगु में

4.उपकृष्णम् में समास है।

(क) तत्पुरुष

(ख) अव्ययीभाव

(ग) बहुव्रीहि

(घ) द्वन्द्व

5. कुम्भमृत्तिका में समास है।

(क) द्वितीय तत्पुरुष

(ख) तृतीय तत्पुरुष

(ग) चतुर्थी तत्पुरुष

(घ) पञ्चमी तत्पुरुष

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1. जहाँ विशेष्य और विशेषण का समास होता है, उसे------------- कहते हैं।
2. दो या दो से अधिक संज्ञाएँ 'च' शब्द से जोड़ दी जायें तो वह--------समास कहलाता है।
3. पाणि च पादौ च ------------।
4. चंद्रशेखर: में -----------समास है।
5. भूतर्वः में --------समास है।

(3) सही गलत का चयन कीजिये।

1. तत्पुरुष समास में उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है। ( )
2. समानाधिकरण बहुव्रीहि के छः भेद होते हैं। ( )
3. उत्तरपद प्रधान बहुब्रीहि समास होता है। ( )
4. उभयपद प्रधान अव्ययीभाव समास होतो है। ( )
5. समास के छः भेद होते हैं। ( )

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1). 1. क, 2. ग, 3. क, 4. ख, 5. ग

(2). 1. कर्मधारय, 2. द्वन्द्व, 3 पाणिपादम्, 4. बहुब्रीहि, 5 केवल

(3). 1 सही, 2 सही, 3 गलत, 4 गलत, 5 गलत

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी, लेखक- श्रीवरदराज, व्याख्याकार एवं सम्पादक- श्रीधरानन्दशास्त्री।
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी, लेखक- श्रीवरदराज, व्याख्याकार- गोविन्द प्रसाद शर्मा (गोविन्दाचार्य)।
3. बृहद अनुवाद चन्द्रिका, लेखक- चक्रधर नौटियाल 'हंस'।
4. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिक, लेखक- डॉ बाबूराम सक्सेना।

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. केवल समास का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
2. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि इत्यादि सूत्र की विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. कर्मधारय समास का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

इकाई–3 कृत् एवं तद्धित प्रत्यय

इकाई की रूप रेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प्रमुख कृदन्त प्रत्ययों का सामान्य परिचय
3.4 प्रमुख तद्धित प्रत्ययों का सामान्य परिचय
3.5 बोध प्रश्न
3.6 निबन्धात्मक प्रश्न
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची
3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थीयों !

इस इकाई में हम कृदन्त एवं तद्धित प्रत्ययों का सामान्य परिचय प्राप्त करेगें। किसी भी धातु या शब्द के पश्चात् जुड़ने वाले शब्दांशों को प्रत्यय कहा जाता है। धातुओं, संज्ञाओं, विशेषणों के आगे प्रत्यय जोड़ने से असंख्य शब्द बनाये जा सकते हैं। जैसे – पठ् धातु में क्त्वा प्रत्यय लगाने पर पठित्वा शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है 'पढ़कर'। ठीक उसी प्रकार 'शतृ' प्रत्यय जोड़ने पर पठन् , 'तुमुन्' प्रत्यय लगाने पर पठितुम् आदि शब्द बनते हैं। इस इकाई में हम इन्हीं प्रत्ययो के विषय में पढ़गें प्रत्यय प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैं –1.कृत् प्रत्यय 2. तद्धित प्रत्यय

कृत् प्रत्यय – कृत् प्रत्यय साधारणतः धातुओं में जोड़े जाते हैं। ये तिड़् प्रत्ययों से भिन्न होते हैं।

तद्धित प्रत्यय – संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया और विशेषण में लगाये जाने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी संस्कृत में धातु एवं प्रत्यय के मेल संज्ञा और विशेषण शब्दों का निर्माण कैसे होता है जान सकेगें ।
- शिक्षार्थी कृदन्त प्रत्ययों का विधान किन अर्थों में होता है जानेगें। तथा क्त्वा, ल्यप, शानच् आदि प्रत्ययों से निर्मित शब्दों को जान सकेगें।
- शिक्षार्थी तद्धित प्रत्ययों का विधान किन अर्थों में होता है जानेगें। तथा मतुप्, इनि, तरप् इत्यादि प्रत्ययो से निर्मित शब्दों को जान सकेगें ।
- कृदन्त एवं तद्धित प्रत्ययों का परिचय प्राप्त करने पर शिक्षार्थी इनके प्रयोग से विभिन्न संदर्भों में वाक्य निर्माण करने में सक्षम हो सकेगें।

3.3 कृदन्त प्रत्ययों का परिचय

धातुओं में जिस प्रत्यय को जोड़कर संज्ञा, विशेषण या अवयय बनता है, वे कृत् प्रत्यय कहलाते हैं। कृत् प्रत्यय के योग से बनने वाले पद को कृदन्त कहा जाता है। उदाहरणार्थ – **भू** धातु से **क्त्वा** प्रत्यय जोड़कर **भूत्वा** शब्द बनता है। यहाँ 'क्त्वा' कृत् प्रत्यय है तथा 'भूत्वा' कृदन्त है। अर्थ के आधार पर कृदन्त प्रत्ययों को निम्न रूप विभक्त किया गया है –

(i) अव्यय बनाने के लिये धातुओं में 'क्त्वा', 'ल्यप्', 'तुमुन्' प्रत्ययों का योग किया जाता है।

(ii) धातु से विशेषण बनाने के लिये 'शतृ', 'शानच्', 'तव्यत्', 'अनीयर्', 'यत्' आदि प्रत्ययों का योग किया जाता है।

(iii) भूतकालिक क्रिया के प्रयोग के लिये 'क्त', 'क्तवतु' तथा 'करना चाहिये' - इस अर्थ के लिये क्रिया के वाचक 'तव्यत्', 'अनीयर्' और 'यत्' प्रत्ययों का प्रयोग करते हैं।

(iv) धातु से संज्ञा बनाने हेतु 'तृच्', 'क्तिन्', 'ण्वुल्', 'ल्युट्' आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

कतिपय प्रमुख कृत् प्रत्ययों का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

१. क्त्वा प्रत्यय

पूर्वकालिक क्रिया के योग में 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जब एक ही कर्त्ता द्वारा किसी क्रिया की समाप्ति के पश्चात् दूसरी क्रिया की जाती है तब पूर्व में हुयी क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। प्रधान क्रिया से पूर्व किये गये कार्य को व्यक्त करने के लिये धातु में क्त्वा प्रत्यय का योग किया जाता है। यथा – छात्रः पठित्वा गृहं गच्छति (छात्र पढ़कर घर जाता है)। यहाँ छात्र द्वारा दो कार्य किये गये – पढ़ना और जाना। इन दोनों कियाओं में पूर्व में घटित पढ़ने की क्रिया 'पठित्वा' से द्योतित होती है। अतः **पठित्वा** पूर्वकालिक क्रिया है। धातुओं के बाद क्त्वा प्रत्यय जोड़ने पर इसका केवल 'त्वा' शेष रहता है। 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग अव्यय के रूप में होता है। अर्थात् इनके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता, ये सदैव एकसमान रहते हैं।

उदाहरण-

धातु+प्रत्यय	**कृदन्त रूप**	**अर्थ**	**वाक्यप्रयोग**
कृ + क्त्वा =	कृत्वा	करके	भोजनं कृत्वा विद्यालयं गच्छ।
ज्ञा + क्त्वा =	ज्ञात्वा	जानकर	परीक्षाफलं ज्ञात्वा सः प्रसन्नः अभवत्।
पठ् + क्त्वा =	पठित्वा	पढ़कर	अहं पुस्तकं पठित्वा ज्ञानार्जनं करिष्यामि।
गम् + क्त्वा =	गत्वा	जाकर	आपणं गत्वा दुग्धम् आनय।
नम् + क्त्वा =	नत्वा	नमन करके	प्रतिदिनं पितरौ नत्वा एव स्वकार्यं कुरु।
दृश् + क्त्वा =	दृष्ट्वा	देखकर	कः सर्पं दृष्ट्वा विभेति?
हन् + क्त्वा =	हत्वा	मारकर	रामः रावणं हत्वा अयोध्यां गतवान्।
प्रच्छ् + क्त्वा =	पृष्ट्वा	पूछकर	गुरुणा प्रश्नं पृष्ट्वा सन्देहनिवारणं भवति।
त्यज् + क्त्वा =	त्यक्त्वा	त्यागकर	आलस्यं त्यक्त्वा व्यामशालां गच्छ।
पत् + क्त्वा =	पतित्वा	गिरकर	धावकः अश्वात् पतित्वा पुनरुत्थितः।

२. ल्यप् प्रत्यय -

पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में 'क्त्वा' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है, परन्तु यदि धातु से पूर्व कोई उपसर्ग अथवा उपसर्गस्थानीय कोई पद हो तो 'क्त्वा' के स्थान पर 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्द भी अव्यय के रूप में ही प्रयोग किये जाते हैं। इनके रूप भी सदा एक जैसे ही होते हैं। ल्यप् प्रत्यय का 'य' शेष रह जाता है।

उदाहरण –

उपसर्ग+धातु+प्रत्यय	**कृदन्त रूप**	**अर्थ**	**वाक्यप्रयोग**
प्र + नम् + ल्यप् =	प्रणम्य	प्रणाम करके	शिष्यः आचार्यं प्रणम्य पठति।
वि + जि + ल्यप् =	विजित्य	जीतकर	राजा शत्रुं विजित्य प्रसन्नः अभवत्।
आ + नी + ल्यप् =	आनीय	लाकर	नकुलः पारितोषिकम् आनीय गृहे स्थापितवान्।
प्र + आप् + ल्यप् =	प्राप्य	प्राप्त करके	विद्यार्थिनः परीक्षाफलं प्राप्य प्रसन्नाः अभवन्।
प्र + दा + ल्यप् =	प्रदाय	देकर	स्वमित्रं पुस्तकं प्रदाय शीघ्रमागच्छ।
अधि + इ + ल्यप् =	अधीत्य	पढ़कर	छात्राः पाठम् अधीत्य क्रीडन्ति।
वि + ज्ञा + ल्यप् =	विज्ञाय	जानकर	कस्यापि रहस्यं विज्ञाय मा प्रकाशयत्।
आ + गम् + ल्यप् =	आगत्य	आकर	आपणात् आगत्य माता भोजनं पचति।
आ + दा + ल्यप् =	आदाय	लाकर	पिता क्रीडनकम् आदाय सुतां ददाति।

वि + क्री + ल्यप् =	विक्रीय	खरीदकर	सः लेखनीं विक्रीय विद्यालयं गतवान्।

३. तुमुन् प्रत्यय -

निमित्तार्थक क्रिया पद में 'तुमुन्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। अर्थात् जब दो क्रियापदों का कर्त्ता एक हो तथा एक क्रिया दूसरी क्रिया का प्रयोजन या निमित्त होती है, तब भविष्यत् अर्थ प्रकट करने के लिये उसकी धातु के साथ तुमुन् प्रत्यय लगाया जाता है। **यथा-** बालः चित्रं द्रष्टुं याति (बालक चित्र देखने के लिये जाता है)। प्रस्तुत वाक्य में 'देखना' और 'जाना' दो क्रिया पद हैं, जिनमें जाने का प्रयोजन (निमित्त) चित्र देखना है।अतः 'दृश्' धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय जोड़ने पर **'द्रष्टुम्'** रूप बनाया गया है। कालवाची शब्दों जैसे - समय, वेला, काल आदि के योग में एक कर्त्ता न होने पर भी तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। **यथा -** गन्तुं समयोऽस्ति (यह समय जाने के लिये है)। यहाँ 'जाने के लिये' और 'है' दोनों क्रियाओं का कर्त्ता भिन्न-भिन्न है, तथापि 'तुमुन्' प्रत्ययान्त का प्रयोग हुआ है। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द भी अव्यय होते हैं। इनके रूप नहीं चलते हैं। तुमुन् प्रत्यय का 'तुम्' शेष रह जाता है।

उदाहरण-

धातु+प्रत्यय	**कृदन्त रूप**	**अर्थ**	**वाक्यप्रयोग**
स्ना + तुमुन् =	स्नातुम्	स्नान के लिये	सा स्नातुं स्नानागारं गतवती।
प्रच्छ् + तुमुन् =	प्रष्टुम्	पूछने के लिये	शिष्यः प्रश्नं प्रष्टुम् उद्यतः अस्ति।
दृश् + तुमुन् =	द्रष्टुम्	देखने के लिये	अहं चलचित्रं द्रष्टुम् आगतोऽस्मि।
खाद् + तुमुन् =	खादितुम्	खाने के लिये	श्यामः फलं खादितुम् इच्छति।
गम् + तुमुन् =	गन्तुम्	जाने के लिये	बहिः गन्तुं द्वारमुद्घाटयति।
पा + तुमुन् =	पातुम्	पीने के लिये	दुग्धं पातुं मातरं पृच्छति।
क्रीड् + तुमुन् =	क्रीडितुम्	खेलने के लिये	ते क्रीडितुम् उद्यानं अगच्छन्।
वच् + तुमुन् =	वक्तुम्	बोलने के लिये	एकः बालः वक्तुम् उत्थितः।
श्रु + तुमुन् =	श्रोतुम्	सुनने के लिये	सः श्रोतुम् अग्रे उपाविशत्।
पठ् + तुमुन् =	पठितुम्	पढ़ने के लिये	विद्यार्थिनः पठितुं विद्यालयं यान्ति।

४. क्त एवं क्तवतु प्रत्यय –

भूतकालिक क्रिया के अर्थ का द्योतन करने के लिये मुख्यतः दो कृत् प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है – क्त एवं क्तवतु प्रत्यय। क्त और क्तवतु प्रत्ययों को 'निष्ठा' संज्ञा से भी जाना जाता है, जिसका अर्थ होता है 'समाप्ति'। ये दोनों प्रत्यय किसी कार्य की समाप्ति के सूचक होते हैं: अतः इन्हें निष्ठा कहा जाता है। क्तवतु प्रत्यय का प्रयोग सदा कर्त्ता अर्थ में होता है, यथा – सः पठितवान्। क्त प्रत्यय सकर्मक धातुओं के साथ कर्म अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं के साथ भाव अर्थ में प्रयुक्त होता है; जैसे – तेन लिखितम्। कर्मवाच्य में कर्त्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा तथा क्रिया कर्म के अनुसार होती है। भाववाच्य के कर्त्ता में तृतीया तथा क्रिया सदैव नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में होती है। गत्यार्थक तथा अकर्मक धातुओं के कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय का प्रयोग भी किया जाता है; यथा – श्यामः गतः। क्त प्रत्यय का 'त' तथा क्तवतु प्रत्यय का 'तवत्' शेष रह जाता है। भूतकालिक विशेषण के रूप में जब क्त और क्तवतु प्रत्ययों का

प्रयोग किया जाता है तब इनके कृदन्त शब्दरूप तीनों लिङ्गों एवं सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार चलते हैं।

उदाहरण –

(क्त प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	पु०	स्त्री०	नपु०	वाक्यप्रयोग
खाद् + क्त	खादितः	खादिता	खादितम्	वानरैः फलानि खादितानि।
गम् + क्त	गतः	गता	गतम्	तया गृहं गतम्।
सेव् + क्त	सेवितः	सेविता	सेवितम्	सेवितं बालकं पश्य।
पठ् + क्त	पठितः	पठिता	पठितम्	मया कथा पठिता।
कृ + क्त	कृतः	कृता	कृतम्	मया अकार्यं कृतम्।
पा + क्त	पातः	पाता	पातम्	शिशुना दुग्धं पातम्।
त्यज् + क्त	त्यक्तः	त्यक्ता	त्यक्तम्	रामेण सीता त्यक्ता।
प्रच्छ् + क्त	पृष्टः	पृष्टा	पृष्टम्	गुरुणा प्रश्नं पृष्टम।
स्ना + क्त	स्नातः	स्नाता	स्नातम्	तेन स्नातम्।
भाष् + क्त	भाषितः	भाषिता	भाषितम्	छात्रेण श्लोकं भाषितम्।

उदाहरण –

(क्तवतु प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	पु०	स्त्री०	नपु०	वाक्यप्रयोग
गम् + क्तवतु	गतवान्	गतवती	गतवत्	मित्रं कुत्र गतवत्?
श्रु + क्तवतु	श्रुतवान्	श्रुतवती	श्रुतवत्	सः तीव्रध्वनिः श्रुतवान्।
ज्ञा + क्तवतु	ज्ञातवान्	ज्ञातवती	ज्ञातवत्	मन्त्री एकं रहस्यं ज्ञातवान्।
पठ् + क्तवतु	पठितवान्	पठितवती	पठितवत्	सा पाठं पठितवती।
त्यज् + क्तवतु	त्यक्तवान्	त्यक्तवती	त्यक्तवत्	बाला कुसंगतिः त्यक्तवती।
कृ + क्तवतु	कृतवान	कृतवती	कृतवत्	सः नित्यकार्यं कृतवान्।
सेव् + क्तवतु	सेवितवान्	सेवितवती	सेवितवत्	श्रवणः पितरौ सेवितवान्।
लिख् + क्तवतु	लिखितवान्	लिखितवती	लिखितवत्	छात्राः लेखं लिखितवन्तः।
पत् + क्तवतु	पतितवान्	पतितवती	पतितवत्	रमा घोटकात् पतितवती।
खाद् + क्तवतु	खादितवान्	खादितवती	खादितवत्	ताः फलानि खादित्वत्यः।

५. शतृ एवं शानच् प्रत्यय –

जब एक कार्य को करते हुये साथ ही साथ दूसरी क्रिया भी होती है अर्थात् पढ़ता हुआ, लिखती हुई आदि अर्थों को प्रकट करने के लिये 'शतृ एवं शानच्' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। इन दोनों प्रत्ययों के कृदन्त रूपों का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है; अतः इनमें विशेष्य के अनुरूप लिङ्ग, विभक्ति और वचन का प्रयोग होता है। शतृ-शानच् प्रत्यय कर्त्ता के विशेषण होते हैं। परस्मैपदी धातुओं के साथ शतृ (अत्) प्रत्यय तथा आत्मनेपदी धातुओं के साथ शानच् (आन, मान) जोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ – १) **पठ्+शतृ = पठन्** , २) **सेव्+शानच् = सेवमानः**। यहाँ 'पठ्' धातु के पस्मैपदी होने से शतृ प्रत्यय का तथा 'सेव्' धातु के आत्मनेपदी होने से शानच् प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।

उदाहरण –

(शतृ प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	पु०	स्त्री०	नपु०	वाक्यप्रयोग
खाद् + शतृ	खादन्	खादन्ती	खादत्	सा खादन्ती कथयति।
पठ् + शतृ	पठन्	पठन्ती	पठत्	पठन्तौ बालकौ लिखतः।
हस् + शतृ	हसन्	हसन्ती	हसत्	बालिकाः हसन्त्यः यान्ति।
गम् + शतृ	गच्छन्	गच्छन्ती	गच्छत्	गुरुः गच्छन्तं शिष्यम् आह्वयति।
क्रीड् + शतृ	क्रीडन्	क्रीडन्ती	क्रीडत्	ते क्रीडन्तः हसन्ति।
धाव् + शतृ	धावन्	धावन्ती	धावत्	धावन्ती बालिका चित्रं पश्यति।
गै + शतृ	गायन्	गायन्ती	गायत्	सः गायन् नृत्यति।
पा + शतृ	पिबन्	पिबन्ती	पिबत्	दुग्धं पिबन्तं शिशुं पश्य।

उदाहरण –

(शानच् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	पु०	स्त्री०	नपु०	वाक्यप्रयोग
सेव् + शानच्	सेवमानः	सेवमाना	सेवमानम्	राजा सेवमानाय सेवकाय स्वर्णं ददाति।
मुद् + शानच्	मोदमानः	मोदमाना	मोदमानम्	माता मोदमानां पुत्रीं पश्यति।
लभ् + शानच्	लभमानः	लभमाना	लभमानम्	लभमानं फलम् अपि न प्राप्तम्।
वृध् + शानच्	वर्धमानः	वर्धमाना	वर्धमानम्	अहं वर्धमानं वृक्षं पश्यामि।
शी + शानच्	शयानः	शयाना	शयानम्	सूर्योदये जाते श्यानः बालः जागरितवान्।
याच् + शानच्	याचमानः	याचमाना	याचमानम्	याचमानं साधुं किं दद्यात्?
कम्प् + शानच्	कम्पमानः	कम्पमाना	कम्पमानम्	अहं कम्पमानेन शरीरेण न गमिष्यामि।

६. तव्यत् एवं अनीयर् प्रत्यय –

तव्यत् और अनीयर् प्रत्ययों का प्रयोग 'चाहिये' या 'योग्य' अर्थों को प्रकट करने के लिये किया जाता है। क्रिया के रूप में इन प्रत्ययों का प्रयोग 'चाहिये' अर्थ में तथा विशेषण के रूप में 'योग्य' अर्थ में होता है। यथा - **मया पठितव्यः पाठः पठितव्यः**। प्रस्तुत उदाहरण में प्रयुक्त पूर्व 'पठितव्यः' कृदन्त विशेषणरूप में तथा द्वितीय 'पठितव्यः' क्रिया के रूप में प्रयोग किया गया है। तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय सदा कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में प्रयुक्त होते हैं, कर्मवाच्य में नहीं। सकर्मक धातुओं के साथ इनका प्रयोग कर्मवाच्य में तथा अकर्मक धातुओं के साथ भाववाच्य में होता है। कर्मवाच्य में कर्त्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा तथा क्रिया कर्म के अनुसार होती है। भाववाच्य के कर्त्ता में तृतीया तथा क्रिया सदैव नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में होती है। विशेष्य के अनुसार तीनों लिङ्गों में इनके शब्दरूप चलते हैं। तव्यत् का 'तव्य' तथा अनीयर् का 'अनीय' शेष रहता है।

उदाहरण –

(तव्यत् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	पु०	स्त्री०	नपु०	वाक्यप्रयोग
पठ् + तव्यत्	पठितव्यः	पठितव्या	पठितव्यम्	तेन पाठः पठितव्यः।
गम् + तव्यत्	गन्तव्यः	गन्तव्या	गन्तव्यम्	तत्र न गन्तव्यम्।
दा + तव्यत्	दातव्यः	दातव्या	दातव्यम्	यथाशक्ति दानं दातव्यम्।
हस् + तव्यत्	हसितव्यः	हसितव्या	हसितव्यम्	अत्यधिकं न हसितव्यम्।

कृ + तव्यत्	कर्तव्यः	कर्तव्या	कर्तव्यम्	धूम्रपानं न कर्तव्यम्।
दृश् + तव्यत्	द्रष्टव्यः	द्रष्टव्या	द्रष्टव्यम्	ग्रन्थाः अन्यत्र द्रष्टव्याः।
रक्ष् + तव्यत्	रक्षितव्यः	रक्षितव्या	रक्षितव्यम्	अस्माभिः का रक्षितव्या?
पा + तव्यत्	पातव्यः	पातव्या	पातव्यम्	शुद्धं जलं पातव्यम्।

उदाहरण –

(अनीयर् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	**पु०**	**स्त्री०**	**नपु०**	**वाक्यप्रयोग**
पठ् + अनीयर्	पठनीयः	पठनीया	पठनीयम्	नित्यं सुभाषुतानि पठनीयानि।
वद् + अनीयर्	वदनीयः	वदनीया	वदनीयम्	सदा सत्यं वदनीयम्।
कृ + अनीयर्	करणीयः	करणीया	करणीयम्	दुराचारः न करणीयः।
श्रु + अनीयर्	श्रवणीयः	श्रवणीया	श्रवणीयम्	रमणीया कथा श्रवणीया।
दृश् + अनीयर्	दर्शनीयः	दर्शनीया	दर्शनीयम्	अत्र कानि कनि दर्शनियानि स्थानानि?
कथ् + अनीयर्	कथनीयः	कथनीया	कथनीयम्	न असत्यं कथनीयम्।
लिख् +अनीयर्	लेखनीयः	लेखनीया	लेखनीयम्	सुन्दरः लेखः लेखनीयः।

७. यत्, ण्यत् एवं क्यप् प्रत्यय –

यत्, ण्यत् एवं क्यप् प्रत्ययों का प्रयोग भी 'चाहिये' अथवा 'योग्य' अर्थ में धातुओं के साथ किया जाता है। इन तीनों प्रत्ययों का केवल 'य' शेष रहता है। यत्, ण्यत् एवं क्यप् प्रत्ययों के कृदन्त शब्दरूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। यद्यपि ये तीनों ही प्रत्यय एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तथापि इनके प्रयोगस्थल में भिन्नता देखने को मिलती है।

यत् प्रत्यय – यत् प्रत्यय का प्रयोग ऋकारान्त धातुओं के अलावा अधिकांशतः अजन्त धातुओं के साथ होता है। यत् के पूर्व स्वर को गुण (ए, ओ) होता है तथा ए , ओ को क्रमशः 'अय्' और 'अव्' आदेश हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त पवर्गान्त धातुओं के साथ भी यत् प्रत्यय का प्रयोग देखने को मिलता है।

उदाहरण –

(यत् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	**पु०**	**स्त्री०**	**नपु०**
दा + यत्	देयः	देया	देयम्
चि + यत्	चेयः	चेया	चेयम्
धा + यत्	धेयः	धेया	धेयम्
नी + यत्	नेयः	नेया	नेयम्
भू + यत्	भव्यः	भव्या	भव्यम्
गै + यत्	गेयः	गेया	गेयम्
जि + यत्	जेयः	जेया	जेयम्
श्रु + यत्	श्रव्यः	श्रव्या	श्रव्यम्
शप् + यत्	शप्यः	शप्या	शप्यम्
लभ् + यत्	लभ्यः	लभ्या	लभ्यम्

८. ण्यत् प्रत्यय –

ण्यत् प्रत्यय का प्रयोग प्रायशः ऋकारान्त और व्यञ्जनान्त धातुओं के पश्चात् किया जाता है। ण्यत् से पूर्व 'ऋ' को 'आर्' वृद्धि हो जाती है, यदि उपधा में 'अ' हो तो उसे 'आ' हो जाता है तथा उपधा में कोई अन्य स्वर आने पर गुण हो जाता है।

उदाहरण –

(ण्यत् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	पु०	स्त्री०	नपु०
कृ + ण्यत्	कार्यः	कार्या	कार्यम्
हृ + ण्यत्	हार्यः	हार्या	हार्यम्
लिख् + ण्यत्	लेख्यः	लेख्या	लेख्यम्
पठ् + ण्यत्	पाठ्यः	पाठ्या	पाठ्यम्
पच् + ण्यत्	पाक्यः	पाक्या	पाक्यम्
सेव् + ण्यत्	सेव्यः	सेव्या	सेव्यम्
वच् + ण्यत्	वाच्यः	वाच्या	वाच्यम्
चुर् + ण्यत्	चौर्यः	चौर्या	चौर्यम्
स्मृ + ण्यत्	स्मार्यः	स्मार्या	स्मार्यम्
ग्रह् + ण्यत्	ग्राह्यः	ग्राह्या	ग्राह्यम्

टिप्पणी - कभी-कभी आवश्यकता का बोध कराने के लिये उकारान्त अथवा ऊकारान्त धातुओं के साथ भी ण्यत् प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे – श्रु+ ण्यत् = श्राव्यः (अवश्य सुनने योग्य)।

धातु+ प्रत्यय	अर्थ	पु०	स्त्री०	नपु०
श्रु + ण्यत्	(अवश्य सुनने योग्य)	श्राव्यः	श्राव्या	श्राव्यम्
पू + ण्यत्	(अवश्य पवित्र करने लायक)	पाव्यः	पाव्या	पाव्यम्
लू + ण्यत्	(अवश्य काटने योग्य)	लाव्यः	लाव्या	लाव्यम्

९. क्यप् प्रत्यय –

क्यप् प्रत्यय का प्रयोग इण्, स्तु, शास् आदि कतिपय धातुओं के साथ ही होता है। इस प्रत्यय से पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उस धातु के पश्चात् 'त्' का आगम हो जाता है। क्यप् प्रत्यय के योग में गुण या वृद्धि कार्य नहीं होते हैं।

उदाहरण –

(क्यप् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	कृदन्तरूप	अर्थ
इ + क्यप्	इत्य	जाने योग्य
स्तु + क्यप्	स्तुत्य	स्तुति के योग्य
शास् + क्यप्	शिष्य	जिसे उपदेश देना चाहिये
वृ + क्यप्	वृत्य	वरण करने योग्य
जुष् + क्यप्	जुष्य	सेवा के योग्य

विशेष टिप्पणी – उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि ऋकारान्त धातुओं के साथ 'ण्यत्' प्रत्यय लगता है तथा अन्य स्वरान्त धातुओं के साथ 'यत्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। 'क्यप्' प्रत्यय का प्रयोग केवल कुछ विशिष्ट अर्थ वाली धातुओं के साथ ही किया जाता है। क्यप् और यत् प्रत्यययुक्त व्यञ्जनान्त धातुओं को छोड़कर शेष सभी हलन्त धातुओं में 'ण्यत्' प्रत्यय लगता है।

१०. ण्वुल् एवं तृच् प्रत्यय –

ण्वुल् और तृच् ये दोनों कर्तृवाचक प्रत्यय हैं। किसी भी धातु के पश्चात् कर्ता अर्थ में ण्वुल् एवं तृच् प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। यथा – पठ् धातु का सूचित अर्थ है 'पढ़ना' पठ् धातु में ण्वुल् प्रत्यय लगाने पर **'पाठकः'** यह कृदन्त रूप बनता है' जिसका अर्थ होता है -करने वाला। 'ण्वुल्' प्रत्यय का 'वु' तथा 'तृच्' प्रत्यय का 'तृ' शेष रह जाता है। **"युवोरनाकौ"** सूत्र से 'ण्वुल्' के 'वु' को 'अक' आदेश हो जाता है। ण्वुल् प्रत्यय का योग होने पर धातु के अन्त में स्थित स्वर को वृद्धि हो जाती है तथा उपधा में स्थित ह्रस्व स्वर को गुण भाव होता है। तृच् प्रत्यय का योग होने पर धातु में स्थित स्वर को गुण हो जाता है। ण्वुल् एवं तृच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं। यहाँ केवल पुल्लिङ्ग के उदाहरण ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

उदाहरण –

(ण्वुल् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	**कृदन्तरूप**	**अर्थ**	
पठ् + ण्वुल् (अक)	पाठकः	पढ़ने वाला	(पठतीति पाठकः)
पच् + ण्वुल् (अक)	पाचकः	पकाने वाला	(पचतीति पाचकः)
कृ + ण्वुल् (अक)	कारकः	करने वाला	(करोतीति कारकः)
हृ + ण्वुल् (अक)	हारकः	हरण करने वाला	(हरतीति हारकः)
हन् + ण्वुल् (अक)	घातकः	मारने वाला	(हन्तीति घातकः)
धृ + ण्वुल् (अक)	धारकः	धारण करने वाला	(धारयतीति धारकः)
दृश् + ण्वुल् (अक)	दर्शकः	देखने वाला	(पश्यतीति दर्शकः)
चल् + ण्वुल् (अक)	चालकः	चलाने वाला	(चालयतीति चालकः)
दा + ण्वुल् (अक)	दायकः	देने वाला	(ददातीति दायकः)
नृत् + ण्वुल् (अक)	नर्तकः	नाचने वाला	(नृत्यतीति नर्तकः)
लिख् + ण्वुल् (अक)	लेखकः	लिखने वाला	(लिखतीति लेखकः)
नी + ण्वुल् (अक)	नायकः	नेतृत्व करने वाला	(नयतीति नायकः)
गै + ण्वुल् (अक)	गायकः	गाने वाला	(गायतीति गायकः)

टिप्पणी – कतिपय धातुओं के साथ ण्वुल् प्रत्यय जुड़ने पर गुण और वृद्धि नहीं होते अर्थात् वे धातु के साथ सीधे जुड़ जाते हैं। जैसे -

धातु+ प्रत्यय	**कृदन्तरूप**	**अर्थ**
गम् + ण्वुल् (अक)	गमकः	जाने वाला
शम् + ण्वुल् (अक)	शमकः	शान्त करने वाला
वध् + ण्वुल् (अक)	वधकः	वध करने वाला
जन् + ण्वुल् (अक)	जनकः	जन्म देने वाला

उदाहरण –

(तृच् प्रत्यय)

धातु+ प्रत्यय	कृदन्तरूप		अर्थ
कृ + तृच्	कर्तृ	= कर्ता (प्रथमा एकवचन)	करने वाला
श्रु + तृच्	श्रोतृ	= श्रोता (प्रथमा एकवचन)	सुनने वाला
दा + तृच्	दातृ	= दाता (प्रथमा एकवचन)	देने वाला
नी + तृच्	नेतृ	= नेता (प्रथमा एकवचन)	नेतृत्व करने वाला
धा + तृच्	धातृ	= धाता (प्रथमा एकवचन)	धारण करने वाला
पठ् + तृच्	पठितृ	= पठिता (प्रथमा एकवचन)	पढ़ने वाला
भृ + तृच्	भर्तृ	= भर्ता (प्रथमा एकवचन)	भरण करने वाला
पच्+ तृच्	पक्तृ	= पक्ता (प्रथमा एकवचन)	पकाने वाला
कृ+ तृच्	कर्तृ	= कर्ता (प्रथमा एकवचन)	करने वाला
खाद्+ तृच्	खादितृ	=खादिता (प्रथमा एकवचन)	खाने वाला
वच्+ तृच्	वक्तृ	= वक्ता (प्रथमा एकवचन)	बोलने वाला
हन्+ तृच्	हन्तृ	= हन्ता (प्रथमा एकवचन)	मारने वाला

११. ल्युट् प्रत्यय –

भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये धातुओं से ‘ल्युट्’ प्रत्यय जोड़ा जाता है। **“युवोरनाकौ”** सूत्र से ‘ल्युट्’ के ‘यु’ को ‘अन’ आदेश हो जाता है। ल्युट् प्रत्ययान्त शब्द प्रायशः नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं, जिसके रूप ‘फल’ शब्द की भान्ति चलते हैं

उदाहरण –

धातु+ प्रत्यय	कृदन्तरूप	अर्थ
गम् + ल्युट् (अन)	गमनम्	जाना
सह् + ल्युट् (अन)	सहनम्	सहना
हस् + ल्युट् (अन)	हसनम्	हँसना
दृश् + ल्युट् (अन)	दर्शनम्	देखना
पठ् + ल्युट् (अन)	पठनम्	पढ़ना
लिख् + ल्युट् (अन)	लेखनम्	लिखना
दा + ल्युट् (अन)	दानम्	देना
ग्रह् + ल्युट् (अन)	ग्रहणम्	ग्रहण करना
पाल् + ल्युट् (अन)	पालनम्	पालना
सेव् + ल्युट् (अन)	सेवनम्	सेवा करना
पा + ल्युट् (अन)	पानम्	पीना
शी + ल्युट् (अन)	शयनम्	सोना

१२. क्तिन् प्रत्यय –

धातुओं से भाववाचक स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिये 'क्तिन्' प्रत्यय का योग किया जाता है। यह सदैव स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, जिसके रूप 'मति' के समान चलते हैं। 'क्तिन्' प्रत्यय का 'ति' शेष रह जाता है।

उदाहरण –

धातु+ प्रत्यय	**कृदन्तरूप**	**धातु+ प्रत्यय**	**कृदन्तरूप**
कृ + क्तिन्	कृतिः	स्तु + क्तिन्	स्तुतिः
गम् + क्तिन्	गतिः	श्रु + क्तिन्	श्रुतिः
भज् + क्तिन्	भक्तिः	गै + क्तिन्	गीतिः
भी + क्तिन्	भीतिः	स्मृ + क्तिन्	स्मृतिः
दृश् + क्तिन्	दृष्टिः	नी + क्तिन्	नीतिः
धृ + क्तिन्	धृतिः	वच् + क्तिन्	उक्तिः
मन् + क्तिन्	मतिः	सृज् + क्तिन्	सृष्टिः
युज् + क्तिन्	युक्तिः	वृत् + क्तिन्	वृतिः

बोध-प्रश्न

1. प्रायशः धातुओं के पश्चात् कौन से प्रत्यय जोड़े जाते हैं?
   A. तद्धित प्रत्यय
   B. तिङ् प्रत्यय
   C. कृत प्रत्यय
   D. स्त्री प्रत्यय
2. पूर्वकालिक क्रिया के योग में किस प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है?
   A. शतृ प्रत्यय
   B. क्त्वा प्रत्यय
   C. तव्यत् प्रत्यय
   D. अनीयर् प्रत्यय
3. **'प्र + नम् + ल्यप्'** के योग से कृदन्तरूप बनता है –
   A. प्रनम्य
   B. प्रणल्यप्
   C. प्रणम्य
   D. प्रनम्यप्
4. **'द्रष्टुम्'** में किस प्रत्यय का प्रयोग किया गया है?
   A. क्त्वा प्रत्यय
   B. ण्मुल प्रत्यय
   C. शतृ प्रत्यय
   D. तुमुन् प्रत्यय
5. भूतकालिक क्रिया के अर्थ का द्योतन के लिये कौन-कौन से प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं?
   A. क्त और क्तवतु
   B. शतृ और शानच्

C. यत् और ण्यत्

D. ण्वुल और तृच्

6. आत्मनेपदी धातुओं के साथ किस वर्तमानकालिक प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है?

A. शतृ

B. शानच्

C. क्त

D. क्तवतु

7. **'गम् + शतृ'** का योग करने पर स्त्रीलिङ्ग कृदन्तरूप बनता है -

A. गच्छन्ती

B. गच्छन्

C. गच्छत्

D. गच्छती

8. कृ धातु से तव्यत् प्रत्यय जोड़ने पर कृदन्तरूप बनता है –

A. कृतव्यम्

B. क्रीतव्यम्

C. कर्तव्यम्

D. कर्तव्यत्

9. ण्वुल् एवं तृच् प्रत्यय प्रत्यय का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है?

A. कर्ता के अर्थ में

B. क्रिया के अर्थ में

C. भाव के अर्थ में

D. इनमें से कोई नहीं

10. **'सेव् + ल्युट् '** के योग से कृदन्तरूप बनता है –

A. सेवमानः

B. सेवयुट्

C. सेवितम्

D. सेवनम्

3.4 तद्धित प्रत्ययों का सामान्य परिचय

'तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः इति तद्धिताः' इस सामान्य व्युत्पत्ति के अनुसार तद्धित शब्द से अभिप्राय है - जो भिन्न-भिन्न प्रयोगों के काम आ सकें। धातुओं को छोड़कर प्रातिपदिक शब्दों (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) के अन्त में जुड़कर अर्थ परिवर्तन करने वाले प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहा जाता है। तद्धित प्रत्यय के योग से बनने वाले पद को 'तद्धितान्त' भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ – **वसुदेव** प्रातिपदिक से **अण्** प्रत्यय जोड़ने पर **'वसुदेव + अण् = वासुदेवः'** शब्द बनता है, जो वसुदेव की सन्तति 'श्रीकृष्ण' का बोध कराता है। यहाँ 'अण्' तद्धित प्रत्यय है तथा 'वासुदेवः' तद्धितान्त है। इसी प्रकार बहुत से अर्थों का बोध कराने के तद्धित प्रत्ययों का

योग किया जाता है। विविध अर्थों में प्रयुक्त होने वाले तद्धित प्रत्यय अनेक हैं। कतिपय प्रमुख तद्धित प्रत्ययों का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

१. मतुप् प्रत्यय –

किसी वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में होना सूचित करने के लिये 'मतुप्' प्रत्यय का योग किया जाता है। इसके प्रयोग से 'वाला' अथवा 'इससे युक्त' आदि सूचक शब्द बनते हैं। मतुप् प्रत्यय का केवल 'मत्' रह जाता है। मतुप् प्रत्ययान्त शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं; अतः विशेष्य के अनुरूप तीनों लिङ्गों में इसके रूप चलते हैं।

उदाहरण –

शब्द + प्रत्यय	तद्धितान्त शब्द	अर्थ	पु०	स्त्री०	नपु०
मति + मतुप्	मतिमत्	बुद्धिवाला	मतिमान्	मतिमती	मतिमत्
शक्ति + मतुप्	शक्तिमत्	शक्तिवाला	शक्तिमान्	शक्तिमती	शक्तिमत्
श्री + मतुप्	श्रीमत्	श्रीवाला	श्रीमान्	श्रीमती	श्रीमत्
गो + मतुप्	गोमत्	गौ वाला	गोमान्	गोमती	गोमत्
धनुष् + मतुप्	धनुष्मत्	धनुर्धारी	धनुष्मान्	धनुष्मती	धनुष्मत्
धी + मतुप्	धीमत्	बुद्धि से युक्त	धीमान्	धीमती	धीमत्
आयुष् + मतुप्	आयुष्मत्	दीर्घायु	आयुष्मान्	आयुष्मती	आयुष्मत्
कीर्ति + मतुप्	कीर्तिमत्	कीर्ति वाला	कीर्तिमान्	कीर्तिमती	कीर्तिमत्
इक्षु + मतुप्	इक्षुमत्	गन्ने वाला	इक्षुमान्	इक्षुमती	इक्षुमत्

विशेष टिप्पणी - यदि मतुप् प्रत्यय से पूर्व अकारान्त या आकारान्त शब्द, मकारान्त शब्द, वर्ग के प्रथम चार वर्णों में से कोई वर्ण, ऐसा शब्द जिसके अन्तिम स्वर से पहले 'म' हो तथा ऐसा शब्द जिसके अन्तिम व्यञ्जन के पहले 'अ या आ' हो; तब ऐसी स्थिति में मतुप् के 'म'' को 'व' हो जाता है। अर्थात् 'मतुप्' के स्थान पर 'वतुप्' का प्रयोग किया जाता है, जिसका 'वत्' शेष रह जाता है।

उदाहरण –

शब्द + प्रत्यय	तद्धितान्त शब्द	अर्थ	पु०	स्त्री०	नपु०
धन + मतुप् (वतुप्)	धनवत्	धनवाला	धनवान्	धनवती	धनवत्
गुण + मतुप् (वतुप्)	गुणवत्	गुणवाला	गुणवान्	गुणवती	गुणवत्
विद्या + मतुप् (वतुप्)	विद्यावत्	विद्या से युक्त	विद्यावान्	विद्यावती	विद्यावत्
किम् + मतुप् (वतुप्)	किंवत्	–	किंवान्	किंवती	किंवत्
विद्युत् + मतुप् (वतुप्)	विद्युत्वत्	विद्युत् से युक्त	विद्युत्वान्	विद्युत्वती	विद्युत्वत्
लक्ष्मी + मतुप् (वतुप्)	लक्ष्मीवत्	लक्ष्मी वाला	लक्ष्मीवान्	लक्ष्मीवती	लक्ष्मीवत्
पयस् + मतुप् (वतुप्)	पयस्वत्	दूध वाला	पयस्वान्	पयस्वती	पयस्वत्
भास् + मतुप् (वतुप्)	भास्वत्	चमकने वाला	भास्वान्	भास्वती	भास्वत्

२. इनि प्रत्यय –

अकारान्त शब्दों के पश्चात् 'वाला' या 'युक्त' अर्थ प्रकट करने के लिये 'इनि' प्रत्यय का योग किया जाता है। इसके अन्तिम इकार का लोप होकर 'इन्' शेष रह जाता है। इनि प्रत्ययान्त रूप तीनों लिङ्गों और सभी विभक्तियों में प्रयोग किये जा सकते हैं।

उदाहरण –

शब्द + प्रत्यय	तद्धितान्त शब्द	अर्थ	पु०	स्त्री०	नपु०

दण्ड + इनि	दण्डिन्	दण्ड से युक्त	दण्डी	दण्डिनी	दण्डि
गुण + इनि	गुणिन्	गुणवाला	गुणी	गुणिनी	गुणि
धन+ इनि	धनिन्	धनवाला	धनी	धनिनी	धनि
क्रोध + इनि	क्रोधिन्	क्रोध से युक्त	क्रोधी	क्रोधिनी	क्रोधि
धर्म + इनि	धर्मिन्	धर्म वाला	धर्मी	धर्मिणी	धर्मि
फल + इनि	फलिन्	फल से युक्त	फली	फलिनी	फलि
लोभ + इनि	लोभिन्	लोभ से युक्त	लोभी	लोभिनी	लोभि
माला + इनि	मालिन्	माला से युक्त	माली	मालिनी	मालि
ज्ञान + इनि	ज्ञानिन्	ज्ञान से युक्त	ज्ञानी	ज्ञानिनी	ज्ञानि
सुख + इनि	सुखिन्	सुख से युक्त	सुखी	सुखिनी	सुखि
देह + इनि	देहिन्	देहवाला	देही	देहिनी	देहि

३. तरप् एवं ईयसुन प्रत्यय –

दो में से किसी एक को दूसरे की अपेक्षा अधिक या न्यून (कम) बताना हो तो 'तरप्' एवं 'ईयसुन्' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। यथा – रामश्यामयोः रामः पटुतरः (राम और श्याम में राम चतुर है)। यहाँ राम को श्याम से अधिक चतुर बतलाने के लिये 'पटु' प्रातिपदिक से 'तरप्' प्रत्यय जोड़ा गया है। तरप् प्रत्यय का 'तर' तथा ईयसुन् प्रत्यय का 'ईयस्' शेष रह जाता है। इनके रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं।

उदाहरण –

(तरप् प्रत्यय)		**(ईयसुन् प्रत्यय)**	
प्रकृति + प्रत्यय	**तद्धितान्त शब्द**	**प्रकृति + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**
कृश + तरप्	कृशतरः	कृश + ईयसुन्	क्रशीयान्
स्थूल + तरप्	स्थूलतरः	स्थूल + ईयसुन्	स्थवीयान्
अल्प + तरप्	अल्पतरः	अल्प + ईयसुन्	अल्पीयान्
गुरु + तरप्	गुरुतरः	गुरु + ईयसुन्	गरीयान्
लघु + तरप्	लघुतरः	लघु + ईयसुन्	लघीयान्
पटु + तरप्	पटुतरः	पटु + ईयसुन्	पटीयान्
दीर्घ + तरप्	दीर्घतरः	दीर्घ + ईयसुन्	द्राघीयान्
बलिन् + तरप्	बलितरः	बलिन् + ईयसुन्	बलीयान्

४. तमप् एवं इष्ठन् प्रत्यय –

दो से अधिक अर्थात् बहुतों में से किसी एक को अत्यन्त विशिष्ट बताने के अर्थ में 'तमप्' एवं 'इष्ठन्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। यथा – छात्रेषु रविः श्रेष्ठतमः (छात्रों में रवि सर्वश्रेष्ठ है)। प्रस्तुत उदाहरण में रवि को सभी छात्रों में सबसे श्रेष्ठ बतलाने के लिये 'श्रेष्ठ' प्रातिपदिक से 'तमप्' प्रत्यय का योग किया गया है। तमप् प्रत्यय का 'तम' तथा इष्ठन् प्रत्यय का 'इष्ठ' शेष रह जाता है। इनके रूप भी तीनों लिङ्गों में चलते हैं।

उदाहरण –

(तमप् प्रत्यय)		**(इष्ठन् प्रत्यय)**	
प्रकृति + प्रत्यय	**तद्धितान्त शब्द**	**प्रकृति + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**
युवन् + तमप्	युवतमः	युवन् + इष्ठन्	यविष्ठः
स्थूल + तमप्	स्थूलतमः	स्थूल + इष्ठन्	स्थविष्ठः
अल्प + तमप्	अल्पतमः	अल्प + इष्ठन्	अल्पिष्ठः

गुरु + तमप्	गुरुतमः	गुरु + इष्ठन्	गरिष्ठः
लघु + तमप्	लघुतमः	लघु + इष्ठन्	लघिष्ठः
पटु + तमप्	पटुतमः	पटु + इष्ठन्	पटिष्ठः
दीर्घ + तमप्	दीर्घतमः	दीर्घ + इष्ठन्	द्राघिष्ठः
मृदु + तमप्	मृदुतमः	मृदु + इष्ठन्	म्रदिष्ठः
महत् + तमप्	महत्तमः	महत् + इष्ठन्	महिष्ठः

५. मयट् प्रत्यय –

प्रचुरता के अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। वस्तुवाचक शब्दों से (खाद्य वस्तुओं को छोड़कर) विकार अर्थ में भी 'मयट्' प्रत्यय जोड़ा जाता है। मयट् प्रत्यय के 'ट्' का लोप होकर 'मय' शेष रहता है। यह प्रत्यय विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है; अतः विशेष्य के अनुसार इसके रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं।

उदाहरण –

प्रातिपदिक + प्रत्यय	**पु०**	**स्त्री०**	**नपु०**	**अर्थ**
आनन्द + मयट्	आनन्दमयः	आनन्दमयी	आनन्दमयम्	आनन्द से युक्त
शान्ति + मयट्	शान्तिमयः	शान्तिमयी	शान्तिमयम्	शान्ति से युक्त
सुख + मयट्	सुखमयः	सुखमयी	सुखमयम्	सुख से युक्त
स्वर्ण + मयट्	स्वर्णमयः	स्वर्णमयी	स्वर्णमयम्	स्वर्ण से युक्त
लौह + मयट्	लौहमयः	लौहमयी	लौहमयम्	लौह से युक्त
करुणा + मयट्	करुणामयः	करुणामयी	करुणामयम्	करुणा से युक्त
मृत् + मयट्	मृण्मयः	मृण्मयी	मृण्मयम्	मिट्टी से युक्त
वाच् + मयट्	वाङ्मयः	वाङ्मयी	वाङ्मयम्	वाणी से युक्त
सुन्दर + मयट्	सुन्दरमयः	सुन्दरमयी	सुन्दरमयम्	सुन्दरता से युक्त
शोक + मयट्	शोकमयः	शोकमयी	शोकमयम्	शोक से युक्त

६. अण् प्रत्यय –

अण् प्रत्यय का विधान अनेक अर्थों में किया जाता है। यह अपत्य (पुत्र अथवा पुत्री) अर्थ, देवतावाचक, पढ़ना या जानना अर्थ, समूह अर्थ तथा भावार्थ में प्रयुक्त होता है। 'अण्' प्रत्यय का केवल 'अ' शेष रह जाता है। प्रातिपदिक से 'अण् प्रत्यय' लगाने पर आदि स्वर को वृद्धि हो जाती है।

उदाहरण –

अर्थ-सन्दर्भ	**प्रातिपदिक + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**	**अर्थ**
अश्वपतेः अपत्यम्	अश्वपति + अण्	आश्वपतम्	अश्वपति की सन्तान
मनोः अपत्यम्	मनु + अण्	मानवः	मनु की सन्तान
कश्यपस्य अपत्यम्	कश्यप + अण्	काश्यपः	कश्यप की सन्तान
पाण्डोः अपत्यम्	पाण्डु + अण्	पाण्डवः	पाण्डु की सन्तान
उपगोः अपत्यम्	उपगु + अण्	औपगवः	उपगु की सन्तान
इन्द्रः देवता अस्य	इन्द्र + अण्	ऐन्द्रः	इन्द्र देवतावाला
शिवः देवता अस्य	शिव + अण्	शैवः	शिव देवतावाला
बुद्धः देवता अस्प	बुद्ध + अण्	बौद्धः	बुद्ध देवतावाला

विद्याम् अधीते वेद वा	विद्या + अण्	वैद्यः	विद्या को पढ़ने या जाननेवाला
व्याकरणम् अधीते वेद वा	व्याकरण + अण्	वैयाकरणः	व्याकरण को पढ़ने या जाननेवाला
काकानां समूहः	काक + अण्	काकम्	कौओं का समूह
मनुष्याणां समूहः	मनुष्य + अण्	मानुष्यम्	मनुष्यों का समूह
कुशलस्य भावः कर्म वा	कुशल + अण्	कौशलम्	कुशलता
यूनः भावः कर्म वा	युवन् + अण्	यौवनम्	युवावस्था

७. ठक् प्रत्यय –

शब्दों से भाव अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय का विधान किया जाता है। पढ़ता है या जानता है, मारता है. रक्षा करने के अर्थ में तथा जिसकी मान्यता है इन अर्थों में भी 'ठक्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। इसके 'क' का लोप होने पर 'ठ' शेष रह जाता है तथा 'ठ' के स्थान पर 'इक' आदेश हो जाता है। कित् होने के कारण आदिस्वर को वृद्धि हो जाती है। यथा – धर्म + ठक् = धार्मिकः। यहाँ धर्म शब्द से ठक् प्रत्यय करने पर 'ठ' को इकादेश तथा धर्म के आदि में स्थित 'अ' को 'आ' वृद्धि होने पर 'धार्मिकः' तद्धितान्त रूप बनता है। ठक् प्रत्ययान्त रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं।

उदाहरण –

शब्द + प्रत्यय	**पु०**	**स्त्री०**	**नपु०**	**अर्थ**
शरीर + ठक् (इक)	शारीरिकः	शारीरिकी	शारीरिकम्	शरीर सम्बन्धी
संसार + ठक् (इक)	सांसारिकः	सांसरिकी	सांसारिकम्	संसार की वस्तुओं से सम्बद्ध
धर्म + ठक् (इक)	धार्मिकः	धार्मिकी	धार्मिकम्	धर्म करने वाला
न्याय + ठक् (इक)	नैयायिकः	नैयायिकी	नैयायिकम्	न्याय को जानने वाला
पुराण + ठक् (इक)	पौराणिकः	पौराणिकी	पौराणिकम्	पुराण पढ़ने वाला
इतिहास + ठक् (इक)	ऐतिहासिकः	ऐतिहासिकी	ऐतिहासिकम्	इतिहास पढ़ने वाला
मयूर + ठक् (इक)	मायूरिकः	मायूरिकी	मायूरिकम्	मोरों को मारने वाला
समाज + ठक् (इक)	सामाजिकः	सामाजिकी	सामाजिकम्	समाज की रक्षा करने वाला
अस्ति + ठक् (इक)	आस्तिकः	आस्तिकी	आस्तिकम्	'है' ऐसा मानने वाला
नास्ति + ठक् (इक)	नास्तिकः	नास्तिकी	नास्तिकम्	'नहीं है' ऐसा मानने वाला

८. इतच् प्रत्यय –

'सहित' या 'युक्त' अर्थ में 'इतच्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। इतच् प्रत्यय के 'च्' का लोप होकर 'इत' शेष रह जाता है। इतच् प्रत्ययान्त रूप तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण –

शब्द + प्रत्यय	**पु०**	**स्त्री०**	**नपु०**	**अर्थ**
तारक + इतच्	तारकितः	तारकिता	तारकितम्	तारक से युक्त
उत्कण्ठा + इतच्	उत्कण्ठितः	उत्कण्ठिता	उत्कण्ठितम्	उत्कण्ठा से युक्त
पिपासा + इतच्	पिपासितः	पिपासिता	पिपासितम्	पिपासा से युक्त
कुसुम + इतच्	कुसुमितः	कुसुमिता	कुसुमितम्	फूलों से युक्त
गर्व + इतच्	गर्वितः	गर्विता	गर्वितम्	घमण्ड से युक्त
बुभुक्षा + इतच्	बुभुक्षितः	बुभुक्षिता	बुभुक्षितम्	भूख से युक्त
हर्ष + इतच्	हर्षितः	हर्षिता	हर्षितम्	खुशी से युक्त
व्याधि + इतच्	व्याधितः	व्याधिता	व्याधितम्	व्याधि से युक्त

९. छ प्रत्यय –

'वहाँ होने वाला' इस अर्थ में देश, स्थान, क्षेत्रविशेष आदि से 'यत्' प्रत्यय जोड़ा जाता है। 'छ' के स्थान पर 'ईय' आदेश होता है।

उदाहरण –

अर्थ-सन्दर्भ	शब्द + प्रत्यय	तद्धितान्त शब्द	अर्थ
देशे भवः	देश + छ (ईय)	देशीयः	देश में होने वाला
भारते भवः	भारत + छ (ईय)	भारतीयः	भारत में होने वाला
क्षेत्रे भवः	क्षेत्र + छ (ईय)	क्षेत्रीयः	क्षेत्र में होने वाला
भवति भवः	भवत् + छ (ईय)	भवदीयः	आपका/आपकी

१०. त्व एवं तल् प्रत्यय –

भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये शब्दों में 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय जोड़े जाते हैं। 'तल्' प्रत्यय का 'त' शेष रह जाता है तथा स्त्रीत्व होने से उसे 'ता' हो जाता है। त्व प्रत्ययान्त शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग में तथा तल् प्रत्ययान्त शब्द सदैव स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरण –

	(त्व प्रत्यय)		(तल् प्रत्यय)	
अर्थ-सन्दर्भ	**शब्द + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**	**शब्द + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**
शिशोः भावः	शिशु + त्व	शिशुत्वम्	शिशु + तल् (ता)	शिशुता
मूर्खस्य भावः	मूर्ख + त्व	मूर्खत्वम्	मूर्ख + तल् (ता)	मूर्खता
दुर्जनस्य भावः	दुर्जन + त्व	दुर्जनत्वम्	दुर्जन + तल् (ता)	दुर्जनता
पटोः भावः	पटु + त्व	पटुत्वम्	पटु + तल् (ता)	पटुता
लघोः भावः	लघु + त्व	लघुत्वम्	लघु + तल् (ता)	लघुता
कटोः भावः	कटु + त्व	कटुत्वम्	कटु + तल् (ता)	कटुता
स्त्रियाः भावः	स्त्री + त्व	स्त्रीत्वम्	स्त्री + तल् (ता)	स्त्रीता
पशोः भावः	पशु + त्व	पशुत्वम्	पशु + तल् (ता)	पशुता
मनुष्यस्य भावः	मनुष्य + त्व	मनुष्यत्वम्	मनुष्य + तल् (ता)	मनुष्यता
कुशलस्य भावः	कुशल + त्व	कुशलत्वम्	कुशल + तल् (ता)	कुशलता

११. इमनिच् प्रत्यय –

भाव अर्थ में 'पृथु' आदि शब्दों में विकल्प से इमनिच् प्रत्यय का योग किया जाता है। इसके 'इच्' का लोप होकर 'इमन्' शेष रहता है। इमनिच् प्रत्ययान्त शब्द नित्य पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं, जिनके रूप 'आत्मन्' (आत्मा, आत्मानौ, आत्मानः) के सदृश चलते हैं।

उदाहरण –

अर्थ-सन्दर्भ	शब्द + प्रत्यय	तद्धितान्त शब्द	अर्थ
पृथोः भावः	पृथु + इमनिच्	प्रथिमा	पृथुता
पटोः भावः	पटु + इमनिच्	पटिमा	कुशलता
लघोः भावः	लघु + इमनिच्	लघिमा	लघुता
गुरोः भावः	गुरु + इमनिच्	गरिमा	गुरुत्व
महतः भावः	महत् + इमनिच्	महिमा	महत्त्व
अणोः भावः	अणु + इमनिच्	अणिमा	अणुत्व
मृदोः भावः	मृदु + इमनिच्	म्रदिमा	कोमलता
चण्डस्य भावः	चण्ड + इमनिच्	चण्डिमा	विकरालता

१२. तसिल् प्रत्यय –

पञ्चमी विभक्ति का अर्थ बताने के लिये 'तसिल्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। तसिल् प्रत्यय का 'तस्' शेष रह जाता है तथा 'तस्' के 'स' को विसर्ग होकर 'तः' हो जाता है। जैसे – सः प्रयागतः आगच्छति (वह प्रयाग से आता है)। प्रस्तुत उदाहरण में 'प्रयागात्' (पञ्चमी अर्थ) में तसिल् प्रत्यय जोड़ने पर **प्रयाग + तसिल् = प्रयागतः** तद्धितान्त रूप बनता है। तसिल् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते है। अतः इनके रूप सदैव एकसमान रहते हैं।

उदाहरण –

अर्थ-सन्दर्भ	**शब्द + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**	**अर्थ**
कस्मात्	किम् + तसिल्	कुतः	कहाँ से
तस्मात्	तद् + तसिल्	ततः	वहाँ से
सर्वस्मात्	सर्व + तसिल्	सर्वतः	सब ओर से
ग्रामात्	ग्राम + तसिल्	ग्रामतः	गाँव से
वाराणस्याः	वाराणसी + तसिल्	वाराणसीतः	वाराणसी से
वृक्षात्	वृक्ष + तसिल्	वृक्षतः	वृक्ष से

१३. त्रल् प्रत्यय –

सप्तमी विभक्ति के अर्थ में शब्दों से'त्रल्' प्रत्यय का योग किया जाता है। इसके 'ल्' का लोप होकर केवल 'त्र' शेष रह जाता है। त्रल् प्रत्ययान्त शब्द भी अव्यय होते हैं। अतः इनके रूप नहीं चलते हैं।

उदाहरण –

अर्थ-सन्दर्भ	**शब्द + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**	**अर्थ**
कस्मिन् स्थाने	किम् + त्रल्	कुत्र	कहाँ
यस्मिन् स्थाने	यद् + त्रल्	यत्र	जहाँ
तस्मिन् स्थाने	तद् + त्रल्	तत्र	वहाँ
अन्यस्मिन् स्थाने	अन्य + त्रल्	अन्यत्र	दूसरी जगह
सर्वस्मिन् स्थाने	सर्व + त्रल्	सर्वत्र	सभी जगह
एकस्मिन् स्थाने	एक + त्रल्	एकत्र	एक जगह

१४. दा प्रत्यय –

सप्तम्यन्त काल के अर्थ सर्व, तद्, किम् आदि सर्वनाम शब्दों से 'दा' प्रत्यय का योग किया जाता है। दा प्रत्ययान्त शब्द अव्यय के रूप में प्रयुक्त होते हैं; अतः इनके रूप नहीं चलते हैं।

उदाहरण –

अर्थ-सन्दर्भ	**शब्द + प्रत्यय**	**तद्धितान्त शब्द**	**अर्थ**
सर्वस्मिन् काले	सर्व + दा	सर्वदा	हमेशा
एकस्मिन् काले	एक + दा	एकदा	एक बार
तस्मिन् काले	तद् + दा	तदा	तब
कस्मिन् काले	किम् + दा	कदा	कब

यस्मिन् काले	यद् + दा	यदा	जब

१५. थाल् प्रत्यय –

'प्रकार' अर्थ में किम् आदि सर्वनाम पदों से 'थाल्' प्रत्यय जोड़ा जाता है। थाल् प्रत्यय के 'ल्' वर्ण का लोप होकर 'था' शेष रह जाता है। थाल् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय-पद होते हैं, जिस कारण इसके रूप सदा एक जैसे रहते हैं।

उदाहरण –

शब्द + प्रत्यय	**तद्धितान्त शब्द**	**अर्थ**
सर्व + थाल्	सर्वथा	सब प्रकार
उभय + थाल्	उभयथा	दोनों प्रकार
तद् + थाल्	तथा	उस प्रकार
यद् + थाल्	यथा	जिस प्रकार
अन्य + थाल्	अन्यथा	अन्य प्रकार

3.5 बोध-प्रश्न

1. ऐसे प्रत्यय जो प्रातिपदिक शब्दों के बाद जोड़े जाते है, वे क्या कहलाते हैं?
   A. तद्धित प्रत्यय
   B. कृत् प्रत्यय
   C. तिङ् प्रत्यय
   D. इनमें से कोई नहीं
2. **'श्रीमान्'** में प्रयुक्त प्रातिपदिक और प्रत्यय हैं -
   A. श्री + मान्
   B. श्री + वतुप्
   C. श्री + मतुप्
   D. श्री + मयट्
3. 'प्रचुरता' के अर्थ में किस प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है?
   A. मतुप् प्रत्यय
   B. मयट् प्रत्यय
   C. तरप् प्रत्यय
   D. तमप् प्रत्य
4. अधोलिखित में से 'तरप्' प्रत्ययान्त रूप कौन सा है?
   A. लघुता
   B. लघुतरः
   C. लघुतरप्
   D. लघुतमः
5. 'अण्' प्रत्यय का विधान करने पर आदिस्वर में क्या परिवर्तन होता है?
   A. वृद्धि हो जाती है
   B. गुण हो जाता है

C. लोप हो जाता है

D. ह्रस्व हो जाता है

6.‘ठक्’ प्रत्यय के ‘ठ’ को कौन सा आदेश होता है?

A. इय आदेश

B. ईय आदेश

C. इनि आदेश

D. इक आदेश

7. ‘लघु’ शब्द में ‘इमनिच्’ प्रत्यय लगाने पर क्या रूप बनेगा ?

A. लघिमा

B. लघुमा

C. लघिमनिच्

D. लघुता

8. **‘मनुष्यता’** तद्धितान्त में प्रयुक्त प्रकृति और प्रत्यय हैं -

A. मनुष्य + ता

B. मनुष्य + त्व

C. मनुष्य + तल्

D. मनुष्य + तसिल्

9. पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला प्रत्यय कौन सा है?

A. तसिल् प्रत्यय

B. त्रल् प्रत्यय

C. थाल् प्रत्यय

D. इतच् प्रत्यय

10. **‘सामाजिकः’** में प्रयुक्त प्रकृति और प्रत्यय हैं -

A. समाज + इक

B. समाज + इतच्

C. समाज + ठक्

D. सामाज + इक

3.6 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न १ – प्रमुख कृत प्रत्ययों के सामन्य प्रयोग बतायें?

प्रश्न २ – प्रत्यय किसे कहते है? तथा उनके भेद कौन कौन से है।

प्रश्न ३ – किन्हीं पांच तद्धित प्रत्ययों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?

प्रश्न ४- क्त एवं क्तवतु प्रत्यय की परिभाषा एवं उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?

3.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको कृदन्त एवं तद्धित प्रत्ययों का सामान्य परिचय प्राप्त हो गया है। इस इकाई मे आपने सर्व प्रथम कृदन्द प्रत्ययों को पढ़ा जिसमें कुछ प्रत्यय क्रियासूचक कृदन्त प्रत्यय थे। कुछ प्रत्यय कारक सूचक थे तथा कुछ कृदन्त प्रत्यय भावसूचक

कृदन्त प्रत्यय थे। इसी प्रकार तद्धित प्रत्यय संस्कृत व्याकरण का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो शब्द निर्माण और संज्ञा-विशेषण निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाता है। ये प्रत्यय किसी मूल शब्द में जुड़कर नए शब्दों का निर्माण करते हैं, जिससे भाषा समृद्ध और विस्तृत होती है। तद्धित प्रत्ययों का सही प्रयोग न केवल शब्दों के अर्थ को स्पष्ट करता है, बल्कि उनके संबंधों और गुणों को भी दर्शाता है। इस प्रकार, कृदन्त एवं तद्धित प्रत्यय संस्कृत भाषा के व्याकरण और शब्दावली को सुसंगठित और प्रभावशाली बनाने में सहायक होते हैं।

3.8 शब्दावली

१- प्रत्ययान्त - प्रत्यय के अन्त में ।
२- निमित्तार्थक - कारण के लिए या उद्देश्य हेतु ।
३- गत्यार्थक - गति अर्थ वाली धातु ।
४- अजन्त - अच् प्रत्याहार है जिसके अन्त में ।
५- उपधा - किसी शब्द के अंतिम अक्षर के पहले का अक्षर।
६- आगम - शब्द या धातु के बीच या अन्त में जो अक्षर या वर्ण जुड़ जाता है उसे आगम कहते है।
७- सकर्मक - जिन धातुओं में कर्म होता है।
८- अकर्मक - वे धातुएँ होती जिनके साथ कर्म नहीं आता है।
९- अव्यय - स्वर् आदि शब्द तथा सभी निपात अव्यय होते हैं। इनके रूप कभी परिवर्तन नहीं होते हैं।
१०-तद्धितान्त - तद्धित प्रत्यय है जिसके अन्त में

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी(भाग-३), श्री गोविन्दाचार्य, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी २०२०
2. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी(भाग-६), श्री गोविन्दाचार्य, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी २०२०
3. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, चक्रधर नौटियाल 'हंस शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
4. अनुवाद चन्द्रका, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
5. संस्कृत रचना, श्री वामन शिवराम आप्टे, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसे

3.10 उपयोगी पुस्तकें

1. प्रौढ रचनानुवादकौमुदी, आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी २०१३
2. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका, डॉ. बाबूराम सक्सेना, रामनारायणलाल प्रहलाददा प्रकाशक, इलाहाबाद
3. भाषाप्रवेशः, डॉ. चाँद किरण सलूजा, संस्कृत भारती दिल्ली
4. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, चक्रधर नौटियाल 'हंस शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
5. लघुसिद्धान्त कौमुदी, वरदराजाचार्य, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

इकाई 4 स्त्रीप्रत्यय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 स्त्रीप्रत्ययाः
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई'स्त्रीप्रत्यय' से सम्बन्धित है। जैसा कि प्राय: आप जानते हैं 'संस्कृत' भाषा में तीन लिङ्ग होते हैं। पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिङ्ग। जो शब्द पहले पुल्लिंग हो और उसे स्त्रीलिंग में प्रयोग करने की आवश्यकता होने पर उनसे तथा स्वाभाविक ही स्त्रीलिङ्ग में रहने वाले शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बोधक प्रत्यय किये जाते हैं। कुछ संज्ञाएँ ऐसी होती हैं, जिनके जोड़े के शब्द होते हैं, एक पुरुष और एक स्त्री,जैसे गोप-गोपी, नर-नारी, इन्द्र-इंद्राणी इत्यादि। इस प्रकार की पुल्लिंग संज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार संज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं। इस इकाई में आप स्त्रीप्रत्यय का भली-भाँति अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- स्त्रीप्रत्यय के सूत्रों के बारे में जान पायेंगे।
- स्त्रीप्रत्ययों के माध्यम से स्त्रीलिङ्ग शब्दों की व्युत्पत्ति कर पायेंगे।
- स्त्रीलिङ्ग शब्दों का निर्माण कैसे होता है ? ये बता पायेंगे।
- स्त्रीप्रत्यय की उपयोगिता को समझेंगे।

4.3 स्त्रीप्रत्ययाः

कुछ संज्ञाएँ ऐसी होती हैं, जिनके जोड़े के शब्द होते हैं- एक पुरुष और एक स्त्री। इस प्रकार की पुल्लिंग संज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार संज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं। जैसे छात्र, नर, मनुष्य पुल्लिंग शब्द हैं तो स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय होकर छात्रा, नारी, मानुषी शब्द बनते हैं। इस प्रकार व्याकरण में कुछ प्रकृति-विशेष से कुछ प्रत्ययों का विधान है। ये प्रत्यय**स्त्रियाम्**इस सूत्र के अधिकार में आते हैं।

'स्त्रियाम्' इत्यधिकारसूत्रम्

1247 स्त्रियाम् 4।1।3।।

अधिकारोऽयं 'समर्थानाम्' इति यावत्।

यह अधिकार सूत्र है। यह अधिकार 'समर्थानां प्रथमाद् वा 4।1।82।।' सूत्र तक है। अर्थात उससे पहले के सूत्रों में **स्त्रियाम्**यह पद उपस्थित होता है- अतः वे सूत्र स्त्रीत्व बोधन के लिए प्रत्यय करते हैं। 'टाप्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1248 अजाद्यतष्टाप् 4।1।4।।

अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्वे टाप् स्यात्।

अजा। एडका। अश्वा। चटका। मूषिका। बाला। वत्सा। होडा। मन्दा। विलाता। इत्यादि: अजादिगण: सर्वा।

अज आदि गण में पढे गये शब्द अथवा ह्रस्व आकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में **टाप्** प्रत्यय होता है। अजादिगण में अजा, एडका आदि अनेक शब्द आते हैं। टकार चुटू से और

पकार हलन्त्यम् से इत्संज्ञक है, आ बचता है। इसके बाद **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ हो जाता है।

अजा- (बकरी) अज अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्**से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **अज+आ** बना। सवर्ण दीर्घ होकर **अजा** बना। आबन्त से सु विभक्ति करके रमा की तरह **अजा, अजे, अजाः** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

एडका- (मादा भेंड) एडका अजादिगणीय शब्द है। स्त्रीत्व के द्योतन करने में **अजाद्यतष्टाप्**से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **एडक+आ** बना। सवर्ण दीर्घ होकर **एडका** बना। आबन्त से **सु** विभक्ति करके **'रमा'** की तरह **एडका, एड़के, एडकाः**आदि रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार अश्व (घोड़ा) से **अश्वा** (घोड़ी), चटक (चिड़ा) से **चटका** (चिड़िया),मूषक(चूहा) से **मूषिका** (चुहिया), बाल से **बाला,**वत्स से **वत्सा,**होड से **होडा,**मन्द से **मन्दा** और विलात से **विलाता** शब्द सिद्ध होते हैं। **सर्वा-** यहाँ आकारान्त सर्व शब्द से **टाप्** प्रत्यय हुआ।

'ङीप्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1249उगितश्च 4।1।6।।

उगिदन्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप्- स्यात्

भवती। भवन्ती। पचन्ती। दीव्यन्ती।

जिसमें उक् अर्थात् उ, ऋ, लृ की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे प्रातिपादिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीप्** प्रत्यय होता है।

भवती- आप (स्त्री/महिला)। **भवत्** शब्द के पुलिङ्ग में **भवान्** बना है। **भा** धातु से कृत्-प्रकरण में डवतु प्रत्यय करके भवत् बना है। उकार की इत्संज्ञा होने से उगित् है। **उगितश्चसेङीप्**, अनुबन्धलोप, **भवत्+ई=भवती** बना। ङ्यन्त भवती से सु आदि विभक्ति लगाकर **नदी** की तरह **भवती, भवत्यौ, भव्यत्यः**आदि रूप बन जाते हैं।

भवन्ती- (होने वाली) **भू** धातु से शतृप्रत्यय करके अनुबन्धलोप, होने पर **भू+अत्, शप्,** अनुबन्धलोप, **अ** और **अत्** में **अतो गुणे**से पररूप हुआ एवं सार्वधातुकगुण, **अव्** आदेश करके **भवत्** बना है। ऋकार की इत्संज्ञा होने के कारण उदित् है। स्त्रीत्व की विवक्षा में **उगितश्चसेङीप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **भवती** बना है। **शप्श्यनोर्नित्यम्** से **नुम्**करने पर **भवन्ती** बना। अब ङ्यन्त **भवन्ती**से **सु** आदि विभक्ति लगाकर **'नदी'** की तरह **भवन्ती, भवन्त्यौ, भवन्त्यः** आदि रूप बन जाते हैं।

इसी तरह पच् से शतृ, पचत्, पचती,**पचन्ती ।**इसके रूप नदी के समान ही **पचन्ती, पचन्त्यौ, पचन्त्यः**आदि होते हैं। **दीव्यत्** इस शत्रन्त **दीव्यत्** से **दीव्यन्ती, दीव्यन्त्यौ, दीव्यन्तः** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

'ङीप्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1250 टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः 4।1।15।।

अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं प्रातिपदिकं ततः स्त्रियां ङीप् स्यात्।

कुरुचरी। नद्ट नदी। देवट् देवी। सौपर्णेयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी।

ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी। आक्षिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी।

वार्तिकम्- नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् । स्त्रैणी। पौंस्नी। शाक्तीकी। याष्टीकी। आढयङ्करणी। तरुणी। तुलनी।

अनुपसर्जन जो टित्, ढ, अण्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् तयप्, ठक्, ठञ्, कञ् और क्वरप् जो प्रत्यय, ऐसे प्रत्यय अन्त में होने वाले अदन्त प्रातिपदिक, उनसे स्त्रीलिङ्ग में **ङीप्** प्रत्यय होता है।

कुरुचरी- अर्थात कुरुदेश में विचरण करने वाली स्त्री। यह टित् का उदाहरण है। **कुरुषु चरति** इस विग्रह में **कुरु** पूर्वक **चर्** धातु से **चरेष्टः** इस सूत्र से **ट** प्रत्यय होकर कृदन्त में **कुरुचर** बना है। कृदन्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे टित् मानकर के स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः**से **ङीप्** हुआ। **ङकार**और **पकार**की इत्संज्ञा और लोप् के बाद **कुरुचर** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **कुरुचर्+ई** बना। वर्ण सम्मेलन होकर **कुरुचरी**बन गया। अब सु प्रत्यय, उसका **हल्ङयाब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **कुरुचरी** सिद्ध हुआ।

नदी-दरिया 'नदट्' इस **टित्** प्रातिपदिक से प्रकृति सूत्र से **ङीप्** प्रत्यय होने पर '**यस्येति च**' से अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

देवी- 'देवट्' शब्द से **ङीप्** प्रत्यय होकर पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

सौपर्णेयी- सुपर्ण की कन्या, गरुड की बहन। यह **ढ प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। **सुपर्ण्या अपत्यं स्त्री** इस विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, **एय्** आदेश होकर **सौपर्णेय** बना है। तद्धितान्त होने के कारण प्रातिपदिक भी है। अतः इससे ढान्त मानकर के स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः**से **ङीप्** हुआ।। **ङकार** और **पकार**की इत्संज्ञा और लोप् के बाद **सौपर्णेय** की भसंज्ञा करके अन्त्य अकार का '**यस्येति च**' से लोप करने पर **सौपर्णेय्+ई** बना। वर्णसम्मेलन होकर **सौपर्णेयी** बन गया। अब **सु** प्रत्यय, उसका **हल्ङयाब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करने पर **सौपर्णेयी**सिद्ध हुआ।

ऐन्द्री- (इन्द्रो देवता अस्याः) इन्द्र जिसका देवता है या इन्द्र की। यह **अण्-प्रत्ययान्त** का उदाहरण है। इन्द्र शब्द '**सास्य देवता**' या '**तस्येदम्**' से **अण्** होने पर, अकार का लोप और आदिवृद्धि होकर सिद्ध हुआ **ऐन्द्र**इस अण्णन्त प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से**ङीप्** प्रत्यय हुआ। तब अकार का लोप होने पर **ऐन्द्री** रूप सिद्ध हुआ।

औत्सी- झरने में उत्पन्न होने वाली मछली आदि। यह अञ्-प्रत्ययान्तका उदाहरण है। उत्स शब्द से 'उत्सादिभ्योञ्' सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर सिद्ध हुए औत्स इस अञ्-प्रत्ययान्तशब्द से प्रकृत सूत्र से **ङीप्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'**से पूर्व अकार का लोप होकर **औत्स+ई** बना वर्णसम्मेलन होकर औत्सी बन गया।

ऊरुद्वयसी- (ऊरु प्रमाणमस्याः, उरुप्रमाण जलवाली-तलैया, छोटा तालाब आदि।) यहाँ उरु शब्द से प्रमाण अर्थ में प्रमाणे द्वयसच्-दघ्नञ्-मात्रचः से द्वयसच्, दघ्नञ् और मात्रच् प्रत्यय होने पर सिद्ध हुआऊरुद्वयस, उरुदघ्न और उरुमात्र इन प्रातिपदिकों से **ङीप्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'**से अन्त्य अकार का लोप होकर ऊरुद्वयसी बना।

पञ्चतयी- पञ्च अवयवा अस्याः (पाँच अवयववाली) पञ्चन् शब्द से अवयव अर्थ में 'संख्याया अवयवे तयप' से तयप् प्रत्यय होने पर नकार का लोप होकर सिद्ध हुए पञ्चतय प्रातिपदिक से **ङीप्** प्रत्यय हुआ।

आक्षिकी- अक्षैर्दीव्यति(पासों से खेलने वाली) अक्ष शब्द से **'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्'** से **ठक्** प्रत्यय होने पर ठकार को इक् **'यस्येति च'** से अकारका लोप और आदिवृद्धि

होकर सिद्ध हुए 'आक्षिक' शब्द से प्रकृत सूत्र से **ङीप्** हुआ। तब **'यस्येति च'** से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रास्थाकी- प्रस्थेन क्रीता (एक पस्थ से खरीदी हुई) यहाँ प्रस्थ शब्द से **'तेन क्रीतम्'** से **ठञ्** प्रत्यय होकर प्रास्थिक शब्द बना। इससे**ङीप्** होकर रूप सिद्ध हुआ।

लावणिकी- लवणं पण्यमस्याः (नमक बेचने वाली) यहाँ लवण शब्द से 'तदस्य पण्यम्- यह इसका विक्रेता है'अर्थ में 'लवणात् ठञ्' से ठञ् होकर सिद्ध हुये लावणिक शब्द से **ङीप्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'** से अकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

यादृशी- (जैसी) यहाँ यत् शब्द उपपद रहते दृश् धातु से त्यदादिषु दृशोनालोचने कञ् च से कञ् प्रत्यय होने पर सर्वनाम्नः से यत् शब्द को आकार अन्तादेश और सवर्ण दीर्घ होकर सिद्ध हुए यादृश कञन्त प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से **ङीप्** हुआ तब **'यस्येति च'** से लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

इत्वरी- (व्यभिचरिणी) यहाँ 'इण् गतौ' धातु से 'इण्-नशि-जि-सर्तिभ्य: क्वरप् से क्वरप् प्रत्यय होने पर ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् से तुक् आगम होकर 'इत्वर' शब्द बना। क्वरबन्त होने के कारण इससे **ङीप्** हुआ और **'यस्येति च'** से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् । यह वार्तिक है। नञ् प्रत्ययान्त, स्नञ् प्रत्ययान्त, ईकक् प्रत्ययान्त और ख्युन् प्रत्ययान्त प्रातिपादिकों से तथा तरुण, तलुन प्रातिपादिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीप्** प्रत्यय होता है।

तद्धित में नञ् प्रत्यय होकर स्त्रैण तथा स्नञ् प्रत्यय होकर पौंस्न एवं ईकक् प्रत्यय होकर शाक्तीक, याष्टीक और ख्युन् प्रत्यय होकर आढयङ्करण बने हैं। उनसे स्त्रीत्व विवक्षा में **नञ्स्नञीकक्ख्युँस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्**से ङीप् प्रत्यय होकर स्त्रैण, पौंस्नी, शाक्तीकी, याष्टीकी, आढयङकरणी सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार तरुण, तलुन शब्दों से भी वार्तिक से उक्त प्रत्यय होकर तरुणी और तलुनी बनाता है।

'ङीप्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1251 यञश्च 4।1।16

यञन्तात् स्त्रियां 'ङीप्'स्यात। अकार लोपे कृते-

स्त्रीत्व की विवक्षा में यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से परे ङीप् प्रत्यय होता है।

यकारलोपविधायकं विधिसूत्रम्

1252 हलस्तद्धितस्य 6।4।50।।

हलः परस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोप ईकारे परे। गार्गी।

हल् से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप होता है, ईकार के परे होने पर।

गार्गी- गर्ग गोत्र कि सन्तति, कन्या। **गर्गस्य गोत्रापत्यं स्त्री ।** तद्धित में गर्ग शब्द से गर्गादिभ्यो यञ् से यञ् प्रत्यय होकर गार्ग्य बना हुआ है। उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में यञश्च से **ङीप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **गार्ग्य् + ई** बना। अब **हलस्तद्धितस्य से** गार्ग्य् के यकार का लोप हुआ। **गार्ग् + ई बना**। वर्णसम्मेलन होकर गार्गी और स्वादिकार्य करने पर गार्गी सिद्ध हो जाता है।

ष्फ- प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

1253 प्राचां ष्फतद्धितः 4।1।17।।

यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धितः ।

यञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में विकल्प से तद्धितसंज्ञक ष्फ प्रत्यय होता है। षकार का षः प्रत्ययस्य से इत्संज्ञा होकर लोप होता है, फ बचता है। उसमें से केवल फ् के स्थान पर आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् से आयन् आदेश होकर आयन बनता है।

ङीष्-प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

1254 षिद्गौरादिभ्यश्च 4।1।41।।

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष्स्यात्

गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरि। अनडुही। अनड्वाही। आकृतिगणोयम्।

जिस शब्द में षकार की इत्संज्ञा हो गई हो ऐसे शब्दों से और गौर आदि गणपठित शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर ङीष् प्रत्यय होता है।

गार्ग्यायणी- गर्ग शब्द से गर्गादिभ्यो यञ् से यञ् प्रत्यय करके गार्ग्य बना। यञन्त गार्ग्य से स्त्रीत्व की विवक्षा मे प्राचां ष्फ तद्धितः से ष्फ प्रत्यय हुआ। षकार का षः प्रत्ययस्य से लोप होकर फ बचा। उसमें केवल फकार के स्थान पर आयन् आदेश होकर **गार्ग्य + आयन** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर गार्ग्यायन बना। णत्व होकर गार्ग्यायण बना। अब षित् होने के कराण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से **ङीष्**अनुबन्धलोप, **गार्ग्यायण+ई बना।** भसंज्ञक अकार का यस्यति च से लोप हुआ। **गार्ग्यायण+ई = गार्ग्यायणी** बना। ङयन्त गार्ग्यायणी से सु आदि विभक्ति लगाकर गार्ग्यायणी, गार्ग्यायण्यौ, गार्ग्यायण्य: आदि रूप सिद्ध होते हैं।

नर्तकी- (नाचने वाली) यहाँ नृत धातु से 'शिल्पिनि ष्वुन् से ष्वुन् प्रत्यय से सिद्ध हुए नर्तक शब्द से षित् होने के कारण प्रकृत सूत्र से ङीष् हुआ। तब **'यस्येति च'** से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

गौरी- (गौरवर्ण की स्त्री) यहाँ गौर आदि गण के आदि शब्द गौर से प्रकृत सूत्र से **ङीष्**प्रत्यय हुआ। तब अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

अनडुही, अनड्वाही- (गौ) यहाँ गौरादि गण के अनडुह शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **ङीष्**प्रत्यय हुआ। तब प्रकृत वार्तिक से आम् आगम होने पर उकार को यण् वकार होकर प्रथम रूप सिद्ध हुआ। आम के अभावपक्ष में दूसरा रूप बना।

आकृतिगण- गौरादि आकृतिगण हैं। अतः अन्य शब्द भी जो इस प्रकार के हों, उन्हें इसके अंतर्गत समझना चाहिये।

ङीप् प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

1255 वयसि प्रथमे 4।1।20।।

प्रथमवयोवाचिनोदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।

प्रथम अवस्था अर्थात कौमार अवस्था के सूचक शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीप्** प्रत्यय होता है। आयु की तीन अवस्था होती हैं- कौमार, यौवन, वृद्धावस्था। यह सूत्र प्रथम अवस्था के वाचक शब्दों से प्रत्यय का विधान करता है।

कुमारी- कुमार यह शब्द प्रथमावस्था सूचक है। स्त्रीत्व की विवक्षा में वयसि प्रथमे से ङीप्, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, **कुमार् + ई = कुमारी,सु** आदि करके कुमारी, कुमार्यौ, कुमार्यः आदि बन जाते हैं। इसी प्रकार किशोरी आदि रूप सिद्ध होंगे

ङीप् प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

1256 द्विगोः 4।1।21।।

अदन्ताद् द्विगोर्ङीप्स्यात्।

त्रिलोकी। अजादित्वात् त्रिफला। त्र्यनीका सेना।

अदन्त द्विगुसमास से स्त्रीत्व विवक्षा में **ङीप्** प्रत्यय होता है।

समास में संख्यावाचक शब्द पूर्व रहे तो उसे द्विगु कहते हैं। संख्यापूर्वो द्विगु: । ऐसे शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् होता है।

त्रिलोकी-तीन लोकों का समूह। **त्रयाणां लोकानां समूहः**। द्विगुसमाससंज्ञक त्रिलोकी शब्द से द्विगोः से ङीप्प्रत्यय करके भसंज्ञक अकार का लोप करके त्रिलोकी, स्वादिकार्य करके सिद्ध हुआ।

अजादित्वात्-त्रिफला- तीन फल का समूह, औषधि विशेष।**त्रयाणां फलानां समाहारः**। यहाँ पर भी संख्यापूर्व होने से द्विगो: से**ङीप्** होना चाहिये था। परंतु इस शब्द के अजादिगण में पाठ होने के कारण इसको बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्**होकर त्रिफला बन जाता है।

त्र्यनीका- तीन तरह की सेनाओं का समूह। **त्रयाणाम् अनीकानां समाहारः**यहाँ पर भी संख्यापूर्व होने से द्विगो: से ङीप् होना चाहिये था। परंतु इस शब्द के अजादिगण में पाठ होने के कारण इसको बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** होकर त्र्यनीका बन जाता है।

'ङीप्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1257वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः 4।1।39।।

वर्णवाची योनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद्वा ङीप्, तकारस्य नकारादेशश्च। एनी, एता। रोहिणी, रोहिता।

वर्णावाची जो अनुदात्त तकारोपधक शब्द, तदन्त अनुपसर्जन प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीप् प्रत्यय तथा शब्द में विद्यमान तकार के स्थान पर नकारादेश होता है। ङीप् होने के पक्ष में नकारादेश होता है, अन्यथा नहीं होता। यहाँ पर वर्ण शब्द सफेद, लाल आदि रंगों का वाचक है।

एनी, एता- चितकबरी, अनेक रंगों वाली। एत शब्द विविध रंगों का वाचक है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः**से **ङीप्**प्रत्यय और उसके साथ में एत के तकार के स्थान पर नकार आदेश होकर **एन**+**ई** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **एनी** बनता है। **ङीप्न** होने के पक्ष में **अजाद्यष्टाप्** से **टाप्** होकर **एता** बन जाता है।

रोहणी, रोहिता- लाल रंग वाली। यहाँ रोहित इस वर्णवाची अनुदात्तान्त तोपध अनुपसर्जन प्रातिपदिक से **ङीप्** और तकार को नकार होकर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष में **टाप्** हुआ।

'ङीष्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1258 वोतो गुणवचनात् 4।1।44।।

उदन्तात गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात्। मृद्वी, मृदुः।

ह्रस्व उकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व-विवक्षा में वैकल्पिक ङीष् प्रत्यय होता है।

मृद्वी, मृदुः- (कोमल) ह्रस्व उकारन्त मृदु शब्द से **वोतो गुणवचनात्** से ङीष् अनुबन्धलोप, **मृदु**+**ई** में यण् होकर व्, **मृद्** +**व्**+**ई** = **मृद्वी,** सु विभक्ति, लोप होकर मृद्वी बना। इसके रूप 'नदी' शब्द की तरह होते हैं।**ङीष्** वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **मृदु** है, सु रुत्वविसर्ग करके मृदु: सिद्ध हो जाता है। इसके रूप 'धेनु' शब्द की तरह चलते हैं।

'ङीष्' प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

1259 बह्वादिभ्यश्च 4।1।45।।

एभ्यो वा ङीष्स्यात्। बह्वी, बहुः।

वार्तिकम्- **कृदिकारादक्तिनः।** रात्री, रात्रिः।

वार्तिकम्- **सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके।** शकटी, शकटिः।

बहु आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

बह्वी, बहुः- (बहुत, स्त्रीलिङ्ग) यहाँ बहु शब्द से **ङीष्** प्रत्यय होने पर उकार को यण् होकर रूप बना। अभावपक्ष में यथावत रूप रहा।

कृदिकारादक्तिनःयह वार्तिक है। क्तिन् से भिन्न कृत् से सम्बन्धित इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा से **ङीष्** प्रत्यय होता है।

रात्री, रात्रिः- (रात) यहाँ रा धातु से 'रा –शादिभ्यस्त्रिप्' इस उणादि सूत्र से त्रिप् प्रत्यय होकर रात्रि शब्द बना। यहाँ कृत् प्रत्यय का इकार है, तदन्त रात्री शब्द से **ङीष्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'**से इकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके- यह भी वार्तिक है। कुछ आचार्य क्तिन् प्रत्ययान्त से भिन्न सभी इदन्त प्रातिपादिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से **ङीष्**होता है ऐसा मानते हैं।

शकटी, शकटिः- (छोटी गाड़ी) यहाँ शकटि शब्द इकारान्त है, इससे **ङीष्** प्रत्यय प्रकृत वार्तिक से हुआ। पूर्ववत् इकार का लोप होकर रूप बना। पक्ष में जैसे का तैसा रूप रहा।

'ङीष्' प्रत्ययविधायकं विधिसूत्रम्

1260 पुंयोगादाख्यायाम् 4।1।48।।

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते, ततो ङीष्।

गोपस्य स्त्री गोपी।

वार्तिकम्- **पालकान्तान्न**

पुरुष के साथ सम्बन्ध के कारण जब पुंवाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त हो तो उस अदन्त शब्द से **ङीष्** प्रत्यय होता है।

स्त्री वह पत्नी, पुत्री और बहन आदि भी हो सकती है। **गोपस्य पत्नी गोपी , गोपस्य भगिनी गोपी , गोपस्य पुत्री गोपी। बकस्य भगनी बकी** आदि।गोप शब्द अदन्त है और स्त्रीत्व की विवक्षा में पुरुष क साथ सम्बन्ध जोड़कर बोला जा रहा है। **पुंयोगादाख्यायाम्**से **ङीष्,** अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गोप् + ई = गोपी,** सु आदि करके गोपी सिद्ध हुआ।

पालकान्तान्नयह वार्तिक है। पालक अन्त में होने वाले शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में पुंयोग होने पर भी **ङीष्** नहीं होता। पालक अन्त में हो ऐसे शब्दों से भी **पुंयोगादाख्यायाम्**से **ङीष्** प्राप्त होता है। यह वार्तिक उसका अपवाद है। अतः **अजाद्यतष्टाप्**से **टाप्** प्रत्यय होता है।

'इद्' आदेशविधिसूत्रम्

1261प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः 7।3।44।।

प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादपि, स आप् सुपः परो न चेत्।

गोपालिका। अश्वपालिका। सर्विका। कारिका। अतः किम्? नौका।

प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी।

वार्तिकम्- **सूयाद् देवतायां चाब्वाच्यः ।** सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायां किम् ?

वार्तिकम्- **सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङयां च ।**यलोपः । सूरी- कुन्ती, मानुषीयम् ।

प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व मेन स्थित अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है आप् के परे होने पर, यदि वह आप् सुप् से परे हो तो नहीं होता है ।

गोपालिका- गोपालक शब्द पालकान्त है, **पालकान्तत्र** इस वार्तिक से निषेध होने के कारण **पुंयोगादाख्यायाम्**से ङीष् नहीं हुआ । तो **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** हुआ । अनुबन्ध लोप होने पर **गोपालक**+**आ** बना । गोपालक का ककार प्रत्यय वाला ककार है । उससे पूर्व में लकारोत्तरवर्ती अकार है । आप् भी परे है और वह सुप् से परे भी नहीं है । ऐसी स्थिति में **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः**से ल के लकार को इकार आदेश हो गया, **गोपालिक**+**आ बना । गोपालिक**+**आ** में सवर्णदीर्घ करके **गोपालिका** बना । सु आदि विभक्तियाँ आती हैं । और रमा शब्द की तरह रूप सिद्ध हो जाते हैं- **गोपालिका, गोपालिके, गोपालिकाः ।**

अतः किम् ? नौका । यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः**इस सूत्र में अतः इतना पद न पढ़ते तो अदन्त शब्द में तो इत्व होता ही साथ ही जो अदन्त नहीं, उसमें भी होता है । जैसे कि **नौ**+**का** में औकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता है ।

प्रत्ययस्थात् किम् ? शक्नोतीति शका। यदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः**इस सूत्र में **प्रत्ययस्थात्**इतना पद न पढ़ते तो प्रत्यय के अकार को तो इत्व होता ही साथ ही जो प्रत्यय का अकार नहीं है, उसमें भी होता । जैसे कि **श**+**का** में अकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता ।

असुपः किम् ? बहुपरिव्राजका नगरीयदि **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः**इस सूत्र में असुप: इतना पद न पढ़ते तो सुप् से परे विद्यमान अकार को भी इकार हो जाता । जैसे कि **बहुपरिव्राज**+**का** में अकार के स्थान पर भी इकार आदेश हो जाता । **बहवः परिव्राजका: सन्ति यस्यां नगर्याम् सा बहुपरिव्राजिका नगरी ।**यहाँ बहु जस् परिव्राजक जस् इस अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** से समास हुआ और प्रातिपदिकसंज्ञा होकर विभक्ति का **लुक्** हुआ । उसके बाद स्त्रीत्वविवक्षा में **टाप्** प्रत्यय हुआ तो **बहुपरिव्राजक**+**आ** बना । इस समय जकारोत्तरवर्ती अकार को इकार नहीं होता, क्योंकि जो **आप्** (टाप्) प्रत्यय पर में वह सुप् विभक्ति से परे है । समास करके लोप किये गये जस् प्रत्यय को **प्रत्ययलक्षण** से उपस्थित माना जाता है ।

सूयाद् देवतायां चाब्वाच्यः । यह वार्तिक है । देवता जाति की स्त्री रूप अर्थ में पुंयोग में वर्तमान सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय होता है । चाप् के चकार और पकार इत्संज्ञक हैं । **पुंयोगादाख्यायाम्**से प्राप्त ङीष् प्रत्यय का यह बाधक है ।

सूर्या (सूर्यस्य स्त्री देवता, सूर्य की देवता स्त्री) यहाँ पुंयोग से स्त्री के अर्थ में वर्तमान सूर्य शब्द से **चाप्** प्रत्यय हुआ, यहाँ स्त्री देवता है । तब **'यस्येति च'** से अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ ।

देवतायामिति देवता अर्थ में ही चाप् हो क्यों कहा ? इसलिए की यदि स्त्री मनुष्य जाति की हो । वहाँ सामान्य**ङीष्** प्रत्यय होगा ।

सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङयां च ।सूर्य और अगस्त्य शब्दों के यकार का लोप हो छ और ङीप्रत्यय परे रहते ।

सूरी (सूर्यस्य स्त्री मानुषी , सूर्य कि मनुष्य जाति की स्त्री, कुन्ती) यहाँ पुंयोग के द्वारा मनुष्य जाति की स्त्री अर्थ में वर्तमान सूर्य शब्द से सामान्य पुंयोग-लक्षण ङीष् हुआ। तब **'यस्येति च'** से अन्त्य अकार काअ लोप होने पर प्रकृत वार्तिक से यकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

1262इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक् 4।1।49।।

एषामानुगागमः स्याद् ङीष्च।

इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

वार्तिकम् –**हिमारण्ययोर्महत्वे** ।महद्धिमं हिमानी। महदरण्यमरण्यानी।

वार्तिकम्- **यावद् दोषे** ।दुष्टो यवो यवानी।

वार्तिकम्- **यवनाल्लिप्याम्** ।यवनानां लिपिर्यवनानी।

वार्तिकम्- **मातुलोपाध्याययोरानुग् वा** ।मातुलानी, मातुली, उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

वार्तिकम्- **आचार्यदणत्वं च।** आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी।

वार्तिकम्- **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे।** अर्याणी, अर्या। क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य इन बारह शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा ङीष् प्रत्यय एवं इनको ही आनुक् का आगम भी होता है।

इन्द्राणी । इंद्रस्य स्त्री, इन्द्र की पत्नी। इन्द्र शब्द से**इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्ध लोप होकर **इन्द्र+आन्+ई**बना। **इन्द्र+आन्** में सवर्ण दीर्घ करके **इन्द्रान्+ई=इन्द्रानी,** णत्व करके **इन्द्राणी,** सु उसका **डल्डयाब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्**से लोप करके **नदी** की तरह **इन्द्राणी** सिद्ध हुआ।

वरुणानी - वरुण की पत्नी वरुण शब्द से **इन्द्र-वरुण-भव-शर्व-रुद्र-मृड-हिमारण्य-यव-यवन-मातुलाचार्याणामानुक्** से आनुक् आगम और ङीष् प्रत्यय हुआ। आगम और प्रत्यय में अनुबन्ध लोप होकर **वरुण +आन्+ ई** बना। **वरुण+आन्** में सवर्ण दीर्घ करके **वरुणान्+ई+वरुणानी** ,सु उसका **डल्डयाब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप करके **इन्द्राणी** की तरह **वरुणानी** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **शर्वस्य स्त्री शर्वाणी, रुद्रस्य स्त्री रुद्राणी,** और **मृडस्य स्त्री मृडानी** भी बन सकते हैं।

वार्तिकम् –**हिमारण्ययोर्महत्वे** ।हिम (बरफ) और अरण्य (जंगल) इन दो शब्दों से **ङीष्**और आनुक् महत्व अर्थात बड़े अर्थ में होता है।

हिमानी-(महद् हिमम्- अधिक बर्फ) यहाँ हिम शब्द से महत्व अर्थ में अरण्य शब्द से **ङीष्**और आनुक् होकर रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिकम्- **यावद् दोषे** ।दोष युक्त अर्थ में वर्तमान यव (जौ-अन्न) शब्द से **ङीष्**और आनुक् होता है।

यावानी- (दुष्टो यवः – दोष युक्त जौ, जवाता) यहाँ यव शब्द से दोष अर्थ में प्रकृत वार्तिक से **ङीष्** प्रत्यय और आनुक् आगम हुआ।

वार्तिकम्- **यवनाल्लिप्याम्** ।लिपि अर्थ में वर्तमान यवन शब्द से **ङीष्** प्रत्यय और अनुवाक् आगम होता है।

यवनानी-(यवनानां लिपिः , यवनों की लिपि) यहाँ यवन शब्द से लिपि अर्थ में प्रकृत वार्तिक से **ङीष्** प्रत्यय और अनुवाक् आगम हुआ। इन चार शब्दों से हिम, अरण्य और यव इन तीन में पुंयोग असम्भव है। इन विशेष अर्थों में इसीलिए इनको विधान किया गया है। यवन शब्द से पुंयोग अर्थ में सामान्य सूत्र से **ङीष्** प्रत्यय होकर 'यवनी' रूप बनता है।

वार्तिकम्- **मातुलोपाध्याययोरानुग् वा।**(मातुलस्य स्त्री, मामा की पत्नी- मामी) यहाँ मातुल शब्द से पुंयोग में ङीष् और विकल्प से आनुक् प्रकृत वार्तिक से होकर पहला रूप बना। आनुक् के अभाव में सामान्य**ङीष्** होकर रूप सिद्ध हुआ।

उपाध्यायानी, उपाध्यायी (उपाध्याय-अध्यापक की स्त्री) यहाँ भी पूर्ववत् आनुक् के विकल्प से दो रूप बने।

वार्तिकम्- **आचार्यदणत्वं च।**आचार्य शब्द से पुंयोग में ङीष् और आनुक् होते हैं और नकार को णत्व का निषेध भी।

आचार्यानी (आचार्य की स्त्री) यहाँ पुंयोग में आचार्य शब्द से प्रकृत वार्तिक से **ङीष्,** आनुक् और णत्व का निषेध ए तीन कार्य होकर रूप बना। जो स्वयं आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो, उस स्त्री को आचार्या कहा जाता है, वहाँ अदन्तलक्षण टाप् होता है। इसी प्रकार जो स्त्री उपाध्याय की पत्नी न होते हुए स्वयं अध्यापन करती हो उसे उपाध्याय और उपाध्यायी कहा जाता है। यहाँ 'या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा **ङीष् वाच्यः'** इस वार्तिक से वैकल्पिक ङीष् हुआ।

वार्तिकम्- **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे।**अर्य और क्षत्रिय शब्दों से स्वार्थ में**ङीष्**और आनुक् विकल्प से होता है। स्वार्थ में विधान होने से पुंयोग में नहीं होता। विकल्प कहने से पक्ष में **टाप्** होता है।

अर्याणी अर्या (वैश्य कुल की स्त्री) यहाँ अर्य शब्द से स्वार्थ में ङीष् और आनुक् होकर प्रथम रूप बना और अभाव पक्ष में अदन्तलक्षण **टाप्** होकर दूसरा रूप। पुंयोग में **ङीष्** होकर अयी रूप बना।

क्षत्रियाणी, क्षत्रिया (क्षत्रिय स्त्री) यहाँ पूर्वत सिद्धि हुई। पुंयोग में यहाँ भी **ङीष्** होकर क्षत्रियी रूप बनता है।

'ङीष्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1263 क्रीतात् करणपूर्वात्4।1।50॥

क्रीतान्ताददन्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात्।

वस्त्रक्रीति। क्वचिन्न-धनक्रीता।

क्रीत शब्द जिसके अन्त में हो तथा करणवाचक जिसका पूर्वावयव हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीष्** प्रत्यय होता है।

वस्त्रक्रीति-वस्त्रों के द्वारा खरीदी गई स्त्रीलिङ्ग की वस्तु भूमि, स्त्री आदि। **वस्त्रैः क्रीता**इस विग्रह में **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** से समास हुआ। अतः करण पूर्व है साथ **क्रीत** अन्त में है। **वस्त्रक्रीत**से स्त्रीत्व की विवक्षा में **क्रीतात् करणपूर्वात्** से**ङीष्**होकर अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **वस्त्रक्रीती**सिद्ध हो जाता है।

धनक्रीता-में **ङीष्** न होकर **टाप्** हुआ और **धनक्रीता** बना।

स्वाङ्गलक्षण 'ङीष्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1264स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात् 4।1।54॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्ताददन्तात् ङीष्वा स्यात्।

केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा। चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा।

असंयोगोपधात् किम्? सुगुल्फा। उपसर्जनात् किम्? शिखा।

उपधा में संयोग न हो ऐसे उपसर्जनसंज्ञक स्वांङ्गवाची शब्द अन्त में हो ऐसे अदन्त प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है।

स्वाङ्ग शब्द का यहाँ 'अपना अंग' यह अर्थ नहीं है अपितु पारिभाषिक अर्थ है। उसके तीन लक्षण हैं-

(1) **अ-द्रवं मूर्ति-मत् स्वाङ्गं प्राणि-स्थम् अ-विकारजम्।**

(2) **अ-तत्स्थं तत्र दृष्टं च।**

(3) **तेन चेत् तत् तथा-युतम्।**

1 . अद्रव (जो तरल न हो), साकार, प्राणी में वर्तमान और अ-विकारज (जो विकार से उत्पन्न न हो) को स्वांग कहते हैं।

2 . उसमें रहता न हो पर उसमें दिखाई दिया हो।

यह स्वांग का दूसरा लक्षण है। प्राणी के अंग केश आदि यदि गली में पड़ें हो- गली में रहने वाले न होकर भी गली में दिखाई पड़ने के कारण इस दूसरे लक्षण के अनुसार स्वांग है।

3 . जैसे वह स्वांग प्राणी में होता है, उसी प्रकार अन्यत्र भी हो तो उसे भी स्वांग कहते हैं। इस लक्षण के अनुसार मूर्तियों में वर्तमान अंग भी प्राणी में स्थित अंग के समान होने से स्वांग कहे जाते हैं।

केशानतिक्रान्ता अतिकेशी, अतिकेशा ।केशों को लांघने वाली लम्बी माला आदि । **अतिकेश** शब्द में उपधा में संयोग नहीं है, केश प्रथम लक्षण के अनुसार स्वांगवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे **अतिकेश** शब्द से**स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** होकर स्वादिकार्य करने पर **अतिकेशी** बनता है। **ङीष्**न होने के पक्ष में टाप् होकर अतिकेशा बन जाता है।

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा ।चंद्र इव मुखं यस्या: (चंद्र के समान मुख वाली) **चंद्रमुख** शब्द में उपधा में संयोग नहीं है, मुख भी प्रथम लक्षण के अनुसार स्वांगवाची है और वह अन्त में भी है ऐसे **चंद्रमुख** शब्द से **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** होकर स्वादिकार्य करने पर **चंद्रमुखी** बनता है। **ङीष्** न होने के पक्ष में **टाप्** होकर **चंद्रमुखा** बन जाता है।

असंयोगोपधात् किम्? सुगुल्फा । यदि **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**में **असंयोगोपधात्**न पढे तो स्वांगवाची संयोगपथ **सुगुल्फ**आदि शब्दों से भी एक पक्ष में **ङीष्** होकर **सुगुल्फी** ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता। यहाँ **टाप्** हुआ है।

उपसर्जनात् किम्? शिखा ।यदि **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**इस सूत्र में **उपसर्जनात्** इतना पद न रखते तो स्वांगवाची अनुपसर्जन **शिखा** आदि शब्दों से भी एक पक्ष में **ङीष्**होकर शिखी ऐसा अनिष्ट शब्द सिद्ध होने लगता।

ङीष्-निषेधकं विधिसूत्रम्

1265 न क्रोडादिबह्वचः 4।1।56।।

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गन्न ङीष्। कल्याणक्रोडा।

आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ।

क्रोडादिगण में पठित स्वांगवाचकों तथा बह्वच् स्वांगवाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीष्** प्रत्यय नहीं होता । यह **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**का निषेध करता है । **क्रोडादि**आकृतिगण है, बहुत शब्द इसके अंतर्गत आते हैं ।

कल्याणक्रोडा ।अच्छी छाती वाली । घोड़ी आदि । **कल्याणक्रोड**शब्द में**स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**इस सूत्र के द्वारा **ङीष्**प्राप्त था । उसका **न क्रोडादिबह्वचः** से निषेध हुआ । फलतः **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **कल्याणक्रोडा**बन जाता है ।

सुजघना ।अच्छी जघनों वाली स्त्री । **सुजघन** शब्द में **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **न क्रोडादिबह्वचः**से निषेध हुआ । फलतः **टाप्** होकर स्वादिकार्य करने पर **सुजघना** बन जाता है ।

ङीष्-निषेधकं विधिसूत्रम्

1266 नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् 4।1।48।।

न ङीष् ।

स्वांगवाची नख शब्द और मुख शब्द अन्त में हो ऐसे प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ङीष्** नहीं होता । यह भी **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्**का निषेध करता है ।

णत्व-विधायकंविधिसूत्रम्

1267पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः 8।4।3।।

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात् सञ्ज्ञायां न तु गकारव्यवधाने ।

शूर्पणखा । गौरमुखा । सञ्ज्ञायां किम्? ताम्रमुखी कन्या ।

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे नकार को णकार आदेश होता है किन्तु गकार के व्यवधान होने पर नहीं । **णत्व** के लिए पूर्व में **रेफ, षकार** और **ऋकार** का होना आवश्यक है । इन्ही को निमित्त कहा गया । ये पूर्वपद में हों ।

शूर्पणखा -जिस के नख शूपे की तरह होते हैं **शूर्प + नख** शब्द में **स्वाङ्गाच चोपसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्** इस सूत्र के द्वारा **ङीष्** प्राप्त था, उसका **नखमुखात् संज्ञायाम्** से निषेध हुआ । फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होता है । यहाँ पर संज्ञा (नाम) होने के कारण **पूर्वपदात् संज्ञायामागः** णत्व होता है । स्वादिकार्य करने पर **शूर्पणखा** बन जाता है । **गौरमुखा –(**गौरं मुखं यस्याः –गौर मुख वाली, यह किसी का नाम है) यहाँ मुख शब्द के स्वांगवाची होने के कारण प्राप्त**ङीष्**का प्रकृत सूत्र से निषेध हुआ । तब अदन्तलक्षण **टाप्** होकर रूप सिद्ध हुआ ।

संज्ञायां किम् –संज्ञा में**ङीष्** का निषेध हो ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि **ताम्र मुखी** (गौर मुख वाली कन्या) यहाँ निषेध न हो क्योंकि ताम्र मुखी संज्ञा नहीं है । अतः स्वांग लक्षण **ङीष्** होकर रूप सिद्ध हो जायेगा ।

ङीष्-विधायकंविधिसूत्रम्

1268 जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् 4।1।63।।

जातिवाचि यद् च स्त्रियां नियतमयोपधं ततः स्त्रियां ङीष् स्यात् ।

तटी ।वृषली । कठी । वह्वची । जातेः किम् ? मुण्डा ।

अस्त्रीविषयात् किम् ? बलाका । अयोपधात् किम् ? क्षत्रिया ।

वार्तिकम् –**योपधाप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ।**

हयी। गवयी। मुकयी। **हलस्तद्धितस्येति**यलोपः। मनुषी।

वार्तिकम्- **मस्त्यस्य ङयाम्।** यलोपः। मत्सी।

जो शब्द जातिवाचक हों, नित्य स्त्रीलिङ्ग न हों और उसकी उपधा यकार न हो –ऐसे अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय होता है। जाति से (1) जातिवाचक संज्ञा, (2) ब्राह्मण आदि जाति (3) अपत्य प्रत्ययान्त तथा (4) शाखाके पढाने वाले- ये चारों लिए जाते हैं। इनके उदाहरण हैं –

तटी- तट जातिवाचक है, यह नित्य स्त्रीलिङ्ग भी नहीं है, इसकी उपधा यकार भी नहीं है। अतः इससे प्रकृत सूत्र से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप बना।

वृषली- (वृषल जाति की स्त्री) यहाँ वृषल शूद्र जाति है। अतः इससे प्रकृत सूत्र से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप बना।

कठी- (कठेन प्रोक्तमधीयानाः, कठ शाखा को पढ़नेवाली) यहाँ कठ शब्द शाखावाचक है, कठ वेद की एक शाखा है। अतः शाखावाची होने से यह जाति है। अतः प्रकृत सूत्र से यहाँ जातिलक्षण **ङीष्** होकर रूप सिद्ध हुआ।

बहवृची यहाँ बहवृच वेद की एक शाखा है, अतः शाखावाची होने से जाति है, अतएव प्रकृत सूत्र से जातिलक्षण **ङीष्** होकर रूप बना।

अस्त्रीविषयात् किम् ? बलाका-नित्यस्त्रीलिङ्ग न हो ऐसा क्यों कहा ? अतः बलाका (पक्षिविशेष) यहाँ न हो। बलाका शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग है, अतः इससे जाति लक्षण **ङीष्न** हुआ। अदन्तलक्षण टाप् होकर रूप सिद्ध हुआ।

अयोपधात् किम् ? क्षत्रिया- यकार उपधा में न हो-ऐसा क्यों कहा? इसलिए कि **क्षत्रिया** (क्षत्रिय जाति की स्त्री) यहाँ जातिलक्षण **ङीष्न** हो। क्षत्रिय शब्द जातिवाचक है, पर इसकी उपधा यकार है।

वार्तिकम् –**योपधाप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः** योपध के निषेध में हय, गवय, मुकय, मनुष्य और मत्स्य इनको भी वर्जित समझना चाहिए अर्थात योपध होने पर भी हय आदि से **ङीष्**प्रत्यय हो।

हयी- (घोड़ी), **गवयी** (गवय स्त्री मादा- गवय गो सदृश्य पशु होता है) और **मुकयी** (मुकय पशु जाति की मादा) इन शब्दों की उपधा यकार है, तो भी इनसे प्रकृत वार्तिक के द्वारा जातिलक्षण **ङीष्** हुआ।

मनुषी- (मनुष्य जाति की स्त्री) यहाँ योपध होने पर भी मनुष्य शब्द से प्रकृत वार्तिक के अनुसार **ङीष्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'** से अन्य अकार के लोप होने पर **'1252 हलस्तद्धितस्य 6।4।150।।'** से यकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

मानुषी- मानुष शब्द से जातिलक्षण **ङीष्** होने पर सिद्ध होता है।

मत्स्यस्येति- मत्स्य शब्द के यकार का **ङीष्** परे रहते लोप हुआ।

वार्तिकम्- मस्त्यस्य ङयाम्। यलोपः। मत्सी।

मत्सी- (मछली) यकारोपध होने पर भी मत्स्य शब्द से पूर्वोक्त वार्तिक के अनुसार से **ङीष्**प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'**से अकार का लोप होने पर प्रकृत वार्तिक से यकार का लोप होकर रूप बन गया।

ङीष् विधायकंविधिसूत्रम्

1269 इतो मनुष्यजातेः 4।1।65।।

ङीष्। दाक्षी।

मनुष्य जातिवाचक ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है।

दाक्षी-दक्ष की कन्या,दक्ष शब्द से तद्धित में अत इञ् होकर के दाक्षि बना है। इससे स्त्रीत्व की विवक्षा में इतो मनुष्यजाते: से ङीष् होकर अनुबन्धलोप, भसंज्ञक इकार का लोप करके दाक्षी बना है।

ऊङ्- प्रत्ययविधायकंविधिसूत्रम्

1270 ऊङुतः 4।1।66।।

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजाति वाचिनः स्त्रियामूङ स्यात्। कूरुः।

अयोपधात् किम्? अध्वर्युब्राह्मणी।

उकारन्त अयोपध मनुष्य जातिवाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में **ऊङ्** प्रत्यय होता है। **ऊङ्** का **ङ्कार**इत्संज्ञक है।

कूरुः (कुरुजाते: स्त्री, कुरु जाति की स्त्री) संज्ञा होने से कुछ शब्द जातिवाचक है, इसकी उपधा में यकार भी नहीं है। अतः उकारन्त आयोपध मनुष्यजाति-वाचक कुरु प्रातिपदिक से प्रकृत सूत्र से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। पश्चात सवर्ण दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।

अयोपधात् किम्? अध्वर्युब्राह्मणीयकारोपध न हो-ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि **अध्वर्युब्राह्मणी-** अध्वर्यु शाखा को पढ़नेवाली, यहाँ **ऊङ्** न हो। शाखावाचक होने से अध्वर्यु वेद की एक शाखा है। उपधा में यकार होने से यहाँ **ऊङ्** प्रत्यय नहीं हुआ।

ऊङ्- प्रत्ययविधायकंविधिसूत्रम्

1271पाङ्गोश्च 4।1।68।।

वार्तिकम्- **श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च।** श्वश्रू:।

उकारन्त पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **ऊङ्** प्रत्यय होता है। जातिवाचक न होने के कारण **पङ्गु**शब्द को पूर्वसूत्र से **ऊङ्** प्राप्त नहीं था। इसलिए इस सूत्र के द्वारा विधान किया गया।

पङ्गू(लंगड़ी) उहाँ **पङ्गु** शब्द से प्रकृत सूत्र से **ऊङ्** प्रत्यय हुआ। तब सवर्ण दीर्घ होने पर रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिकम्- **श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च।** श्वश्रू:- श्वसुर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय हो और शकार से पर उकार का तथा रकार से पर अकार का लोप हो। उकार और अकार के लोप होने पर शकार और रकार हल् रह जाते हैं। श्वसुर शब्द से **'श्वसुरस्य स्त्री'** इस अर्थ में पुंयोगलक्षण **ङीष्** प्राप्त था। यह **ऊङ्** प्रत्यय उसका बाधक है।

श्वश्रू:(श्वशुर की स्त्री, सास) यहाँ श्वशुर शब्द से **ऊङ्** प्रत्यय और शकार से पर उकार का तथा रकार से पर अकार का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

ऊङ् - प्रत्ययविधायकंविधिसूत्रम्

1272ऊरुत्तरपदादौपम्ये 4।1।69।।

उपमानवाची पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात्।

करभोरू:।

जिस प्रातिपदिक का पूर्वपद उपमान-वाची और उत्तरपद **'उरु'** शब्द हो, उससे स्त्रीलिङ्ग में **ऊङ्**प्रत्यय हो।

करभोरू: (करभौ इव ऊरु यस्याः,हथेली के किनारे के समान उरुवाली) यहाँ करभ पूर्वपद उपमान है और उत्तरपद उरु है, अतः '**करभोरू:**' इस प्रातिपदिक से ऊङ्प्रत्यय हुआ। तब सवर्ण दीर्घ होकर रूप सिद्ध हुआ।

ऊङ् - प्रत्ययविधायकंविधिसूत्रम्

1273 संहितशफलक्षणवामादेश्च 4।1।70।।

अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरू:। शफोरू:। लक्षणोरू:। वामोरू:।

ऊरु उत्तरपदवाले प्रातिपदिक के पूर्वपद संहित, शफ, लक्षण और वाम हों तो उससे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ्प्रत्यय होता है।

अनौपम्यार्थं सूत्रम्-यह सूत्र अनौपम्य के लिए है अर्थात् पूर्वपद उपमान जब न हो, तब यह सूत्र प्रवृत्त होगा। उपमान पूर्वपद होने पर पूर्व सूत्र से ही **ऊङ्** हो सकता है। संहिता आदि शब्द उपमान नहीं, अतः पूर्वसूत्र से **ऊङ्**सिद्ध न था, इसलिए इस सूत्र के द्वारा विधान किया गया।

संहितोरू: - संहितौ ऊरु यस्याः, जिसके ऊरु मिले हुये हों।

शफोरू: - शफौ ऊरु यस्याः, जिसके ऊरु मिले हुए हों।

लक्षणोरू: - लक्षणौ ऊरु यस्या:, जिसके ऊरु अच्छे लक्षण वाले हों।

वामोरू: - वमौ ऊरु यस्या:, जिसके ऊरु सुंदर हों।

ये शब्द संहितोरू:, शफोरू:, लक्षणोरू: और वामोरू: शब्दों से ऊङ् प्रत्यय होकर सिद्ध होते हैं।

'ङीन्' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1274 शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् 4।1।73।।

शार्ङ्गरवदेरञोयोऽकारस्तदन्ताच्च जातिवचिनो ङीन्स्यात्। शार्ङ्गरवी। बैदी। ब्राह्मणी।

वार्तिकम् –**नृनरयोर्वृद्धिश्च।** नारी।

शार्ङ्गरव आदि और अञ् का जो अकार तदन्त जातिवाचक प्रातिपदिक से **ङीन्** प्रत्यय हो। ङीन् के ङकार और नकार इत्संज्ञक हैं, केवल ई शेष रहता है। **ङीन्** प्रत्ययान्त शब्द नित् होने से आद्युदात्त होता है। इस प्रकार **ङीप्, ङीष्, ङीन्**– इन तीनों के ईकार रूप होने पर भी स्वर में अन्तर है।

शार्ङ्गरवी- (शृङ्गरोरपत्यं स्त्री- शृङ्गरु की स्त्री सन्तान) यहाँ अपत्यप्रत्ययान्त होने से जातिवाचक होने के कारण शार्ङ्गरव शब्द से **ङीन्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'** से अन्त्य अकार् का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

बैदी- (विदस्य अपत्य स्त्री- विद की स्त्री सन्तान) यहाँ **'1016 अनृष्यानन्तये विदादिभ्योऽञ्4।1।104।।'** इस सूत्र से अञ् प्रत्यय होकर सिद्ध हुए बैद शब्द से **ङीन्** प्रत्यय हुआ। तब 'यस्येति च' से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

ब्राह्मणी- (ब्राह्मणजातीय स्त्री- ब्राह्मण जाति की स्त्री) यहाँ जातिवाचक ब्राह्मण शब्द से जाति लक्षण **ङीष्** प्राप्त था, उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से **ङीन्** प्रत्यय हुआ। तब **'यस्येति च'**से अन्त्य अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

वार्तिकम् –**नृनरयोर्वृद्धिश्च** –नृ और नर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **ङीन्**प्रत्यय हो और वृद्धि भी नृ शब्द से वृद्धि ऋकार को और नर शब्दमें आदि अकार को होती है।

नारी –(नर जातीय स्त्री) यहाँ नृ शब्द से प्रकृत गणसूत्र से **ङीन्** प्रत्यय और ऋकार को आर वृद्धि होकर रूप सिद्ध हुआ। नर शब्द से भी प्रकृत गण सूत्र से **ङीन्** प्रत्यय और अकार को वृद्धि तथा अन्त्य का **'यस्येति च'**से लोप होकर पूर्वोक्त **'नारी'** रूप ही बना।

'ति' प्रत्ययविधिसूत्रम्

1275 यूनस्तिः 3।1।77

युवञ्छब्दात् स्त्रियां तिः प्रत्ययः स्यात्। युवतिः।

युवन् शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में **ति** प्रत्यय होता है।

युवतिः - युवन् शब्द से **यूनस्तिः** से **ति** प्रत्यय हुआ। **युवन्** + **ति** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से **ति** के परे रहते **युवन्** की पदसंज्ञा करके **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप करके **युवति** बनता है। इससे **सु,** रुत्वविसर्ग करके **युवतिः** सिद्ध हुआ।

4.4 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

प्रस्तुत इकाई में आपने स्त्रीप्रत्यय का अध्ययन किया। आपने जाना कि जो शब्द पहले पुल्लिंग हो और उसे स्त्रीलिंग में प्रयोग करने की आवश्यकता होने पर उनसे तथा स्वाभाविक ही स्त्रीलिङ्ग में रहने वाले शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बोधक प्रत्यय किये जाते हैं। ऐसे शब्द जो धातुओं से प्रत्यय होकर कृदन्त बने हों या प्रातिपादिकों से प्रत्यय होकर तद्धितान्त बने हों अथवा अर्थविशेष में समास किये गये हों, या तो अव्युत्पन्न हों, ऐसे सभी शब्दों से **स्त्रीत्व** अर्थबोधन करने की इच्छा होने पर अर्थात् स्त्रीत्व की विवक्षा होने पर स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय होते हैं परंतु प्रायः अजन्त शब्दों से उनमें भी ज्यादातर अकारान्त शब्दों से ये प्रत्यय किये जाते हैं। हलन्त शब्दों से स्त्रीत्व विवक्षा होने पर भी स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय प्रायः कम ही होते हैं।

4.5पारिभाषिक शब्दावली

- विवक्षा - अभिप्राय, इच्छा
- निषेध - मना करना, रोक, बाधा
- संहिता - संयोग, संकलन, मेल
- पालक - पालन करने वाला
- मातुल - मामा
- अध्वर्यु - यज्ञ कराने वाले चार ऋत्विजों में से एक होता है

अभ्यास प्रश्न 1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन कीजिये।

1 'अजा' शब्द में प्रत्यय हैं।

(क)ङीन्

(ख) ङीष्

(ग)ति

(घ) टाप्

2 'शकटी' शब्द में प्रत्यय है।

(क) ङीन्

(ख) ङीष्

(ग) ति

(घ) टाप्

3 'युवतिः' शब्द स्त्रीप्रत्यय के किस सूत्र से बना ?

(क)पुंयोगादाख्यायाम्

(ख) ऊरुत्तरपदादौपम्ये

(ग) यूनस्तिः

(घ) वयसि प्रथमे

4 'गार्ग्यायणी' शब्द स्त्री प्रत्यय के किस सूत्र से बना ?

(क) षिद्गौरादिभ्यश्च

(ख) ऊरुत्तरपदादौपम्ये

(ग) यूनस्तिः

(घ) वयसि प्रथमे

5 'भवती' शब्द में प्रत्यय है।

(क) ङीन्

(ख) ङीष्

(ग) ङीप्

(घ) टाप्

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति कीजिये।

1 'नर' शब्द से भी प्रकृत गण सूत्र से ङीन् प्रत्यय और अकार को वृद्धि तथा अन्त्य का 'यस्येति च' से लोप होकर------------ रूप बना।

2 'युवन्' शब्द से----------से ति प्रत्यय हुआ। युवन् + ति = युवति बना।

3 'धनक्रीता' में ङीष् न होकर----------हुआ और धनक्रीता बना।

4 'मानुष' शब्द से जातिलक्षण-------- होने परमानुषी रूप सिद्ध होता है।

5 'देवट्' शब्द से-------- प्रत्यय होकर देवी रूप सिद्ध हुआ।

4.6अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1 घ, 2 ख, 3 ग, 4 क, 5 ग
2. 1 नारी, 2 यूनस्तिः, 3 टाप्, 4 ङीष्, 5ङीप्

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी, लेखक- श्रीवरदराज, व्याख्याकार एवं सम्पादक- श्रीधरानन्दशास्त्री।
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी, लेखक- श्रीवरदराज, व्याख्याकार- गोविन्द प्रसाद शर्मा (गोविन्दाचार्य)।

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.स्त्रीप्रत्ययप्रकरण की आवश्यकता पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

2.'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र के बारे में बताईए।

3. 'पुंयोगादाख्यायाम्' सूत्र के बारे में संझाईए।